चरित-सुधा

पंचम वृष्टि

* श्रीश्रीराधारमणो जयति *

भज निताइ गौर राधेश्याम । जप हरे कृष्ण हरे राम ॥

चरित-सुधा

श्रीश्रीमद्

राधारमण चरणदासदेव बाबाजी महाशय

(बड़े बाबा)

का

जीवन चरित्र

पंचम खण्ड

न्योछावर : तीन रुपये

सजिल्द साढ़े तीन रुपये

प्रकाशक :

डा० व्रजवल्लभदास नवनीतलाल मेहता, एम. ए., पी. एच. डी.
निताइ-गौरांग भवन, रमणरेती, वृन्दावन।

———

प्रकाशन तिथि :

चैतन्याब्द ४८४
विक्रम संवत् २०२६
ईस्वी सन् १९७०

———

सम्पादक एवं अनुवादक :

डा० अवधबिहारीलाल कपूर, एम. ए., डी. फिल.
श्री ब्रजगोपालदास एम. ए.

———

प्राप्तिस्थान :

श्रीकृष्ण-जन्म-स्थान-सेवासङ्घ, मथुरा।
राधारमण निवास, रमणरेती, वृन्दावन।

———

मुद्रक :

बनवारीलाल शर्मा
श्रीसर्वेश्वर प्रेस, वृन्दावन।

श्रीश्रीमद् राधारमण चरण दास देव

विषय-सूची

—::—

कलकत्ते–केदारबाबूके बगीचेमें

यथानिर्दिष्ट समय गाड़ी हावड़ा पहुँची। साथी लोग गाड़ीका दरवाजा खुलवानेका प्रयत्न कर रहे थे। इतनेमें बाबाजी महाशय खिड़कीमेंसे बाहर निकल आये। साथियोंकी असावधानी के कारण उनके सिरमें थोड़ी चोट आ गई और रक्त बहने लगा। सब बड़े मर्माहत हुए। बड़ी सावधानीसे उन्हें हावड़ा पुलके पारले आये। गंगाके घाटपर एक नाईको देखकर उन्हें धुन सवार हुइ और वे बोले 'मै क्षौर कराऊँगा।' नाईको उन्हें देख न जाने क्या हो गया। वह प्रेम गद्-गद् कंठसे बोला 'बाबा, मैं जिस उस्तरेसे सब लोगोंका सिर मूंडता हूँ, उसे आपके सिरमें कैसे लगाऊँ ? आप कृपा करें,आपके अशीर्वादसे यदि फिर कभी आपके दर्शन हुए और मेरे भाग्यमें यह सेवा हुई तो आपका क्षौर करूँगा।' नाईकी बात सुन साथियोंको बहुत आनन्द हुआ, क्योंकि उन्हें यह भय था कि ऐसी अवस्थामें क्षौर करानेसे यदि इन्होंने कहीं सिर हिला दिया तो बड़ी मुश्किल होगी। पर वे नाईकी बात टालते हुए बोले, ' मैं जगत्में सबकी अपेक्षा हीन

हूँ, मेरा क्षौर करना ही होगा।' वह उनके साथियोंसे परामर्श कर एक ताड़के पत्तेसे क्षौरकर्मकी नकल करने लगा। थोड़ी देर बाद उन्होंने पूछा, 'क्यों रे, मेरे बाल कहाँ हैं ?' नाई बोला 'आपके अप्राकृत बाल अप्राकृत राज्यमें चले गये।' वे उन लोगों का भाव समझ कुछ मुस्करा दिये और पुलके घाटपर स्नान करने लगे। उन्हें गंगामें यमुनाका भ्रम हो आया। बार-बार गोता लगाते और अश्रुगद्गद् कण्ठसे यमुनाका स्तवन करते। थोड़ी देर बाद अकस्मात् एक व्यक्ति 'माँ गंगे! गतिदायिनी! भागीरथी! पतित पावनी! दया कर माँ! सद्यःपातकसंहत्री सद्यो दुःख विनाशिनी। सुखदा, मोक्षदा, गंगा गगैव परमो-गतिः।' कहते हुए स्तव करने लगा। सुनते ही वे चौंक कर चारों ओर देखने लगे। उनकी अवस्था देख लगता था जैसे वे एकदम किसी एक देशसे दूसरे देशमें आ गये हों। तब वे गंगा-स्तवके साथ बार-बार गोते लगाने लगे।

इस प्रकार बहुत देर तक गंगामें स्नान कर सबके अनु-रोधसे जलसे बाहर निकले। घोड़ागाडी ठीक कर ली गई थी। उसमें बैठ बराह-नगरमें श्रीयुक्त कामाख्यादास बाबाजी महाशय के स्थानपर पहुँचे। साथमें रामबाबा, गोविंददादा, नित्य-स्वरूप ब्रह्मचारी और पुलीनबाबू आदि बहुतसे लोग थे। कामाख्यादास बाबाजी महाशय बड़े उत्साहके साथ सबकी देख-भाल करने लगे। पर आत्मानन्द बाबाजी महाशयका ध्यान अपनेमें ही केन्द्रित था। कभी तो बड़ी अच्छी तरह लोगोंकी मान मर्यादाके अनुसार उनसे बात करते और उनके प्रति व्यव-हार करते और कभी बिलकुल निरपेक्ष हो उदार भाव अवल-म्बन कर निष्किचन हो जाते। कोई कपडा लाकर पहना देता तो आपत्ति न करते, पर थोड़ी देर बाद ही उसे दूसरे किसीको

देकर स्वयं नग्न हो जाते। सदा उदासीन भावसे रहते। कोई कुछ पूछता तो चार-पाँच मिनट बाद कुछ उत्तर दे देते। महाप्रसाद सेवनके समय भी बालकके समान व्यवहार करते। कुछ थोड़ा-सा खाकर ही अनिच्छा प्रगट करने लगते। संगीगण कई प्रकारसे बहला फुसला कर महाप्रसाद खिलाते।

इस प्रकार कुछ दिन कामाख्यादास बाबाजीके यहाँ रह कर उस स्थानके निकट ही केदारनाथ महाशयकी 'बागान बाड़ी' में गये। बगीचेमें प्रवेश करते ही उसमें जितने भी पौधे बँधे हुए थे उन्हें खोलकर आनन्दसे नृत्य करने लगे। बागकी शोभा देख सब लोग बहुत आनन्दित हुए। बागमें दो कोठियाँ थीं जिनमें से एक बड़ी थी और एक कुछ छोटी। एक तालाव भी था। तालाबमें एक घाट था। बाबाजी महाशयने दो और घाट बनवाये। जिस ओर बगीचा था उस ओरके घाटमें राधाकुण्ड और उसके अगल-बगल ललिताकुण्ड और श्यामकुण्ड की कल्पनाकर तदनुरूप व्यवहार करने लगे। नीलरतन दादाको भार सौंपा और आदेश किया कि मिट्टीकी हँडियामें रसोई पकानी होगी। उसे रात्रिमें राधाकुण्डके जलमें डुबोकर रखना होगा और दूसरे दिन उसे माँजकर फिरसे रसोई करनी होगी। मिट्टीके वर्तन में ही भोग लगेगा और मिट्टीके बर्तन में ही सब लोग खायें-पियेंगे। किसो प्रकारकी धातुका पात्र व्यवहारमें न लाया जायेगा। ऐसा ही किया जाने लगा। एक दिन कामाख्यादास बाबाजी महाशय बोले, 'जिस मिट्टीके बर्तनमें एक बार भोग लग गया है क्या उसमें दूसरी बार भी भोग लग सकता है ?

बाबाजी--क्यों नहीं ? यदि रजमें ही विश्वास न हुआ तो उपासना कैसे होगी ?

कामाख्या—रज तो जहाँ-तहाँ नहीं होती व्रजधाममें

रजकी महिमा और रज पात्रका गौरव अवश्य है, पर सर्वत्र तो ऐसा नहीं है।

बाबाजी—क्यों ? तुम्हीं लोग तो सदा पाठ करते हो 'गौर मंडल भूमि जेबा जाने चितामणि तार हय ब्रजभूमें बास।' गौर मंडल,व्रज मण्डल अभिन्न हैं—ये सब बातें क्या केवल कंठस्थ कर रखनेके लिये हैं, या व्यवहार करनेके लिए। निरपेक्ष भावसे इनका अवलम्बन किये बगैर प्रकृत धर्मपथपर अग्रसर नहीं हुआ जा सकता। लोकापेक्षके कारण हम प्रकृत धर्मपथ भूल बैठे हैं। कृष्ण और जगत दोनोंको एक साथ रखनेसे काम नहीं चल सकता।

कामाख्यादास बाबाजीका और कुछ कहनेका साहस न हुआ। बाबाजी महाशय सदा ही निष्कपट व्यवहार करनेका उपदेश देते थे और स्वयं भी इसी प्रकारका व्यवहार करते थे। गोविंददादा और रामबाबा यथा समय उन्हें स्नान आहार आदि करानेके प्रयत्नमें लगे रहते थे। गोविंददादा और नित्य-स्वरूप ब्रह्मचारीको दिन-रात बाबाजी महाशयको स्वस्थ करने की चिन्ता लगी रहती थी। जब कभी वे कोई मनमाना ऐसा व्यवहार करते जो उनके शरीरकेलिए अहितकर होता तो ये प्राणपणसे बाधा देते। इसलिए बाबाजी महाशयने बगीचेमें उनका प्रवेश-निषेध कर दिया और सबको सावधान कर दिया कि जो भी उन्हें बगीचेमें ले आयेगा उससे मेरा कोई सम्बन्ध न रहेगा और मैं उसका मुख न देखूंगा। इसलिए सब लोग उन्हें बगीचेके भीतर लानेमें डरते थे।

जो लोग बगीचेमें बाबाजी महाशयके दर्शन करने आते उनके लिए आज्ञा थी कि ऐश्वर्यकी कोई वस्तु साथ न लायें। यदि भूलसे कोई घड़ी, चेन या हाथ और गलेके कीमती बटन

लगाकर आता तो जब तक उसे राधाकुण्डके जलमें फेंक न देते तब तक चैन न पाते। बहुतसे लोग कठिन व्याधियोंके कारण गले या हाथमें ताबीज़ पहने हुए आते। बाबाजी महाशय उन्हें देखते ही उनके ताबीज जलमें फेंक देनेका आदेश करते। एक दिन एक दमेके रोगीका ताबीज फेंका जाने लगा। तब वह बोला, 'ताबीज उतारते ही मेरा दमा बढ़ जाता है। क्या करूँ।' इन्होंने कहा, 'कोई चिन्ताकी बात नहीं। राधाकुण्ड और श्यामकुण्डके जलमें अच्छी तरह गोते लगा लेना। तुम्हारी सारी व्याधि दूर हो जायेगी।' उस वृद्ध पुरुषके जलमें गोते लगाते ही उसका सारा रोग दूर हो गया। इस प्रकार जिसने भी विश्वास किया उसने फल पाया; जिसने नहीं किया वह वंचित रहा।

एकदिन एक व्यक्ति कई मोटे कागज लेकर आया, जिन पर लिखा था—'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे॥' 'श्रीचैतन्य प्रभु नित्यानन्द। हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधे गोविन्द॥' 'प्राण गौर नित्यानन्द' '॥हरिबोल॥' 'हरेर नाम हरेर नाम हरेरनामैव केवलम्। कलौ नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥' 'भज निताइगौर राधेश्याम। जप हरे कृष्ण हरे राम॥' जैसे ही उसने इन्हें बाबाजी महाशय के सामने रखा उन्होंने डाटकर इन्हें राधाकुण्डमें फेंक देनेका आदेश किया। भक्तने कुछ अनमने भावसे कागजोंको जलमें फेंक दिया। इच्छामय प्रभुकी क्या इच्छा थी वही जानें, वह कागज जलमें डूब गये। महात्मा अवधूत ज्ञानानन्द स्वामीके शिष्य श्रीयुक्त गोविन्दानन्द परिव्राजक महाशय वहाँ उपस्थित थे। वे बोले, 'बाबा, आप सदा नामके माहात्म्यका कीर्त्तन किया करते हैं। आज यह कैसा नामका अपमान किया! सब

नाम डूब गये।' बाबाजी महाशय मृदु मुस्कानके साथ बोले, 'गोविन्द, नाम यदि नित्य चिन्मय है तो उसका कभी विनाश नहीं हो सकता वह क्या कभी डूब सकता है ?'

गोविन्द—हमने अपनी आँखोंसे देखा जो डूबते हुए।

बाबाजी—वह सिर्फ तुम्हारी परीक्षाके लिए। नामकी शक्ति कहाँ जा सकती है, किसीको विश्वास हो या न हो।

यह सुनकर सब चकित रह गये। दूसरे दिन आठ बजे के लगभग नामके कागज घाटपर आकर लग गये। बाबाजी महाशय जहाँ बैठे थे वहाँसे कागज दीख जानेकी कोई संभावना न थी पर वे मुस्कराते हुए बोले, 'गोविन्द, जरा राधाकुण्ड जाकर देखो कि नाम नित्य, सत्य, अखण्ड और अव्यय है या नहीं। और नामके सब कागजोंको यहाँ लेआ।' सुनते ही गोविन्दानन्द और बाकी सब लोग भागकर राधाकुण्डके किनारे गये और नामके कागजोंको ऊपर तैरते देख अवाक् रह गये। जो भक्त इन्हें लाया था उसने परमानन्दपूर्वक इन्हें उठा लिया और कहने लगा 'आश्चर्य ! दिनभर जलमें डूबे रहकर इन्हें नष्ट हो जाना चाहिए था। ये तो और भी अधिक उज्ज्वल हो गये हैं। हाय, हम कैसे अविश्वासी हैं। हमने बाबाजी महाशय की बातका किंचिन्मात्र विश्वास नहीं किया। तब भी यह परिणाम हुआ। यदि विश्वास करते तो न जाने क्या फल पाते।' इतना कह वह रोते-रोते बाबाजी महाशयके निकट आया और नामके कागज उनके हाथपर रख दिये। सब लोग अपने अविश्वासके कारण अनुताप करने लगे।

बाबाजी महाशय नामके कागज लेकर घरके बाहर और भीतर दीवारपर लगाने लगे। किसीने आकर पूछा कि गोविन्ददादा और नित्यस्वरूप क्या करें, तो इन्होंने उत्तर दिया कि वे

श्रीधाम वृन्दावन चले जायें। वे इन्हें प्रणामकर श्रीधाम वृन्दावन चले गये। एकदिन सातगाछियाके श्रीकुञ्जलाल गोस्वामी बाबाजी महाशयके दर्शन करने आये। उन्होंने जैसे ही प्रणाम किया, वे बोले, 'कुञ्ज, कुछ गायके शुद्ध घीकी बड़ी जरूरत है। क्या करोगे बताओ ?'

कुञ्ज—यशोहरमें मक्खन मिलता है। उसे लेकर घी न निकाल लिया जाय ?

बाबाजी—वही ठीक होगा। तुम शीघ्र जाओ, जहाँ शुद्ध मक्खन मिलता हो वहाँसे दस-बारह सेर मक्खन लेआओ। कल अष्टप्रहर कीर्त्तन आरम्भ होगा।

कुञ्ज गोस्वामी हाथ जोड़कर बोले, 'जो आज्ञा !' और दण्डवत प्रणामकर हुगली निवासी श्रीनवगोपालदेके खर्चेसे पन्द्रहसेर मक्खन ले आये। बाबाजी महाशयने बहुत संतुष्ट हो घी निकालनेका आदेश किया। इधर वे अपनी मनोवृत्तिके अनुसार अष्टप्रहर कीर्त्तनकी व्यवस्था करने लगे। दूसरे दिन सबेरा होते-होते बड़े कमरेमें नाम होने लगा। अपूर्व नामकी ध्वनिसे लोग मुग्ध होने लगे। क्रमशः लोगोंकी संख्या बढ़ती गई। कमरेके फर्शपर घी उड़ेला जा रहा था। एक ओर घीका दीपक जल रहा था। बीचमें तुलसी वृक्ष और कई चित्रपट रखे थे। तुलसी परिक्रमाके साथ नाम हो रहा था। फर्श पर इतनी फिसलन हो गई थी कि थोड़ासा भी तेज चलनेसे अपनेको साधना कठिन था। बाबाजी महाशय किसी-किसी भाग्यवान भक्तको फर्शपर लिटाकर चरणसे दबाने लगे। कमरेका दरवाजा और खिड़कियाँ बन्द थीं। चारों ओर दीवारपर बड़े-बड़े अक्षरों में नानारूप नाम लिखे थे। दीपककी कालिमा और घीके छींटों से नाम इतने ढ़क गये थे कि उन्हें पढ़ना कठिन था। गोविन्द

दादा बोले, 'अब देखेंगे कि नाम किस प्रकार सर्वशक्तिमान और नित्य है'। उन्होंने मन में सोचा—यह कोई जलसे नाम के कागज निकाल लेनेकी बात थोड़े ही है। यहाँ तो हाथसे लिखे हुए नामके ऊपर घीसे सनी कालिमा लगी है। गोविन्द-दादा जब मनही मन यह विचार रहे थे, बाबाजी महाशय मुस्कराते हुए बोले, 'क्यों रे गोविन्द! क्या सोच रहा है? नामके ऊपर कालौंस लगी है और वह नहीं मिट सकती। इसलिए नाम सर्वशक्तिमान नहीं है। यही न! यह तेरी भूल है। जो नित्य है, वह चिरकाल नित्य है। जो सर्वशक्तिमान है उसकी शक्तिमें क्या किसी प्रकारका अभाव हो सकता है। नाम की सर्व-शक्तिमत्ता और त्रिकाल सत्यता दिखानेके लिए ही निताइचाँद यह सब कुछ कर रहे हैं।' इतना कह आरोपित राधाकुण्डका जल लेकर एक-एक नामपर छींटा मारने लगे। दो ही एकबार छींटा देनेसे नाम पूर्वापेक्षा उज्ज्वल दीखने लगा। यह देख सबलोग अवाक् रह गये। तब गोविन्दानन्द को लक्ष्यकर कहने लगे, 'क्यों भाई, नाम सर्वशक्तिमान् है, यह बात समझमें आई? हाय रे कलिहत अविश्वासी जीव! साक्षात् वस्तुको भी अविश्वासके अन्धकारमें फेंककर मोहमय संसारमें वृथा भ्रमण करते हुए तनिक भी कुण्ठित नहीं होता। नित्य वस्तु कभी ढकी या छिपाई नहीं जा सकती, यह धारणा क्यों नहीं स्थायी हो पाती, निताइ जाने।' यह सुन एक सज्जन बोले, 'हमने तो प्रत्यक्ष ही नामको घृतमिश्रित कालिमासे ढका हुआ देखा। कैसे माने कि यह भ्रम था।'

बाबाजी—अच्छा यदि घृत-मिश्रित कालिमाने उसे ढक रखा था तो वह एकदम छूट कैसे गई?

सज्जन—हमने देखा कि वह आपकी शक्तिके प्रभावसे छूट गई।

बाबाजी—यही तुम्हारा भ्रम है। स्वयं प्रकाश वस्तुको कोई और प्रकाशित कर सकता है ?

सज्जन—इससे तो और भी उलझाव पैदा होता दीखता है। इसका यथार्थ सिद्धान्त क्या है, कृपाकर समझा दीजिए।

बाबाजी—चैत्रमासमें एक दिन बारह बजे आकाशमें बादल आये। अकस्मात् चारों ओर अंधकार छाया देख कोई सोचने लगा, संध्या हो गई है, कोई कहने लगा सूर्यको बादलोंने ढक लिया है, और कोई कहने लगा, आज सूर्यके तेजको बादलोंने नष्ट कर दिया। जिसकी जैसी धारणा थी वह वैसाही अनुभव करता था और कहता था। एक विचारवान् व्यक्ति विचार करने लगा, प्रखर-किरण सूर्य पृथ्वीसे बड़ा है, एक क्षुद्र मेघ उसे कैसे आच्छादित कर सकता है। इसलिए अवश्य इस मेघने हमारे दृष्टि-पथका अवरोध कर रखा है। सूर्य जैसा है वैसा ही है। नामको भी ऐसा ही समझना चाहिए। कालिमाने हमारे दृष्टि-पथ का ऐसा अवरोध कर रखा था कि हम किसी प्रकार नामके वर्ण या रूपका प्रत्यक्ष नहीं कर पाते थे। स्वप्रकाश नित्य वस्तु का यदि कोई आच्छादन कर दे या उसका नाश कर दे तो उसका नित्यत्व कहाँ रहा ? भगवान जिस प्रकार निरुपाधि, निर्विकार, नित्य सत्य वस्तु हैं, उनके नाम और धाम भी वैसे ही हैं। विकार नाम, धाम और स्वरूपको स्पर्श नहीं कर सकता, यह सदा याद रखना चाहिए। इस प्रकार नाना-रूप तत्वोपदेश द्वारा सबका संदेह-भंजन कर फिर नाम-कीर्त्तनमें योग देने लगे।

थोड़ी देर बाद कामाख्यादास बाबाजी महाशय आकर कहने लगे—इस महायज्ञमें सब लोग उपस्थित हैं, केवल राम-दादा बाहर हैं, आप अनुमति दें तो उन्हें बुला लाऊँ।

बाबाजी--वह कहाँ है ?

कामाख्या०—इस बगीचेके दरबाज पर बैठे नाम कर रहे हैं। आपका आदेश नहीं है इस लिए यहाँ नहीं आ रहे हैं।

बाबाजी—वह बड़ा स्वतंत्र है। मुझे पागल समझ मेरे कार्यमें बाधा डालता है। उसे लाने की जरूरत नहीं।

कामाख्या०—प्रेमके पात्रको ऐश्वर्यके नेत्रोंसे देखनेसे प्रेम नहीं रहता। उन लोगोंका प्रेम शुद्ध है। वे आपके शरीर पर कोई कष्ट देख सहन नहीं कर सकते। इसलिए स्नेहके वश ही आपके कार्यमें बाधा देने की इच्छा करते हैं। जो आपके लिए प्राण भी दे सकते हैं, उनमें स्वतंत्रता कैसे हो सकती है ?

बाबाजी महाशय और कोई उत्तर न दे सके और उन्होंने रामदादाको भीतर ले आनेके लिए कहा। कामाख्यादास प्रसन्न हो रामदादा को जाकर ले आये। रामदादाने जैसे ही दण्डवत् किया बाबाजी महाशय उन्हें उठाकर प्रेमालिंगनपूर्वक अपने अश्रुजलसे सिक्त करने लगे।

बाबाजी महाशय कभी बिलकुल नग्न, कभी धोती-कुर्त्ता पहने और कभी डोर-कोपीन और बहिर्वास पहने बैठे रहते थे। अस्कमात् न जाने क्या मनमें आया, प्रसादी डोर-कोपीन और बहिर्वास मँगाकर रामदादा से बोले, 'राम, यह लो, आज तुम्हारा भेख हो गया (आज से तुम वैष्णव सन्यासी हो गये)।' इतना कह उन्हें डोर-कोपीन पहना दिया और कानमें वैष्णव-सन्यास का मंत्र दे दिया। साथ ही तुलसीका गमला और पीच की लाठी हाथमें देकर बोले, 'जाओ जितने परिचित लोगहैं सबसे साक्षात् कर आओ।' रामदादाने गुरु-आज्ञा का पालन किया और यथासमय आदेशानुसार नामकीर्तनमें योग देने लगे। परमानन्द पूर्वक नाम चलने लगा। बीचमें जो नये भक्त आते

उन्हें बाबाजी महाशय राधाकुण्डमें स्नान करा या राधाकुण्डका जल स्पर्श करा, जिस कमरेमें नाम हो रहा था, उसमें लिटाकर और चरणोंसे दलित कर नाम-कीर्त्तनमें प्रवेश कराने लगे।

इस प्रकार आनन्दमें रात कब बीत गई, किसीको पता न चला। प्रभातमें नाम समाप्तकर एक साथीको प्रसन्नकुमार रायबहादुरके यहाँसे जाकर पंचतत्व, निताइगौर, राधागौर, हरपार्वती, गौर-गोविन्द, इत्यादिके चित्रपट ले आनेको कहा और स्वयं मालसा भोगकी तैयारी करने लगे। चित्रपट आ जानेपर भोग लगाकर और महाप्रसाद ग्रहणकर विश्राम करने लगे।

केदारबाबूके बगीचेमें निवास करते समय कोई भी उनसे बिना पूछे कुछ न कर सकता था। यहाँतक कि क्या रसोई बनेगी और कितने परिमाणमें बनेगी यह भी उनसे पूछना पड़ता। रोज सबेरे जब इनसे रसोईके बारेमें पूछा जाता तो सात आठ व्यक्तियोंकी रसोई बनानेको कहते पर भोगके पश्चात् प्राय: पचीस-तीस व्यक्तियोंका एकसाथ बैठकर प्रसाद पाना भी जरूरी था। यदि किसी दिन कोई वहाँ न रहता तो नीलरतन आदिको भेज किसी प्रकार लोगोंको बुलवा लेते। किसी-किसी दिन यदि कोई कहता, 'लोग अधिक होंगे, इसलिए कुछ अधिक दाल-भात करवा लिया जाय' तो क्रुद्ध होकर कहते, 'बाबा, जिसका जो काम है, करे। तुम्हें रसोई बनाकर भोग देना है। भोग दे दो। परसनेका दायित्व तुम्हारे ऊपर नहीं है। निताइचाँदके प्रसादसे क्या कोई वंचित रह सकता है? तुम जब अन्तमें महाप्रसाद पाते हो तो तुम्हें कुछ कम पड़ता है क्या?' साथी लोग निरुत्तर। वास्तवमें सात-आठ लोगोंकी रसोई बनती थी और पचीस-तीस व्यक्ति पेट भर खाते थे।

किसी दिन भी किसीको एकमुट्ठी कम नहीं पड़ा। इस प्रकार नानाविध ऐश्वर्य-माधुर्य मिश्रित लीलामें दिन बीतने लगे।

एक दिन श्रीयुत दीनबन्धु काव्यतीर्थ महाशय बाबाजी महाशयसे मिलने आये। उनके हाथमें सोनेकी अँगूठी, घड़ी और चेन थी। और वे सोनेके तारमें पुए हुए तरह-तरहके ताबीज पहने थे। वे जैसे ही बाबाजी महाशयके सम्मुख उपस्थित हुए, आदेश हुआ, 'सिर्फ पहननेके कपड़े छोड़ बाकी जो कुछ तुम्हारे शरीर पर है, राधाकुण्डमें फेंक दो।' काव्यतीर्थ महाशय पहले किंकर्तव्य विमूढ़ हो खड़े रहे, फिर 'आज्ञा गुरूणाम् हि अविचारणीया' कहते-कहते सब चीजें राधाकुण्डके बीचमें जाकर फेंक आये और बाबाजी महाशयको प्रणामकर उनके पास बैठ गये। नाना रूप तत्त्व कथा चल रही थी। दो घंटे बीत गये। इस बीच न जाने कितने लोगोंके घड़ी, चेन, अँगूठी, हार, ताबीज आदि राधाकुण्डमें फेंके गये। यह देख काव्यतीर्थ महाशय मन ही मन सोच रहे थे, 'बाबाजी महाशय यह क्या कर रहे हैं, कुछ समझमें नहीं आ रहा। मन जब तक बन्धनमुक्त न हो, बाहरकी वस्तुओंके परित्यागसे क्या लाभ? इतने मूल्यकी वस्तुएँ जलमें फेंकनेके बजाय किसी सत्कार्यमें लगाई जा सकती थीं। कहीं बाबाजी महाशयका दिमाग तो खराब नहीं हो गया है? कुछ समझमें नहीं आ रहा है।' इत्यादि। बाबाजी महाशय मृदुमुस्कानके साथ बोले, 'क्यों रे काव्यतीर्थ, इतनी कीमती-कीमती चीजें जलमें फेंककर तुझे बड़ा कष्ट हो रहा है न? अच्छा!' इतना कह एकदम राधाकुण्ड में कूद पड़े और घाटके निकट एक डुबकी लगाकर काव्यतीर्थ महाशय और उपस्थित अन्य लोगोंके घड़ी, चेन, अँगूठी इत्यादि निकाल लाये और काव्यतीर्थ महाशयकी सब चीजें हाथमें ले

उनसे बोले, 'क्यों, यह तो सब तुम्हारी हैं न !' सब लोग देखकर अवाक् ! काव्यतीर्थ महाशय चुप। सब एक दूसरेसे कहने लगे, 'कैसे आश्चर्यकी बात है। भिन्न-भिन्न समयपर भिन्न-भिन्न स्थानोंमें चीजें फेंकीं गईं। यह एक ही डुबकीमें एक ही जगह से न जाने कैसे निकाल लाये।' थोड़ी देर बाद काव्यतीर्थ महाशय साश्रु गद्गद् कंठसे बोले, 'अपनी चीजोंके लोभके कारण मेरे मनमें यह विचार नहीं आया था। मैं तो आपकी महिमा न समझ सकनेके कारण मनमें तरह-तरह की कल्पना कर रहा था। मुझे क्षमा करें। इन सब चीजोंका आप जो चाहें करें, मुझ कोई आपत्ति नहीं।' बाबाजी महाशय ने उनकी बात पर ध्यान न दे और उन सब चीजोंको उन्हें देते हुए कहा, 'अच्छा, अभी इन्हें अपने पास ही रहने दो। मुझे जब जरूरत होगी, माँग लूँगा।' काव्यतीर्थ महाशय कुछ और न कह सके और सब चीजें ले लीं।

एक दिन बाबाजी महाशय बैठे थे। बाहरसे आये हुए कई भक्त उनके पास बैठे नाना रूप प्रश्न कर रहे थे और वे प्रसन्न हो उत्तर दे रहे थे। उसी समय अकस्मात् एक व्याकुल स्त्री रोते-रोते उनके पास आयी। उसे देख लोगोंमें हलचल मच गयी। बाबाजी महाशयने पूछा, 'क्यों माँ, तुम्हें क्या हो गया है ?'

स्त्री—बाबा, मेरा एक ही पुत्र है, और इस जगत्में कोई नहीं है। मेरी इस अन्धेकी लकड़ी को प्लेग हो गया है, उसके बचनेकी कोई आशा नहीं है। इसलिए आपके पास आई हूँ। मेरे बालक को बचा दीजिए, नहीं तो मेरे मरनेका कोई उपाय कर दीजिए। मैं आपसे यही भिक्षा चाहती हूँ।

बाबाजी—ऐसी क्या बात है माँ, जाकर नाम करो, रज

और चरणामृत दो, मंगलमय सब प्रकारसे मंगल करेंगे।

स्त्री—बाबा, मैं यह कुछ नहीं सुनना चाहती। मैं कुछ नहीं कर सकती। आपकी जो इच्छा हो कीजिए। यदि आप उसकी रक्षा नहीं करेंगे तो आपके चरणोंमें आत्म-हत्या कर शोक सागर से पार हो जाऊँगी।"

इतना कहकर वह व्याकुल भावसे रुदन करने लगी। उसके कातर क्रन्दनने सबको विकल कर दिया। बाबाजी महाशय भी उसको तरह-तरह से बहला फुसलाकर हार गये तो बोले, 'लडके को यहाँ ला सकती हो क्या ?'

स्त्री—यदि आप कहें तो ले आऊँ।

बाबा०—अच्छा ले आओ।

स्त्री भागी हुई गई और लड़केको ले आई। लड़केकी उमर कोई दस बरसकी होगी। आते ही बाबाजी महाशयने कहा 'जा, इसे राधाकुंडमें छोड़ दे।' दृढ़भक्तिमती स्त्रीने उनके आदेशानुसार घाटपर जा लड़केको जलमें छोड़ दिया। करुणामयकी कृपासे तीन-चार मिनटमें ही लड़का अपनी शक्तिसे उठकर किनारेपर आ गया। स्त्रीने मानो अपना खोया हुआ धन पा लिया। बालकका हाथ पकड़ उसने उसे बाबाजी महाशयके चरणोंमें समर्पण किया। बाबाजी महाशयने भी बालकको आलिङ्गन-दान करते हुए उसकी माँसे कहा, 'जा माँ, तू भी राधाकुंडमें डुबकी लगाकर कृपामय निताइ चाँदके दिये बालकको घर ले जा। अब कोई भय नहीं।' स्त्रीने भक्ति विगलित हृदयसे बाबाजी महाशयको दण्डवत् प्रणाम किया और बालकको घर ले गई। उपस्थित भक्तवृन्द इस अलौकिक घटनाको देख विग्मुध हो गये और बाबाजी महाशयके चरण पकड़ साश्रु गद्गद् कंठ से बोले, 'बाबा कृपा कर हमारा माया

मोह दूरकर जीवन भरके लिए अपने चरणों का दास बना लीजिए। अब हमें वंचित न कीजिए। जिस प्रकार हमारी भक्ति दृढ़ हो वैसा उपदेश कीजिए। हमने देखा, केवल अपनी दृढ़ता के बलसे किस प्रकार एक अनपढ़ स्त्रीने अपने बालकको बचा लिया। धिक्कार है हमारे कुल, मान और विद्या को, धिक्कार हमारे अविश्वासी हृदयको। इतना कह वे सब बालकके समान रोदन करने लगे। बाबाजी महाशय मृदु वाक्योंसे उन्हें आश्वासन देते हुए बोले—बाबा, धन्य कलियुग ! दूसरे युगोंके समान इस युगमें कठोर साधन करनेकी आवश्यकता नहीं। महाप्रभुने श्रीमुखसे कहा है—

खाइते शुइते जथा तथा नाम लय।
काल देश नियम नाहि सर्व सिद्धि हय॥

भक्त—नाममें दृढ़ विश्वास कैसे हो ?

बाबाजी—नाम सर्वशक्तिमान है। एकमात्र नामसे सर्वाभीष्ट की पूर्ति होती है। कलियुग में और कोई साधन नहीं है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥
हर्षे प्रभु कहे स्वरूप राम राय।
नाम संकीर्तन कलौ परम उपाय॥
संकीर्तन हइते पाप संसार नाशन।
चित्तशुद्धि सर्वशक्ति साधन उद्गम॥
कृष्णप्रेमोद्गम प्रेमामृत आस्वादन।
कृष्णप्राप्ति सेवामृतसमुद्रे मज्जन॥ इत्यादि।

सारांश यह है कि नाम कल्पतरु हैं। जिसकी जो अभिलाषा होती है, नाम उसकी पूर्ति करता है।

भक्त—अच्छा, नाम तो त्रिकाल सत्य है न। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि चारों युगोंमें वर्तमान और सर्वशक्तिसम्पन्न है। तब उसके फलका युगानुसार तारतम्य क्यों ?

बाबाजी—नामके फलमें विशेष तारम्य न होते हुए भी प्रक्रिया का भेद है, क्योंकि सतयुग के लोग जिस प्रकार दीर्घायु, ध्याननिष्ठ, सत्वगुणसम्पन्न और दृढ़ श्रद्धावान होते हैं, त्रेता युगके लोग उतने नहीं होते। इसी प्रकार त्रेताकी अपेक्षा द्वापर और द्वापरकी अपेक्षा कलियुगके लोगोंमें कमी होती है। कलियुग के जीव अल्पायु, अन्नगत प्राण और कोमल श्रद्धा-सम्पन्न हैं। इसलिए अन्य युगोंकी भाँति इस युगमें कठोर साधन असंभव हैं और इसीलिए प्रभुने इस प्रकारकी व्यवस्थाकी है। अन्यान्य युगोंमें बड़े-बड़े साधनोंसे भी जो वस्तु प्राप्त नहीं होती, कलियुगके अविश्वासी, कोमल श्रद्धावान, अल्पायु और आचार-हीन लोगोंको बिना किसी साधनके अनायास प्राप्त हो जाती है। यह कलिके जीवोंके प्रति प्रभुकी कृपा छोड़ और कुछ नहीं है। जिस प्रकार असमर्थ और अज्ञान संतानके प्रति माता-पिता की कृपा अधिक होती है, उसी प्रकार हमारे प्रति भगवानकी कृपा है। इसको यदि लोग साधन-गत कहें तो उनकी भूल होगी, यह कृपा-गत है। इसीलिए रूपगोस्वामीने कहा है—

अनर्पितचरीन् चिरात् कारुणयावतीर्णः कलौ।
सपर्पायितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम् ॥
हरिः पुरटसुन्दरद्युति कदम्बसन्दीपितः।
सदा हृदयकन्दरे स्फुरति वः शचीनन्दनः॥

नाना रूप तत्व कथा आलोचनाके पश्चात् भक्तोंने अपने-अपने घरको प्रस्थान किया। बाबाजी महाशय भी अपना नित्य कृत्य करने लगे।

बाबाजी महाशयके पास सदा लोगोंकी भीड़ लगी रहती थी। तरह-तरहकी व्याधियोंसे लोग उनके पास आते थे। किसीको नेत्र-रोग होता, किसीको दमा, अम्ल-शूल इत्यादि। लेकिन इनके पास सब प्रकारकी व्याधियोंकी एकही औषधि थी। कोई रोगी कातर भावसे कहता, 'मुझे दमा है। देखिए, न जाने कितने गण्डे ताबीज पहन रखे हैं।' बाबाजी महाशय कहते, "अच्छा इन्हें सबको राधाकुण्डमें फेंक दो और तुम राधाकुण्डमें गोता लगा घर चले जाओ। सब ठीक हो जायेगा।' जो इनकी बातमें विश्वास कर गोता लगा लेता उसका रोग दूर हो जाता, जो विश्वास न कर सकता, वह वंचित रहता।

एक दिन नौ बजेके लगभग दो स्त्रियाँ बारह वर्षके एक बालकको पकड़कर राधाकुण्डके किनारे तक लाईं। पर बालक और न चल सका और अवसन्न होकर गिर पड़ा। उसे पानीसा पतला एक दस्त हुआ। मुँहसे बोल निकलना बन्द हो गया। शरीर बरफके समान ठंडा हो गया। हाथ-पैर ऐंठने लगे और पसीना छूटने लगा। यह देख उनमें से कुछ अधेड़ उम्रकी स्त्री ने व्याकुल हो उच्च स्वरसे रोते हुए बाबाजी महाशयके चरण पकड़ लिए और कहने लगी, 'बाबा यह मेरा एक ही पुत्र है। कल रातसे इसे बराबर दस्त और कै हो रहे हैं। मैं अपनी बहन को साथले इसे किसी प्रकार पकड़ कर आपके पास ला रही थी। पर वह पुष्करिणीके किनारे तक आकर एकदम बेहोश हो गया। अब पता नहीं मुझ दुःखिनीके अंचलका धन जीवित है या नहीं। आप कृपा कर एकबार उसके मस्तकपर अपनी चरण-धूलिदें, जिससे वह जी उठे।' इतना कह, वह चीख मारकर रोने लगी। बाबाजी महाशयका करुण हृदय द्रवित हो गया। वे धीरे-धीरे बोले, 'माँ, मैं क्या करूँ। डाक्टर या वैद्यको

दिखाओ नहीं तो विश्वास पूर्वक रज और चरणामृत दो। पर-मायु होगी तो बच जायेगा।' स्त्री इनके चरण पकड़ कर बोली, 'बाबा मैं रज जानती हूँ न चरणामृत। जो कुछ करना है, आप कीजिए। मैं अनाथ हूँ। अपने एक मात्र सम्बल इस बेटेको आपके चरणोंमें समर्पित करती हूँ। आप मुझे रखें चाहे मारें।' तब बाबाजी महाशयसे न रहा गया। बोले, 'चल, देखूँ।' स्त्री की मृत देहमें जैसे प्राणोंका संचार हो गया। वह झट उठकर आगे-आगे चलने लगी। बबाजी महाशय और अन्यान्य भक्तवृन्द उसके पीछे-पीछे जाने लगे। बालकके पास जाकर देखा कि उसकी अवस्था बहुत खराब है। उसका रंग फीका पड़ गया है। बहुत देर तक ध्यानसे देखे बगैर पता नहीं चलता कि उसमें साँस है। बाबाजी महाशय बोले, 'माँ, तेरे बालककी अवस्था तो बहुत खराब है। क्या करूँ?'

स्त्री—बाबा, वह मेरा नहीं है, मैं उसे आपके चरणोंमें समर्पण कर चुकी हूँ। आप जो चाहें करें।

बाबाजी—अच्छा तो तुम दोनों उसे पकड़ कर राधा-कुण्डमें उतारो। दोनों के उसे राधाकुण्ड में उतार देने पर बाबाजी महाशय बोले, 'तुम दोनों जलमें डुबकी लगाओ और उससे भी लगवाओ।' उन्होंने ऐसा ही किया। पहली डुबकीमें तो कुछ नहीं हुआ, पर दूसरी डुबकीमें बालकको चैतन्य हो आया। वह आँखें खोल चारों ओर देखने लगा। तब बाबाजी महाशय बोले, 'और एक डुबकी लगाओ और घर चले जाओ।' वे जब तीसरी बार उसे डुबकी दिलाने लगीं, वह बोला, 'मुझे छोड़ दो, मैं आपही डुबकी लगा लूंगा।' वह डुबकी लगाकर किनारे पर आ गया। फिर दोनों स्त्रियां और वह बालक, बाबाजी महा-शयके चरणोंमें गिर गये। बाबाजी महाशय गद्‌गद् कण्ठसे

'जय निताई, जय निताई' कहने लगे। फिर उन्हें घर जानेका आदेश कर अपने स्थान पर आकर बैठ गये।

उसी समय एक अंधेने आकर कहा, 'बाबा, मेरी दोनों आँखें ठीक कर दीजिए। मैं बड़ा कष्ट पा रहा हूँ।' बाबाजी महाशय अर्धस्फुट स्वरसे बोले, 'जा, राधाकुण्डमें गोता लगा आ।' वह व्यक्ति गोता लगा कर आ गया। इनके सामने एक हुक्के की सलाख थी। इन्होंने उस लौह शलाका द्वारा अंधेके दोनों नेत्र आँज दिये। ऐसा करते ही उसे दृष्टि-शक्ति फिरसे प्राप्त हो गई। वह कातर हृदयसे इनके चरण पकड़ रोने लगा। इन्होंने आदेश किया—'जाओ हृदयसे निताइ चाँदको पुकारो। कोई विपत्ति न आयेगी।'

इस समय ये प्रायः नग्नावस्थामें रहते थे। एक दिन 'कालू टोला' निवासी श्रीकुञ्जविहारी मल्लिककी माँ एक जोड़ा रेशमी वस्त्र और नाना प्रकारके व्यञ्जन लेकर आईं। बाबाजी महाशय उन्हें देखते ही 'माँ माँ' कहते हुए जैसे ही बालकके समान उनके निकट गये उन्होंने वह रेशमी वस्त्र पहनाकर अपनी गोदमें बिठा लिया। इधर उनकी लाई हुई सामग्रीका ठाकुर भोग लगाया गया। भोग लग जाने पर माँ अपने हाथसे उन्हें खिलाने लगीं। ये भी बालकके समान प्रेमसे खाने लगे। एक ब्राह्मण यह वात्सल्य-रसकी लीला देख रहा था। उसका लक्ष्य बराबर रेशमी वस्त्रों पर था। थोड़ी देर बाद जैसे ही कुञ्जबाबू और उनकी माता चले गये, इन्होंने रेशमी वस्त्र उतार उसे दे दिये। ब्राह्मण अभिलषित वस्तु पाते ही परमानन्द पूर्वक वस्त्रोंको पहन इनके अन्तर्यामित्व और मातृत्व शक्तिकी जय-घोषणा करने लगा।

एक दिन सुप्रसिद्ध डब्ल्यू० सी० बनर्जीके भतीजे श्रीयुक्त-

ब्रजलाल बन्द्योपाध्याय और श्रीयुक्त अमरकृष्ण दत्त बाबाजी महाशयके दर्शन करने आये। दोनोंके गलेमें दमेके ताबीज थे। ब्रज-बाबूका ताबीज ऐसा था कि उसे गलेसे निकालते ही दमा होने लगता था। दैववश बाबाजी महाशयकी दृष्टि उस ताबीज पर पडी। वे बोले—'तुम लोग अपने गलेका ताबीज राधाकुण्डमें फेंक आओ,तब तुमसे कोई बात होगी।' ब्रजबाबू बोले, 'ताबीज़ खोलते ही, मुझे भयानक दमा होने लगता है।' बाबाजी महा-शय बोले, 'रोगके रहते ही तो औषधिकी जरूरत होती है, रोग न रहे तब!' तब अमरकृष्णबाबू बोले, 'रोग न रहे तो फिर क्या जरूरत है।' बाबाजी महाशय बोले, 'रोग होगा तो निताइ चाँद देखेंगे।' दोनोंने अपने-अपने ताबीज खोलकर राधाकुण्डमें फेंक दिये। पहले ब्रजबाबू डरे कि जाने क्या होगा। पर दो-तीन घण्टे तक बाबाजी महाशयके साथ नाना रूप तत्व कथा होती रही और कुछ भी न हुआ तब ब्रजबाबूको बाबाजी महाशयकी बात पर दृढ़ विश्वास हो गया। उस दिनसे इन दोनोंको कभी दमा नहीं हुआ।

एक दिन हावड़ाकासन्दे ग्राम निवासी श्रीयुक्त अनुकूल चंद्रदास नामक एक भक्त बाबाजी महाशयके दर्शनके लिए आये। उनके पास कपड़ा लत्ता जो कुछ भी था सब कामाख्यादास बाबाजी महाशयके घर रख आये थे। वे खूब अफीम खाया करते थे। अफीमकी डिब्बी भी बड़े यत्नसे कुर्तेकी जेबमें रख आये थे। वे एक दिन अन्न न खाकर रह सकते थे पर अफीमके बगैर उनका काम एक दिन भी न चलता था। वे जैसे ही नंगे बदन बाबाजी महाशयके निकट पहुँचे और उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर बैठे,बाबाजी महाशयने पूछा, 'अनकूल, तुम्हारे पास अफीम थी, क्या की?' अनकूलका चेहरा फक पड़ गया। वे बोले, 'कामाख्यादादाके घर

रख आया हूँ।' उसी समय बाबाजीने एक व्यक्तिको आदेश किया, 'देखो, कामाख्यादासके घर अनुकूलके कुर्तेको जेबमें अफीम की डिब्बी है, उसे झट ले तो आओ।'

अनुकूल०—मैं जा रहा हूँ।

बाबा०—न बाबा, तुम ठहरो।

आदिष्ट व्यक्ति जल्दीसे अफीमकी डिब्बी ले आया। बाबाजी महाशयने डिब्बी खोली और अनुकूलसे पूछा, 'इसमें कितनी अफीम है ?'

अनुकूल०—कल एक रुपया भर खरीदी थी। उसमेंसे चार आना खर्च हुई है, बारह आना बाकी है। मेरा ऐसा कु-अभ्यास हो गया है कि इसे खाये बगैर उठ बैठ-नहीं सकता। मैं भात और जल बगैर रह सकता हूँ, पर अफीम बगैर नहीं रह सकता।

बाबाजी महाशय उनकी बात सुन रहे थे और अफीमके ढेलेको गोल करते जा रहे थे। उनकी बात समाप्त होते न होते 'जय नित्यानन्द राम' कहते हुए उन्होंने बारह आना भर अफीम की गोली मुँहमें डाल ली और अनकूल बाबूसे बोले, 'जाओ, अब तुम्हें अफीम नहीं खानी पड़ेगी।' उसी मुहूर्तसे अनुकूल बाबू का अफीमका नशा छूट गया। वे कहते थे गुरुदेवकी कृपासे उस दिनसे भूलसे भी मुझे अफीमका ध्यान नहीं आता' यहाँ तक कि कभी मैं अफीम खाया करता था, यह भी धारणा नहीं आती। मेरे शरीरको भी इससे किसी प्रकारकी हानि नहीं हुई।'

एक दिन प्रातः काल इन्हें न जाने क्या उचंग उठी कुछ गायका घी मँगा उसे एक सौ आठ बार धोकर रख लिया। किसीने पूछा, 'इसका क्या होगा ?' बाबाजी महाशय मुस्कराते हुए बोले, 'कुछ विशेष प्रयोजन है। पीछे जान लोगे।' चार-

पाँच दिन बाद कुलूटोलाके कुंजबाबू आये। उनके मुँह पर और सिरमें बड़े घाव हो रहे थे जो विषाक्त थे। डाक्टरी और वैद्यकी इलाज और तरह-तरहकी जड़ी-बूटियोंका प्रयोग करने परभी कुछ लाभ नहीं हुआ था। यंत्रणा बहुत होती थी। न जाने क्या सोचकर आज बाबजी महाशयके पास आये। आते ही बाबाजी महाशय बोले, 'कई दिनासे निताई चाँदने यह घावकी औषधि तैयार करा रखो है। आप आये नहीं, इसलिए आपको नहीं दी जा सकी।' कुंजबाबू बोले, 'मैंने बहुत इलाज किया है, पर कुछ फल नहीं हुआ। अब आपकी कृपाका ही भरोसा है। बाबाजी महाशयने वह एक सौ आठ बार धोया हुआ घी मँगा कर फणि द्वारा क्षत स्थानों पर अच्छी तरह लगवा दिया और साथ ही साधारण लोगोंके विश्वासके लिए या प्रतिष्ठासे अपनी रक्षा करनेके लिए बगीचेमें से ऐसे ही किसी पेड़का पत्ता हाथसे मसल कर उसका रस क्षत स्थानों पर लगा दिया। लगाते ही यत्रणासे निवृत्ति हो गई और कुछ दिनोंमें घाव सूख गये। इस प्रकार केदारबाबूके बगीचेमें रहते समय न जाने कितनी असाध्य व्याधियाँ इनके कृपाकटाक्षसे अच्छी होने लगीं।

एक दिन ग्यारह बजेके समय फ़रीदपुरसे वृन्दावन दादा बाबाजी महाशयके दर्शनके लिए आये। बाबाजी महाशय उन्हें देखते ही गद्‌गद् कंठसे बोले, 'तू आ गया! आ, मैंने बहुत दिनों से तृप्तिके साथ भोजन नहीं किया, आज तेरे हाथसे खाकर तृप्त होऊँगा।' वृन्दावनदादा भी आनन्दोत्फुल्ल हो पास जा बैठे। बाबाजो महाशयकी तात्कालिक अवस्था ठीक बालककी तरह थी। कोई कपड़ा पहना जाता तो दूसरे क्षण उसे खोल किसी को दे देते। कभी कहते 'मैं अभी स्नान करूँगा' फिर

तुरन्त ही कहते 'नहीं मैं आज स्नान नहीं करूँगा' खान-पानमें सदा अनिच्छा रखते। प्रसाद पाने बैठते तो नानारूप मनठन करते। आज वृन्दावन दादासे बोले, 'मुझे तो बड़ी जोरकी भूख लगी है, शीघ्र महाप्रसाद ले आओ।' आदेश पाते ही सेवकगण महाप्रसाद ले आये। वृन्दावन दादा अपने हाथसे खिलाने लगे। पर थोड़ा ही लेकर बालकके समान अनिच्छा प्रकट करने लगे। वृन्दावन दादा नानारूप प्रबोध वाक्योंसे प्रसाद सेवन कराने लगे; कभी प्यारसे और कभी डाट-डपट कर। जब वृन्दावन दादा कपट शासन करते तो ये कहते 'मैं क्या तेरा शिष्य हूँ जो तेरी आज्ञा मानूँगा ?'

वृन्दावन कहते 'शिष्य नहीं तो क्या ? गुरु आज्ञा पालन न करनेसे अपराध होगा। इसलिए मैं जो भी कहूँ, उसे मानो।' बाबाजी महाशय और कुछ न कहकर चुपचाप खाने लगते। इस प्रकार वृन्दावन दादा जब कोई भी बात कहते तो 'गुरुदेव की आज्ञा' कहकर शीघ्र उसे करने लगते। इससे सेवकगण बहुत प्रसन्न थे। क्योंकि जब किसीका कोई काम अटकता तो वृन्दावनदादाके द्वारा उसे करा लेते। वृन्दावन दादा भी बड़े प्रेमके साथ फरीदपुर से नाना प्रकारके पदार्थ मँगा बाबाजी महाशयकी सेवा करने लगे। बाबाजी महाशयके प्रति वृन्दावन-दादाकी प्रीति-भक्ति और वृन्दावन दादाके प्रति बाबाजी महा-शयका स्नेह देखकर एक भक्त रामदादासे बोले, 'दादा, इन महात्माजीको तो मैंने कभी पहले बाबाजी महाशयके साथ नहीं देखा था। यह कौन हैं और कबसे बाबाजी महाशय इन्हें जानते हैं ? इनके बारेमें कुछ जाननेके लिए हम लोग बहुत उत्सुक हैं।'

रामदादा—इनका जन्मस्थान फरीदपुर जिलेमें है। इनका पूर्वाश्रम का नाम श्रीयुक्तसुधन्यकुमार मित्र था। ये बड़े सदा-

शय व्यक्ति हैं। एक प्रकारसे मेरे प्रारम्भिक गुरु हैं। बहुत दिन पहले हम लोग दोनों श्रीजगद्बन्धु प्रभुके साथ रहते थे। किसी कारणवश हम दोनोंको उनका संग छोड़ना पड़ा। ये श्रीधाम वृन्दावन जा और सिद्ध महात्मा श्रीयुक्त प्रेमदास बाबाजी महाशयसे भेख ले कठोर भजन करने लगे। अकस्मात् किसी कारण से ये बिलकुल पागल जैसे हो गये, यहाँ तक कि वृन्दावनका परित्याग कर नाना देश देशान्तर भ्रमण करने लगे। सन् १३०३ (बंगाब्द) में जब बाबाजी महाशय पुरी जानेके विचारसे अपने साथियोंके साथ कलकत्ते आये थे उस समय एक दिन हम कई लोग बाबाजी महाशयके साथ गंगा-स्नानके लिए निमतला घाट जा रहे थे। अकस्मात् देखा कि वे रास्ते में लेटे हुए हैं। इनकी शारीरिक अवस्था बहुत खराब है और ये पहचाननेमें भी नहीं आ रहे हैं। मुझे देखते ही बोले, 'क्यों रे रामदास, कुछ खानेको देगा?' कण्ठस्वरसे मैंने इन्हें पहचान लिया और बाबाजी महाशयसे इनका सारा वृत्तांत कह सुनाया। बाबाजी महाशयने बड़े आग्रहके साथ इन्हें साथ ले चलनेके लिए कहा। हम लोग नानारूप कौशलसे इन्हें श्रीयुक्त मुकुन्दघोष महाशयके घर ले गये और हर प्रकारसे इनकी सेवा सुश्रूषा करने लगे। बाबाजी महाशय बोले, 'उसे पुरी ले जाकर उड़िया मठकी तोड़ानी, जगन्नाथका चरणामृत और कुण्डका चरणामृत पिलाने और नरेन्द्र सरोवरकी कीचड़ उसके सिरमें लगानेसे वह ठीक हो जायेगा।' थोड़े ही दिन कलकत्ते रहकर हम लोग पुरी लौट आये इनका चाँचल्य दूर हो गया और ये जड़ के समान हो गये। किसीसे बात चीत न करते, बैठ जाते तो बैठे ही रहते। कोई जबर्दस्ती उठा देता तो उठते, कोई खिलाता तो खाते। इसी अवस्थामें इन्हें पुरी ले जाया गया। बाबाजी महा-

शयके आदेशानुसार पूर्वोक्त प्रकारसे इनकी शुश्रूषा होने लगी। एक दिन बाबाजी महाशय संकीर्तन करते-करते इन्हें आलिंगन कर बोले, 'अब कोई भय नहीं। तुम्हारे जितनेभी पाप-ताप और अपराध हैं, मैंने ले लिए। तुम निर्मल भावसे निताई चाँद का गुण गान करते हुए मनुष्य जन्म सफल करो। मन ही मन गुरुदेवसे क्षमा-प्रार्थना करो। दाता-शिरोमणि गुरुदेव अभय-दान करेंगे।' वृन्दावन दादा भी व्याकुल हो रोते-रोते बाबाजी महाशयके चरणोंमें गिर गये। उन्होंने फिरसे इन्हें आलिंगन कर रहा. 'कोई भय नहीं, जाओ कीर्तन करो।' वृन्दावन दादा यथावत् प्रकृतिस्थ हो गये। कुछ दिन तक बाबाजी महाशयके साथ रहे फिर उनके आदेशसे फरीदपुर जाकर और एक औषधालय खोलकर उसकी आमदनीसे परोपकार और साधु-वैष्णव सेवा करने लगे। तबसे ये बड़े प्रेमसे वैष्णव-सेवा करते हैं। वैष्णवोंके भजनमें हर प्रकारसे आनुकूल्य करने का प्रयत्न करते हैं। रोगियोंकी सेवा तन-मनसे करते हैं। इसलिए बाबाजी महाशयकी इनके प्रति बड़ी श्रद्धा है और इन्हें भी बाबाजी महाशयके चरणोंमें विशेष भक्ति और विश्वास है।

भक्त यह सुन बिस्मित भावसे बाबाजी महाशयकी कृपा की जय बोलने लगा।

एक दिन कुञ्जबाबूकी माँ नाना प्रकारके व्यञ्जन लेकर आईं। वात्सल्यमयी माँ के मनका भाव क्या था, अंतर्यामी प्रभु ही जाने। उनके आते ही बाबाजी महाशय पाँच वर्षके बालकके समान कूद कर उनकी गोदमें बैठ गये। माँ भी पुत्रको गोदमें ले कुछ देर स्वच्छन्द घूम-फिर कर बैठ गईं। यह परमानन्द पूर्वक माँका स्तन-पान करने लगे। सब देख कर अवाक् रह गये, क्योंकि कुञ्जबाबूकी माँ बहुत बूढ़ी थीं। उनके लिए

इन्हें गोदमें लेकर घूमना तो दूर रहा एक स्थान पर गोदमें लेकर बैठना भी असंभव था। परन्तु भावराज्यमें श्रीयोगमाया की कृपासे असम्भव भी अलक्षित रूपसे सम्भव हो गया। माँ प्रेमाविष्ट हो नाना प्रकारके व्यञ्जन बाबाजी महाशयके मुखमें देने लगीं। श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—

'भाव स्वभाव और स्वरूप शरीर के ये तीन प्रकार हैं। इनमें से यदि भाव और स्वभाव स्थायी हों तो स्वरूपके भिन्न होते हुए भी किसी प्रकारकी बाधा नहीं होती। जैसे, मान लो कोई व्यक्ति बैठा है। अकस्मात् तीन स्त्रियाँ उसके पास आती हैं। वयस, वेशभूषा और रूप-गुणमें तीनों एक सी हैं। पहली द्रुतगति से जा पुरुषकी गोदमें बैठ जाती है और वात्सल्य रसमे डूब नाना रूप कुशल प्रश्न करने लगती है। वह इतनी विह्वल हो जाती है कि उसके वस्त्रादि स्थान-च्युत होने पर भी वह निर्वि-कार भावसे गोदमें बैठी रहती है। यह युवती उस व्यक्तिकी कन्या है। वह जैसे ही उसकी गोदसे उतरती है दूसरी युवती गोदमें बैठ जाती है और सख्य रसमें निमग्न हो नाना रूप कुशल प्रश्न पूछने लगती है। वह भी निर्विकार भावसे निःसकोच उत्तर देता है। यह उस व्यक्तिकी छोटी बहन है। इन दोनों युवतियों के स्पर्शसे पुरुषके मनमें विकारकी गंधभी नहीं होती। पर उसी समय तीसरी युवती पर दृष्टि पड़ते ही उसमें विकार उत्पन्न हो जाता है और वह कामातुर हो उठता है। इससे यह समझमें आता है कि विकार या निर्विकारसे स्वरूपका संबन्ध बहुत कम है। केवल भाव लेकर ही सारा व्यवहार होता है।'

एक दिन बाबाजी महाशय क्षौर करवाने बैठे और नाई के हाथसे उस्तरा ले अपने बायें पैरके तलवेमें जहाँ एक चिह्न था वहाँसे कोई आध पाव मांस काटकर फेंक दिया। मांस

काटते समय दर्शक वृन्द व्याकुल थे, पर ये निर्विकार थे। ऐसे मांस काट रहे थे कि लगता था जैसे किसी काठ या मिट्टीकी बनी मूर्तिसे कुछ अंश काटकर निकाल रहे हों। बहुत रक्त बहने लगा तो कुछ रज क्षत स्थान पर लगाली। लगाते ही रक्त बहना बन्द हो गया। जब तक घाव सूख नहीं गया रोज रज हाथमें लेकर उस पर घिसते रहे। जब घाव सूख गया तो क्षौरके समय बार-बार उस्तरेसे उसे खुरचने लगे। इस प्रकार घावका ठीक होना तो दूर रहा वह रोज हरा होने लगा। साथी लोग एक दिन अपराह्नमें बैठे परस्पर कहने लगे 'कल सबेरे देखाकि घाव एक ओर से भरता आ रहा है, पर आज फिर कच्चा मास उस्तरे से खुरच कर फेंक दिया। घाव कैसे भर पायेगा, कौन सा उपाय किया जाय, कुछ समझमें नहीं आता।' इस प्रकार की चिता करते-करते संध्या हो गई और सब उदास भावसे कीर्तन करने लगे। दूसरे दिन प्रातः उठतेही देखाकि घाव सूखकर फिर पहले जैसा हो गया है और ऐसा लग रहा है जैसे कभी कोई घाव था ही नहीं।

इस प्रकार नानारूप ऐश्वर्य और माधुर्यमयी लीलामें कुछ दिन बीत गये। देखते-देखते महाप्रभु की जन्मतिथि फाल्गुनी पूर्णिमा आ पहुँची। चतुर्दशीके दिन संध्या समय बाबाजी महाशयने नीलरत्नको आदेश किया, 'कल प्रातः अष्टप्रहर नाम आरंभ होगा, उसकी तैयारी करो।' आदेशानुसार तैयारी कर ली गई। दोल पूर्णिमाके दिन प्रातःकालसे नाम आरंभ हुआ। खूब जोर-शोरसे कीर्तन होने लगा, यहाँ तक कि सब लोग इतने विभोर हो गये कि किसीको बाह्य स्मृति न रही। दिन और रात किधर बीत गये किसीको पता न चला। दूसरे दिन प्रातः-काल उठते ही बाबाजी महाशय नीलरत्नसे बोले 'क्यों रे नीलू, यहाँ कामिनी धानका चिउड़ा मिलेगा क्या ?'

नील०--प्रयत्न करने पर मिल सकता है ?

बाबाजी—तो उसका भार तेरे ऊपर रहा।

नील०—कितने मालसा भोग बनेंगे ?

बाबाजी—छहसे कम नहीं।

नील रत्न उसी प्रकार व्यवस्था करने लगे। एक बहुत बड़ा आइल पेण्टका महाप्रभुकी संन्यास मूर्तिका चित्र-पट था। वह चित्रपट और एक पीचकी लकड़ो ले वे साथियोंके साथ राधाकुण्ड और श्यामकुण्डकी परिक्रमा कर कीर्तन करते-करते गंगा स्नानको गये। गंगातट पर पहुँच साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर चित्रपट और पीचकी लकड़ीको हाथसे पकड़ गंगामें उतारा। पहले स्वयं डुबकी लगाई फिर चित्रपट और लकडी को आकंठ जलमें खड़ाकर अँगोछेसे रगड़ने लगे। साथियोंमें कोई-कोई सोचने लगे कि चित्रपट बिगड़ जायेगा। पर जो लोग बाबाजी महाशयके प्रभावसे अवगत थे, वे बोले, 'देखना थोड़ी ही देरमें कितना उज्ज्वल हो जायेगा।' वास्तवमें ऐसा ही हुआ। अँगोछे से जितना मार्जन करते थे उतना ही चित्र उज्ज्वल होता जाता था। कुछ देर इस प्रकार चित्रपटको स्नान करा स्वयं स्नान करने लगे। बार-बार डुबकी लगा बहुत देर तक जलमें रहते और निकल कर कहते, 'आज मेरा आरोग्य स्नान है। इस देहमें जितने रोग आ गये थे, आज सब चले गये। इस प्रकार बहुत देर तक गंगामें जल-केलि कर पूर्ववत् नाम करते-करते बगीचेको लौटे। इधर नीलरत्नने मालसा भोग तैयार कर रखा था। ये स्वयं ही मालसा भोग देने लगे। उस दिनके मालसा भोगकी सुगन्ध बाहर तक फैलने लगी। जो भी मालसा भोगका प्रसाद पाता वह अनुभव करता और कहता कि आज महाप्रभुने प्रत्यक्ष भावसे भोग ग्रहण किया है, क्योंकि मालसा

भोगकी ऐसी सुगंधका हमने पहले कभी अनुभव नहीं किया।

एक दिन चार बजेके लगभग पुलिन दादा और उनके मामा श्रीयुक्त कान्हाई लाल मल्लिक बाबाजी महाशयके दर्शन करने आये। कान्हाई बाबूका शरीर बहुत अस्वस्थ था। दमेका इतना प्रकोप था कि एक जगह बैठना भी संभव नहीं था। उनका कष्ट देख याचित कृपाकारी प्रभुका हृदय भर आया, आँखोंमें आँसू आ गये और वे गद्गद् कंठ से बोले, 'बाबा, तुम्हें कबसे यह रोग है ?'

कान्हाई—बहुत दिनों से।

बाबा०—गलेमें यह ताबीज कैसे हैं ?

कान्हाई—दमेके हैं।

बाबा०—इनसे कुछ लाभ हुआ ?

कान्हाई—लाभ नहीं भी हुआ तो कुछ हानि भी नहीं हुई। मेरा विश्वास है कि इन्हें न पहनता तो कष्ट और बढ़ जाता।

बाबा०—तुम रोग अच्छा करना चाहते हो न! यदि तुम सरल हृदयसे ताबीज और यह नीलमकी अंगूठी राधाकुंड में फेंक दो तो मेरा विश्वास है कि निताई चाँद तुम्हारा सारा रोग दूर कर देंगे।

बाबाजी महाशयकी बात सुन कन्हाई बाबूको कुछ इधर उधर करते देख पुलिन बाबू बार-बार अनुरोध कर कहने लगे, 'मामा, द्विविधा छोड़ बाबाजी महाशयकी आज्ञाका पालन कीजिए। अवश्य फल पायेंगे। महन्तोंकी कृपासे असंभव भी संभव हो जाता है। यह तो सामान्य रोग ही है। और जितने लोग वहाँ उपस्थित थे वे भी उसी प्रकार तरह-तरहसे अनुरोध करने लगे। लज्जाके कारण हो चाहे अनुरोधके कारण, कान्हाई

बाबूने हाथकी अँगूठी और गलेके ताबीज खोलकर आरोपित राधाकुंडके जलमें फेंक दिये, पर उनका मन प्रसन्न न था। जब तक वे बाबाजी महाशयके निकट थे, स्वस्थ थे। घर पहुँचते ही अविश्वासके कारण दमेने फिर जोर किया। उन्हें अनुताप होने लगा। पुलीन दादाको बुलाकर बोले, 'मेरे रोगका तो कुछ नहीं हुआ। तुम्हारी बातमें आकर अपना माल और गँवा दिया। अब मेरी अँगूठी और ताबीज ला दो।' पुलिन दादा कुछ मुस्कराते हुए बोले, 'विश्वास बिना फल कैसे हो सकता है।' 'विश्वाससे मिलय बस्तु तर्के बहुदूर।' साधु महात्माओं पर भक्ति और विश्वास न रहनेसे कभी फल प्राप्त नहीं होता। अँगूठी और ताबीज तो आपने अपने हाथसे ही जलमें फेंक दिये थे, अब वह कहाँ मिलेंगे।' पुलिन दादाकी बात सुन कान्हाई बाबू चुप रहे, पर साधु महात्माओं के प्रति उनमें जैसे श्रद्धा न रही।

बाबाजी महाशय पुलिन दादाके मुखसे यह सब सुन मुस्कराते हुए बोले, 'तो कान्हाई मामाको बड़ा मानसिक कष्ट है। अच्छा, निताइ चाँदकी जैसी इच्छा।' इतना कह और बातें करने लगे। कई दिन बाद वे काशीपुरमें रसिक बाबूके बगीचे, और वहाँसे दरजी पाड़ामें रायबहादुरके बगीचे, कुठीघाटा, कुलीनगाँ, शिउड़ी, कालना, शान्तिपुर और श्रीधाम नवद्वीप आदि स्थानोंमें भ्रमण करते हुए कोई डेढ़ महोने बाद पुरीके लिए रवाना हुए। हावड़ा स्टेशन पर गाड़ी पर चढ़ते समय कई ताबीज और एक नोलमकी अँगूठी हाथमें ले मुस्कराते हुए पुलिन दादासे बोले, 'पुलिन, देख, यह अँगूठी और ताबीज कान्हाई मामाके हैं न! उसके मनमें बड़ा दुःख है, उसे दे देना।' पुलिन दादा अँगूठी और ताबीज देख विस्मित हो बाबाजी महाशयके चरण पकड़ नानारूप कातरोक्ति-प्रकाश करने लगे।

उन्होंने कान्हाई बाबूको जब उनकी अँगूठी और ताबीज वापस दिये तो वे चकित होकर बोले, 'सचमुच मैं बाबाजी महाशयको न पहचान सका। मैंने अपने ही हाथसे पुष्करिणी के बीचों-बीच अगाध जलमें अँगूठी और ताबीज फेंक दिये थे। डेढ़ महीने बाद न जाने कैसे वही अँगूठी और वही ताबीज मुझे वापस कर दिये। निश्चय ही वे महापुरुष हैं। अपने बुद्धि-भ्रम और अविश्वासके कारण पाये हुए रत्न को खो दिया। मेरे जीवनको धिक्कार है। मैंने बाबाजी महाशयके निर्मल भजन-पथ पर इतनी बार कलक लगाकर निताइ चाँदके प्रति कितना अपराध किया है, इसकी सीमा नहीं।' इत्यादि नाना रूप आत्म-ग्लानि सूचक वाक्यों द्वारा कान्हाई बाबू बाबाजी महाशयसे मन ही मन क्षमा-प्रार्थना करने लगे।

एक दिन चार बजेके लगभग चंदन नगर निवासी श्रीयुक्त बसंत कुमार नियोगीने आकर जसे हा बाबाजी महाशयको दण्ड-वत प्रणाम किया वे मुस्कराते हुए बोले, 'क्यों रे बसंत आ गया? आ, और इतना कह अपने बायें पैरका अँगूठा उनके मुँहमें दे दिया। वे भी आनन्दमें विभोर हो अँगूठा चूसने लगे। कोई बीस मिनट तक चूसते रहे। फिर अकस्मात् पागलके समान झूमते-झूमते उठकर नृत्य करने लगे। उनके शरीरमें अश्रु, कम्प, पुलक आदि सात्विक विकार प्रकाशित होने लगे। उपस्थित भक्तगण देखकर अवाक् रह गये। बसंत दादाको देह-स्मृति न रही। वे पागलके समान स्खलित भाषामें दो एक शब्द कहते जो असम्बद्ध प्रलापके समान दुर्बोध होते। उनके दोनों नेत्र लाल और डबडबाये हुए थे। बाबाजी महाशयने साथियोंसे नाम करनेको कहा और बसंत दादाको आलिंगन द्वारा कुछ प्रकृतिस्थ कर बोले, 'निताई चाँदकी कृपा-

दत्त वस्तुका स्थिर भावसे भोग कर। स्वयं कृतार्थ होगा और दूसरोंको कृतार्थ कर सकेगा।' इतना कह उन्होंने उनकी पीठ पर बायें हाथसे चाँटा मारकर उन्हें बिदा किया। बसंत दादा बाबाजी महाशयके आदेशानुसार प्रेमाविष्ट भावसे नगरकी ओर चल दिये। आश्चर्य यह कि उस समय उन्हें जो भी स्पर्श करता, वह प्रेममें विभोर हो जाता।

बाबाजी महाशय इस प्रकार एक माससे कुछ अधिक दिनों तक केदारबाबूके बगीचेमें रहकर नाना विध ऐश्वर्य और माधुर्य मिश्रित लीलाओंके द्वारा लोगों का संशोधन और उनका आनन्दवर्धन करते रहे।

श्रीचैतन्य-लीला दर्शन

बाबाजी महाशय कुछ दिनोंसे अपने शिष्य श्रीयुक्त रसिक लाल पालके बगीचेमें रह रहे थे। एक दिन जोगेनबाबू बहुत आग्रह कर उन्हें दर्जी पाड़ेमें अपने घर ले गये। उस दिन उन्होंने गौर-लीलाका अभिनय देखनेकी इच्छा प्रकट की।

पता नहीं किसकी प्रेरणासे लगभग पाँच बजे बाबू गिरीश चन्द्र घोष दर्जी पाड़ा आये और बाबाजी महाशयको देखते ही कहने लगे—'बाबा! आज श्रीचैतन्य लीला दिखाई जायगी, कृपाकर चलें तो अच्छा रहे।' बाबाजी महाशय मृदु-भावसे हँस कर बोले—'अच्छा, निताई चाँदकी इच्छा है तो चेष्टाकी जायगी।' गिरीश बाबू प्रसन्न हो दण्डवत् प्रणाम कर चले आये।

यथासमय जोगेनबाबूने गाड़ीकी व्यवस्था कर दी। बाबाजी महाशय दीनबन्धु काव्यतीर्थ आदि कुछ अन्तरङ्ग भक्तोंके साथ गाड़ीमें बैठ गये। दूसरे और साथियोंके लिए दीन-

बन्धु बाबूने पृथक् गाड़ी की व्यवस्था करदी। थियेटर के शुरू होने का समय हो आया, गिरीशबाबू बाबाजी महाशय का इंतजार कर रहे हैं। वे जैसे ही बाबूलोगोंके वेशमें आकर पहुँचे, गिरीशबाबूने प्रथम श्रेणीमें सबके बैठनेकी व्यवस्था करदी।

अभिनय आरम्भ हुआ। आनन्दकी अवधि न रही। आजका आनन्द अन्य दिनोंके आनन्दकी अपेक्षा दूना है। भक्त-समागमसे ही भगवान अथवा भगवानके गुण-गानका अधिक विकास होता है,बाबाजी महाशय आनन्द-विभोर हो बीच-बीचमें हुंकार कर उठतेहैं और उनकी हुंकारके साथही मानो आनन्दका फव्वारा फूट निकलता है। जो पात्र जिस साजमें सजकर स्टेजपर आताहै, वह उसी ढ़ंगसे भाव-विभोर हो अभिनय करता है। ऐसा लगता है कि जैसे अभिनेता और अभिनेत्रियाँ अपने व्यवसायकी बात भूलकर प्रेम-विभोर हो अपना-अपना काम कर रहे हैं। मा योगमायाकी कृपासे सब ठीक चल रहा है, पर जैसेही माधाई कलसी का टुकड़ा हाथमें लेकर निताई को मारने को हुआ बाबाजी महाशय आवेशमें गों-गों शब्द करते हुए बेहोश होकर गिर पड़े। चेन, घड़ी, कोट, जूते आदि वस्तुएं चारों ओर बिखर गईं। दीनबन्धु काव्यतीर्थ महाशयने हड़बड़ाकर जैसे ही उन्हें पकड़ना चाहा वे भी उनके स्पर्शसे प्रेमाविष्ट हो नाचने लगे। जिसने जिसने भी उन्हें स्पर्श किया चाहे वह कितना बड़ा पाखंडी क्यों न था, स्पर्श करते ही प्रेमविभोर हो नाचने लगा। अभिनय करनेवाले भी न जाने कैसे हो गये। उस दिन अभिनय और आगे न हो सका। दूसरे दर्शक लोग चले गये, गिरीशबाबू आदि बाबाजी महाशयके शरीरमें एक साथ नानाप्रकारके सात्विक विकारों को देख विस्मित हो गये। साथी लोग उनकी सेवा सुश्रूषामें लग गये। सभी कातर स्वरसे

नाम करने लगे। बहुत देर पीछे उन्हें कुछ होश आया, सामने गिरीशबाबू को देखते ही उन्हें आलिङ्गन कर कहा—"धन्य है निताईचाँद की कृपा! प्रभु की लीला जितनी मनोहर है, उसका प्रदर्शन भी उसी भावसे हुआ। प्रभु की नित्यलीला अब भी प्रत्यक्ष है। निताई करें, महाप्रभु की यह सुमधुर लीला-क्रीड़ा जनसाधारणके हृदयमें घर कर जाय।" गिरीशबाबूने हाथ जोड़कर कहा—"देखिये, पहले मेरे मनमें यह अभिमान था कि यह सारी लीला मैंने ही श्रेणीबद्ध कर लिखी है, पर आपकी कृपासे और आपके संगके प्रभावसे अब मैं देख रहा हूँ कि इस लोला को लिखना और प्रदर्शित करना तो दूर की बात है, मैंने इसको जरा भी समझा तक नहीं और न मैं इसे हृदयंगम ही कर सका। यह लीला तो स्वतः ही प्रकट है। मैंने अपने जीवन का बहुत समय यूं ही खो दिया। मैं अपने कर्मोंके बारेमें सोचने लगता हूँ तो सारा संसार सूना-सूना लगता है। अब मुझ जैसे महापापीके उद्धार की आशा नहीं। पर उस दिन आपके मुखसे कीर्त्तन सुना था, जा गेछे जा गेछे जा, जा आछे सामालो ता, एखनउ समय आछे भाइ!' उसी दिनसे मेरे हृदयमें थोड़ी आशा का संचार हुआ है। आप कृपा कीजिये। जो बीत गया वह तो बीत ही गया, अब थोड़ा-बहुत जो भी समय बचा है, उसे इधर-उधरके बेकारके कामोंमें और झूठे अभिमान में नष्ट न करूँ। उमर अधिक हो चुकी है, शरीर शिथिल हो गया है, पर वासना दिनों-दिन बलवती होती जा रही है। जिन्दगी भर इस वासना की गुलामी की, पर यह कभी प्रौढ़ा या बूढ़ी न हुई। दिन पर दिन तरुण ही होती गई।" बाबाजी महाशय गिरीशबाबू की ऐसी अनुताप भरी बातें सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें आलिङ्गन कर और उपस्थित सभी लोगोंसे बिदा ले वे योगेनबाबूके घर लौट आये।

शवको प्राणदान

दूसरे दिन बड़ी जल्दी उठकर बाबाजी महाशय ने फणी और राधाविनोदसे कहा, 'देखो ! तुम दोनों अलग-अलग रास्तोंसे समानभावसे दौड़ते हुए नीमलता घाट चले जाओ। हम लोग आ रहे हैं।' आज्ञा पाते ही दोनों चले गये। लगभग साढ़े छ:के समय योगेनबाबू आदि बहुतसे लोगोंके साथ बाबाजी महाशय गङ्गा-स्नान को गये। बड़े आनन्दके साथ गङ्गामें तैर रहे हैं, फणी और राधाविनोदकी ओर आँख भी नहीं उठा रहे हैं, दोनों उनकी आज्ञाका इन्तजार किये घाटपर ही बैठे हैं और आपसमें कह रहे हैं, 'बाबाजी महाशयने क्यों तो हमें इतनी जल्दी दौड़कर यहाँ आनेके लिये कहा और क्यों अब बात भी नहीं कर रहे हैं !' ऐसा कहकर जैसे ही वे उनके सामने आये, वे पूछने लगे,'क्यों, रास्तेमें क्या देखा ?' फणी बोला,'देखा क्या ? दो-एक बैलगाड़ियाँ और मारवाड़ी लोगोंके साथ एक मुर्दा।' सुनकर बाबाजी महाशय जैसे अपनेमें खो गये और स्नान करने लगे। आध घण्टे बाद फिर वही बात पूछी। उन्होंने भी वही उत्तर दिया। इसपर उन्होंने थोड़ा हँसकर कहा, 'देख तो आओ, वे लोग मुर्देका क्या कर रहे हैं ? उनसे मुर्दा जलानेको मना करो।' फणी आदिने जाकर मारवाड़ियोंसे मुर्दा जलाने को मना किया, पर उन लोगोंने इनकी बातपर कुछ ध्यान न दिया। दूसरी बार योगेनबाबूको भेजा। योगेनबाबूके कहनेपर वे बाबाजी महाशयकी प्रतीक्षा करने लगे। उसी समय वे तैरते-तैरते वहाँ जा पहुँचे। लगभग बीस सालकी एक सधवा स्त्री का शव चितापर रखा था; अभी आग नहीं लगाई गई थी।

योगेनबाबूकी बातोंसे वे लोग फिर भी थोड़ा हिचकिचा रहे थे, पर बाबाजी महाशयको देखते ही वे न जाने कैसे हो गये। उन्होंने जैसे ही कहा, 'भाई, इसको नीचे उतारो', उन्होंने उस शवको नीचे उतार लिया। बाबाजी महाशयने रामदादाको उस शवके सिरहाने और फणी तथा राधाविनोदको उसके दोनों ओर बैठाकर नाम करनेका आदेश दिया और स्वयं उसके दोनों पैरोंके अँगूठे पकड़कर नाम करने लगे। चारों ओर दर्शकोंकी भीड़ लग गई। सभी जोर-जोरसे 'भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम कर रहे हैं, और विस्मित होकर बीच-बीचमें बाबाजी महाशयके मुखकी ओर देख लेते हैं और कभी उस शवकी ओर। निताइचाँद क्या खेल खेलेंगे, किसीको पता नहीं। इतना सभीको निश्चय है कि कोई अलौकिक घटना घटेगी। आध घण्टे बाद जैसे ही बाबाजी महाशयने स्त्रीके अँगूठेको उच्चस्वरसे 'जय नित्यानन्द' कहकर झटका दिया, उसने आँखें खोल दीं। चारों दिशाएँ हरिध्वनि और जयध्वनि से गूँज उठीं।

मारवाड़ी लोगोंके आनन्दकी सीमा न रही। वह स्त्री चारों ओर विस्मित भावसे देखने लगी। बाबाजी महाशय बोले, 'इन सबको पहचानती हो?' स्त्रीने आँखोंसे सम्मति सूचक संकेत किया। तब उन्होंने एक मारवाड़ीसे दूध लानेके लिये कहा। वह जल्दी जाकर एक पाव दूध ले आया। बाबाजी महाशयके आदेशसे थोड़ा-थोड़ा दूध स्त्रीको पिलाया गया; वह धीरे-धीरे दूध पीने लगी। इस अभूतपूर्व घटनाको देख सभी आश्चर्य सागरमें डूब गये। सभी चित्र-पुत्तलिकावत् खड़े रह गये। सभी बीच-बीचमें हरिध्वनि कर उठते। बिजलीकी तरह खबर फैल गई कि कहींसे एक साधू आया है जिसने चितापरसे

मुर्देको उतार कर जिला दिया। चारों दिशाओंसे लोग दौड़-दौड़ कर आने लगे। प्राय डेढ़ घण्टे तक यह खेल होता रहा। फिर पता नहीं बाबाजी महाशयने क्या सोचा, उन्होंने चारों-ओर देखकर स्त्रीके अँगूठे छोड़ दिये। स्त्रीने भी धीरे-धीरे आँखें बन्द करलीं। मारवाड़ी लोग उनके चरण पकड़ कर उसे बचानेके लिये कातर भावसे प्रार्थना करने लगे। वे बोले, 'भाई, जिस कामको गौराङ्ग महाप्रभुने नहीं किया, उसे करना हम लोगोंके लिये ठीक नहीं। वे चाहते तो क्या श्रीवास पण्डित के लड़केको बचा नहीं सकते थे ? पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। विधाताकी लिखी बातको रद्द करनेसे मर्यादा नष्ट होती है, और यह निताइचाँदको पसन्द नहीं। पर नामकी शक्तिसे मृत शरीर में प्राणोंका संचार हो सकता है, यह निताइचाँदने दिखा दिया।' रामदादासे बोले, 'राम ! इस घटनाको देखकर तुम्हारे मनमें क्या आता है ?' रामदादाने कहा, 'मैं क्या समझूँ ? आपका खेल आपही जानें।' इस पर वे थोड़ा हँसकर बोले, 'यह केवल नामकी शक्ति है। नामके लिये तो ये बहुत ही सामान्य बात है। जिस कामको नामी भी नहीं कर सकते, उसे नाम अनायास कर सकता है। हम जिस बातकी कल्पना भी नहीं कर सकते, नामके आभास मात्रसे वह सहजमें हो जाती है। नाम सर्वशक्तिमान है; नामके साथ नामी रहता है; एक-मात्र नाममें विश्वास हो जाय तो फिर कुछ बाकी नहीं रहता। नामकी कृपाके बिना प्रेम नहीं मिलता और न भाव-राज्यमें प्रवेश ही मिलता है। प्रत्यक्ष देखे बिना ज़ीवको दृढ़ विश्वास नहीं होता, तभी प्रभुने यह खेल किया है।' इस प्रकारके उप-देश-वाक्योंसे सभीको सन्तुष्ट कर और पुनः गङ्गास्नान कर वे योगेनबाबूके निवास-स्थानको लौट आये।

———

कलकत्तेमें विराट संकीर्त्तन

इस घटनाके सम्बन्धमें श्रीयुत बिहारीदास बाबाजीने जो लिखा है, वह इस प्रकार है:—

एक दिन गोवर्द्धनदास मुझसे बोले, 'बिहारीदादा, कल दर्जीपाड़ासे बाबाजी महाशय एक विराट नगर-संकीर्त्तन निकालेंगे। तुम जाओगे?' मैं बोला, 'भाई, कल तो जाऊँगा ही, मेरी बड़ी इच्छा है कि आज ही बाबाजी महाशयके दर्शन करूँ।' मेरी बात सुनकर गोवर्धन बड़े उत्साहसे बोले, 'अच्छा, मैं भी चलूँगा।' दोनों लगभग चार वजे योगेनबाबूके घर पहुँचे। देखा कि बाबाजी महाशय लेटे हुए हैं। योगेनबाबूसे पूछा तो वे बोले, 'सुबह अतीनबाबूको वातश्लेष्मा ज्वर विकारसे मुक्त कर जैसे ही यहाँ आये, तभीसे भयानक ज्वर हो रहा है।' मैं बोला, 'सुना है कल एक विराट नगर-कीर्त्तनके लिये आदेश दिया है?'

'आदेश तो दिया है, पर मैं यही सोच रहा हूँ कि ऐसे भयानक ज्वरको लेकर कीर्त्तन करेंगे कैसे!'

इस तरह बातें हो ही रही थीं कि बाबाजी महाशयने पुलिनबाबू आदि कुछ लोगोंको आदेश दिया, 'देखो, कल विराट नगर-कीर्त्तन निकलेगा, तुम लोग जाकर सब व्यवस्था करो। पहले पुलिससे रास्तेका पास बनवा लेना; देखना ऐन मौकेपर कोई गोलमाल न हो।'

पुलिन—'किस-किस रास्तेका पास?'

बाबाजी—बीडन स्ट्रीट, कार्नवालिस स्ट्रीट, हैरिसन रोड, गङ्गाका पुल, नीमतला स्ट्रीट इत्यादि।

पुलिन—हैरिसन रोडपर एक मसजिद है, रास्तेका पास होते हुए भी मसजिद के पाससे बाजा कीर्त्तनादि लेकर जाने नहीं देते। वहाँ क्या होगा ?

बाबाजी—इसके बारेमें सोचनेका भार तो तुम्हें दिया नहीं। जिनका काम है वे करेंगे। श्यामलाल गोस्वामी, बलाई-चाँद गोस्वामी आदि छह प्रभुसन्तानोंको निमंत्रण देना। उनसे कहना कि कल चार बजेके लगभग कृपा कर योगेनबाबूके घर पधारें। अन्यान्य भक्त लोगोंसे बीडन गार्डनपर उपस्थित होनेके लिये कहना।

लेटे-लेटे इतना कह पुलिनदादाको बिदा दी। भयानक ज्वर था और इतनी श्लेष्मा कि घण्टे भरमें पीकदान भर जाता था। इतने पर भी वे कोई क्लान्ति अनुभव नहीं कर रहे थे। सभीके साथ हँसते-हँसते भगवत्कथा कह-सुन रहे थे। यदि कोई शरीरकी अस्वस्थताके बारेमें पूछता तो हँसकर उसकी उपेक्षा कर देते। रात लगभग आठ बजे पुलिनदादा लौटे। पुलिनदादाको देखते ही बोले, 'मैंने जिस-जिस कामके लिये कहा था हो गया ?'

पुलिन—जी हाँ, सब ठीक है, पर आपके शरीरकी अवस्था देख हम लोगोंका मन बड़ा खराब हो रहा है। कीर्त्तन यदि दो दिन बाद रखें तो कैसा ?

बाबाजी—चिन्ताका कोई कारण नहीं। किसी विशेष कारणसे मुझे ज्वर हुआ है; कल सब ठीक हो जायगा। तुम अपने भाईसाहबसे कहकर प्रभु-सन्तानोंके लिये छह जोड़ा वृन्दाबनी कपड़ा लेकर कल सुबह जल्दी आजाना।

दूसरे दिन सुबह पुलिनदादा आदेशानुसार छह जोड़े वृन्दाबनी वस्त्र और अन्यान्य आवश्यक वस्तुएँ लेकर उपस्थित

हुए। बाबाजी महाशय पुलिनदादाके कार्यकौशलसे प्रसन्न होकर बोले, 'फूलमाला आदि सबका प्रबन्ध हो गया ?'

पुलिन—जोहाँ, सामानकी कोई चिन्ता नहीं; चिन्ता सिर्फ आपके शरीरकी है।

बाबाजी—देखो, निताइचाँदका काम है संकीर्त्तन निकालना, सो वह निश्चय ही करेंगे; वे इस पुतलीको नचाना न चाहें, वह अलग बात है। इसके लिये हम लोगोंको सोचनेकी कोई आवश्यकता नहीं। भगवान्ने अर्जुनको लक्ष्यकर हम लोगोंको शिक्षा दी है - 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।' निताइने कर्म करने की आज्ञा और शक्ति दी है. कर्म करे जाओ, फलाफल वे जानें।

पुलिनदादा चले गये। लगभग चार बजे बहुतसे लोग बाबाजी महाशयके पास आये तो देखा कि वे अब भी लेटे हुए हैं। जैसे ही मैं, अतीनदादा और अन्य कुछ लोग पहुँचे, वे उठकर बैठ गये। उस समय भी उन्हें काफी ज्वर था। उन्होंने अतीनदादासे पूछा, 'अतीन! कैसे हो ?'

अतीन--कल आपके श्रीचरण-दर्शन करनेके बादसे मुझे कोई रोग नहीं है। आज अच्छी तरह आहारादि कर पैदल चलकर आया हूँ।

बाबाजी—निताइचाँदकी कृपाकी जय बोलो। चार बजे उन्होंने रामदादासे नाम आरम्भ करनेको कहा। आज्ञा पाकर रामदादा नाम आरम्भ कर योगेनबाबूके घरके बाहर रास्तेपर आ खड़े हुए। बाबाजी महाशय अभी तक बैठकमें ही थे। भक्त लोग सोच रहे थे कि शायद बाबाजी महाशय कीर्त्तनमें नहीं

निकलेंगे। क्षणभर बाद ही, पता नहीं क्या सोचकर, वे 'जय निताइ' कह कर हुंकारते हुए खड़े हो गये। उपस्थित भक्तजनों के प्राणोंमें विद्युत-प्रवाहकी भाँति आनन्दका संचार हो गया। सभी एकस्वरसे हरिबोल कर उठे। बाबाजी महाशयने फणीसे कहा, 'श्रीधाम नवद्वीपसे श्रीगुरुदेवके प्रसादी डोर-कौपीन-बहिर्वास आये हैं, उन्हें और पीचकी लाठी ले आ।' फणीने आदेशानुसार डोर-कौपीन आदि लाकर दिये। बाबाजी महाशयने उन्हें धारण किया। तत्पश्चात् सिरसे एक बहुत ही गंदा चिथड़ा बाँधा और बाँये पैरके निचले हिस्सेमें भी जहाँसे माँस निकाल कर फेंका था, एक चिथड़ा बाँधा और हाथमें लाठी ली। फिर कीर्त्तनमें आते ही 'प्रकट अप्रकट लीलार दूइ तो विधान। प्रकट लीलाय करेन प्रभु निजे नृत्य-गान। अप्रकटे नाम रूपे साक्षात् भगवान, कीर्त्तन-विहारीरूपे सदा वर्तमान।' आदि बन्दना कर 'आबार बोलो हरिनाम, आबार बोलो' नाम आरम्भ किया। छहो प्रभुसन्तान नये वृन्दाबनी वस्त्र पहने एक-एक खुन्ती हाथमें लिये कीर्त्तनके आगे-आगे चल रहे थे। उनके पीछे-पीछे बहुतसे लोग झंड़ियाँ लिये चल रहे थे। अपूर्व दृश्य था। रास्तेके दोनों ओर कहीं बिन्दुमात्र जगह नहीं बची थी, चारों ओर आदमी ही आदमी दीख रहे थे। बाबाजी महाशय साथियों सहित नृत्य-कीर्त्तन करते हुए बीडन गार्डन पहुँचे। वहाँ पहलेसे ही बहुतसे भक्त कीर्त्तनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। बाबाजी महाशयको देखते ही सब हरिध्वनि करते हुए कीर्त्तन में आकर योगदान करने लगे। देखते-देखते चारों ओरसे बहुत से कीर्त्तनके दल खोल-करतालके साथ कीर्त्तन करते हुए संकीर्त्तनमें आ मिले।

प्रभुपाद श्रीयुत अतुलकृष्ण गोस्वामी महाशय बगीचेमें

घूम रहे थे। संकीर्त्तन-ध्वनि सुनकर जैसे ही वे पास आये, बाबाजी महाशयने उन्हें दृढ़ आलिङ्गन किया। प्रभुपाद अस्वस्थ होनेके कारण संकीर्त्तनके साथ न जा सके। बाबाजी महाशयने आविष्ट होकर पद आरम्भ किया:—

बांध रे बाँध कोमर साज रे जुद्धेते।
शासिब हरिनामे, नाशिब राधाप्रेमे,[१]
आछे जत असुर जगते॥
एबे अस्त्र ना धरिबो, प्राणे कारेओ ना मारिबो।
(आमार प्रभु नित्यानन्द बोले) हृदय शोधिब सबार प्रेमेते॥
कलिराज जदि आसे[२], मातावो[३] निताइ रसे।
घूराबो[४] देशे-बिदेशे ताहारे॥
बिवेक बैराग्य दिबो, कलिर दोष ना राखिबो।
नाम प्रेम बिलाइब[५] जगते॥
(निताइ दासेर अनुदास हये)
काल कलि दमन हलो, नवग्रहेर दोष गेलो।
राहु केतू स्थिर हलो, नाम शुने सबार मुखेते॥
शनैश्चर हरि बोले, सूर्य्य नाचे बाहु तूले[६]।
धन्य रे एइ कलिकाले गौरशशि जगते॥
चित्त सन्द तम गेलो, माया पराजय हलो।
बाहु तूले भाइ हरि बोलो, माया गेलो मायापुरेते॥
सृष्टि स्थिति प्रलय, गुणत्रय करि लय।
प्रेमेर उदये हृदय, माते राधा भावेते॥

---

[१]हरिनामसे शासन और राधा प्रेमसे नाश करूँगा, [२]आये, [३]मतवाला करूँगा, [४]घुमाऊँगा, [५]लुटाऊँगा, [६]उठाकर।

देव देवी देवत्व छाड़ि, हलो सब नरनारी ।
(अभिमाने प्रेम मिले ना बोले[१])
भजिये गौरहरि, सबाइ चले ब्रजेते ॥
भुक्ति मुक्ति तुच्छ करि, सबे बोले गौरहरि ।
चाँद निताइयेर पद स्मरि, मग्न सबाइ प्रमेते ॥
आश्रम सह वर्ण चारि, बालक बृद्ध पुरुष नारी ।
सबाइ प्रेमेर अधिकारी, गौरहरि बोलो भाइ मुखे ते ॥
म्लेच्छ जवन पशु-पाखी, स्थावर जँगम नामे सुखी ।
जगते आर नाइक बाकी, निताइ चाँदेर कृपाते ॥
की पाषण्ड किवा भण्ड, की सुधीर की दुर्दण्ड ।
एड़ाइते जम-दण्ड, गौरहरि बोले मुखेते ॥
हेलाय श्रद्धाय निले नाम[२], पूरे भाइ मनस्काम ।
शुने छो कि एमन[३] नाम, आर कोनो जुगे जगते ?
स्वभाबेर शोभा बलि, दम्भे दुइ बाहु तूलि ।
आर कतोकाल हरि भूलि, रबिरे[४] भाइ भ्रमेते ॥
सृष्टि कर्त्ता भगावन, शक्ति दिये जीब चालान ।
शक्ति हले[५] अन्तर्धान, चैतन्य नाहि देहेते ॥
हेनो[६] प्रभु पासरिये[७], मायार दासत्व लये ।
दिवा निशि बिभोर हये, मत्त सदा कामेते ॥

---

[१]इस कारणसे, [२]श्रद्धासे या अश्रद्धासे नाम लेनेसे, [३]ऐसा, [४]रहेगा, [५]होनेसे, [६]ऐसे, [७]भूलकर ।

कर्म ज्ञान योग भक्ति, करिते नाहिक शक्ति ।
करिलेओ भुक्ति मुक्ति, स्पर्श ना पाय प्रमेते ॥
कर्मफले गतागति, स्वर्ग अपवर्ग प्राप्ति ।
ज्ञाने अङ्गकान्ति-प्राप्ति, निर्वाण हय ज्योतिते ॥
जोगे षड़ चक्र भेदे, कुण्डलिनी शक्ति जोगे ।
जीव-आत्मा सहस्रारे, मिलाय परमात्माते ॥
बेद बिधि अनुसारे, भक्ति जाजन करले परे ।
शुद्ध भक्ति लाभ करे, (पाय) ईश्वर निष्ठा मनेते ॥
चौषट्टि अंगेते, नवधा भक्तिर पथे ।
भजिले शे नन्दसुते, स्वरूप जागे मनेते ॥
सत्-चित्-आनन्दमय, कृष्णेर स्वरूप हय ।
स्वरूप शक्ति प्रकाश पाय, मधुर वृन्दाबनेते ॥
अन्य पथे पावा भार, साध्यसाधनेर पार ।
स्वरूप शक्ति बिने आर, केहो ना पाय-जगते ॥
ताइ हरि ब्रज छाड़ि, नवद्वीपे अवतरि ।
नाम धरि गौरहरि, निताइचाँदेर सगेते ॥
अजाचके जेचे देय, (बोले) के निबे के निबे आय ।
मार खेये प्रेम बिलाय, एमन के आछे आर जगते ॥
जुगोचित नामधर्म, नाम लइते प्रेम मर्म ।
प्रभुर सहित की सम्बन्ध जानाये देय नामेते ॥
सम्बन्ध हइले परे, मन चले ब्रजपुरे ।
भावावेशे रस भरे, सेवा पावे ब्रजेते ॥

पर रसे हले गति, जुगले हइबे मति।
गोपी भावे देहस्मृति, जुगल सेवाय कुंजेते॥
साधने भाविबे जाहा, सिद्ध देहे पाबे ताहा।
आर केनो आहा आहा, करो रुचि नामेते॥
निताइ गौर राधे श्याम, हरे कृष्ण हरे राम।
उच्चैःस्वरे करे गान, डूबे जाओ भाइ भावे ते॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे मुखे ते॥
श्रीराधा गोबिन्द, भजिले आनन्द।
पूर्ण पूर्ण पूर्णानन्द, नाहि इहार परेते॥
अद्वय-ब्रह्म-तत्वसार, परमात्मार सुबिचार।
भगबानेर सारात्सार, पाबि रे भाइ ब्रजेते॥
राधा-राधारमण-चरण, सउँरिये[1] बोले चरण।
निताइ गौर करि स्मरण, चरण देओ मोर शिरे ते॥
जदि आमाय चरण दिबे, दास नाम सार्थक हबे।
भक्ति शक्तिर उदय हबे,सेवा पावो कुंजेते (गोपीभावे)॥

अपूर्व कीर्तन! लगता है कि किसी को बाह्यज्ञान नहीं है। बड़े-बड़े पाषण्डी भी कीर्त्तन की लपेटमें आकर उद्दण्ड नृत्य कर रहे हैं; प्रेमाश्रुओंसे उनके वक्ष भीग रहे हैं। भीड़ का कुछ ठिकाना नहीं है। गाड़ी, घोड़ा, ट्राम आदि का आना-जाना

---

[1]स्मरण कर।

बन्द है। मन-प्राण को झकझोर देनेवाली, अपूर्व गगन-भेदी नामध्वनिमें दुकानदार भी अपना-अपना काम छोड़ योग दे रहे हैं। कुली मजदूर जो सिरपर बोझा लादे जा रहे हैं; वे भी लादे-लादे कीर्त्तनमें नाच रहे हैं। जो जिस अवस्थामें है, उसी अवस्थामें संकीर्त्तन की तालके साथ हाथ-पैर हिलाता हुआ प्रेमानन्द उपभोग कर रहा है।

संकीर्त्तन क्रमशः बीडन स्ट्रीट, कार्नवालिस स्ट्रीट आदि पार कर माँ सिद्धेश्वरीके आगे जा पहुँचा। माँ सिद्धेश्वरी को देखते ही बाबाजी महाशय न जाने कैसे हो गये। प्रेमावेशमें भूमि पर गिरकर लोट-पोट होने लगे: आँसुओंसे बक्षस्थल भीग गया। चारों ओर सैकड़ों आदमी थे, पर कोई न उन्हें पकड़ सका और न स्थिर ही कर सका। चतुर भक्तगण भीतरके घेरे को संकीर्ण कर नाना प्रकारसे सुश्रूषा करने लगे। बहुत देर बाद बाह्य-ज्ञान होने पर वे पूर्ववत् नाम करते-करते हैरिसन रोड होकर गङ्गाजी की ओर चल पड़े।

एक व्यक्ति तेजीसे बाबाजी महाशयके पास आकर बोला, "सामने एक मजजिद है; उधर से गाते-बजाते हुए नहीं निकलने देते। सभी समय वहाँ बहुतसे मुसलमान रहते हैं। यदि कोई गाता-बजाता निकलता है तो वे लड़ने को तैयार हो जाते हैं।" बाबाजी महाशय बोले—"निताई की इच्छा समझ कर तुम लोग नाम करते चलो; वे अपना काम आप करेंगे।" इतना कह वे स्वयं संकीर्त्तन-दल को पीछे छोड़ दौड़कर मसजिदके सामने जा पहुँचे। मसजिदके आगे साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर वहाँके प्रधान मुल्लाके साथ कुरान शरीफ और हजरत मोहम्मदके दूसरे धर्मोंके प्रति उदार भाव की बातें करने लगे। मुसलमान ये बातें सुनकर विस्मितभावसे बाबाजी महाशय की

और देखने लगे। थोड़ी देरमें वह विराट संकीर्त्तन-दल दसों दिशाओंको कम्पित करता हुआ मसजिदके सामनेसे निकल गया। किसीने कोई बाधा न दी। यह देखकर सब आश्चर्य-चकित हो गये। संकीर्त्तन-दलके कुछ दूर निकल जाने पर बाबाजी महाशयने पूर्ववत् मसजिदको प्रणाम कर मुसलमानोंसे बिदा मांगी, मुसलमानोंने बड़े प्रेमसे उन्हें सलाम किया। वे भी उन सबको सलाम कर नाचते-नाचते वहाँसे चल दिये।

संकीर्त्तन सीधा गङ्गा-किनारे पुलके पास जगन्नाथ घाट पर जा पहुँचा। रास्तेमें, घाट पर और पुल पर तिल रखने को भी जगह न थी। सभी उन्मत्त थे। बाबाजी महाशय विभोर होकर नृत्य कर रहे थे; यकायक न जाने क्या मनमें आया वे उछाल मारकर गङ्गाजीमें कूद पड़े। उस समय गङ्गामें पूरा ज्वार आया हुआ था, घाट का कोना-कोना जलमग्न था। बाबाजी महाशय आविष्ट भावसे आकण्ठ जलमें उतर कर घाटके इस छोरसे उस छोर तक जा रहे थे और 'श्रीचैतन्यचरितामृत' का एक-एक छंद पढ़कर उसकी व्याख्या कर रहे थे। अपूर्व व्याख्या! हम लोगोंने बहुत बार बहुत लोगोंसे श्रीचैतन्यचरिता-मृत की व्याख्या सुनी थी, पर आजकी यह व्याख्या एकदम नई और सर्वचित्ताकर्षक थी। जिसे एक अक्षर भी सुनाई पड़ जाता था वह समझे चाहे न समझे, चित्रपुतलीकी तरह खड़ा होकर सुनने लगता था। आबाल-वृद्ध-युवा, स्त्री-पुरुष सभी विस्मित भावसे नीरव हो बाबाजी महाशयकी ओर देख रहे थे, बहुत समय बाद वे किनारे पर आये और सूखे कपड़े पहन फिरसे नाम-कीर्तन करने लगे।

इसी समय एक भद्रपुरुष एक थैलेमें बताशे लेकर आया और हाथ जोड़कर कहने लगा—"मैं यह कुछ बताशे लाया हूँ।

मेरी इच्छा है कि आप अपने हाथोंसे इन्हें लुटायें।" बाबाजी महाशय बड़े आनन्दसे बताशे लुटाने लगे। संकीर्त्तन घाटको छोड़कर गङ्गाके किनारे-किनारे उत्तरकी ओर जाने लगा। उसी समय एक व्यक्ति आकर बोला—"एक वकील आविष्ट-भावसे रास्तेके पासवाली पोर्ट कमिश्नरकी रेल-लाइनके बीच नाच रहे हैं। उन्हें जरा भी होश नहीं है।" सुनकर बाबाजी महाशयने आदेश दिया—"उन्हें संकीर्त्तनमें ले आओ।" आदेशानुसार हममें से कुछ लोग जाकर उन्हें पकड़ लाये। वे हावड़ा कोर्टके वकील श्रीयुत परेशचन्द्र दत्त थे। संकीर्त्तनमें आकर भी वे पूर्ववत् नाचते रहे। संकीर्त्तन नीमतला स्ट्रीट पर माँ आनन्दमयीके आगे कुछ देर रुकता हुआ पुनः बीडन स्ट्रीट पर आया। रात्रिके लगभग नौ बजे थे; रास्तेके दोनों ओर थियेटर हाउसमें खूब रोशनी हो रही थी। वाराङ्गनायें लम्पटजनोंके साथ रास्तेमें खड़ी नाना प्रकारसे हास-परिहास कर रही थीं। उनपर दृष्टि पड़ते ही बाबाजी महाशयने साश्रुनयन और गद्-गद् कण्ठसे 'गौरहरि बोल' कहकर उनकी ओर बताशे उछाल दिये। पता नहीं नामकी शक्तिसे अथवा बाबाजी महाशयकी इच्छा-शक्तिके प्रभावसे वे मोद-प्रमोद छोड़कर 'गौरहरि बोल' कहकर उन बताशोंको उठाने लगीं। उनमेंसे किसी-किसीकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी भी बह निकली। वे साश्रुनयन और गद्गद कण्ठसे कहने लगीं—"धन्य महापुरुष ! इन्हें देखकर हम जैसे महापापियोंके हृदयमें भी भक्तिभाव जाग उठा है। आहा ! ऐसा प्राणोंको मस्त कर देने वाला गगनभेदी मधुर कण्ठस्वर हमने कभी नहीं सुना।" इस प्रकार उन पाषण्डो, और विषयी लोगोंके हृदयोंमें भी प्रेम-भक्तिका बीज आरोपण कर लगभग दस बजेके समय वे दर्जीपाड़ामें नयनचाँद स्ट्रीट पर योगेनमित्र के घर पहुँचे और कीर्त्तन समाप्त किया।

अपूर्व उद्धार

योगेनबाबू की बैठकमें बहुतसे चित्रपट थे, उनमेंसे एक चित्र नरक का भी था। पता नहीं इससे पहले इस चित्र पर बाबाजी महाशय की दृष्टि पड़ी थी या नहीं। आज जैसे ही उसे देखा, योगेनबाबूसे बोले—"योगेन! इस चित्रपट को खोलकर लाओ तो।" योगेनबाबूने जैसे ही चित्र लाकर दिया, वे ठीक बालक की तरह जोरसे रो-रो कर कहने लगे—"पापी और दुर्बल कलिहत जीवोंके उद्धारके लिये परम दयाल, पतित-पावन, निताई-गौराङ्ग का अवतार हुआ, फिर भी इतने जीव नरकमें जाँय! श्रीहरिदास ठाकुरने कहा है, कि स्थावर देह, तक नामकी ध्वनिसे मुक्त हो जाते हैं।" बस इतना कह उस चित्र को बीचमें रख और खोल करतालके साथ 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' नाम कीर्त्तन करते-करते उसके चारों ओर परिक्रमा करने लगे। साथ ही ऐसे कातर भावसे निताई चाँदसे प्रार्थना करने लगे कि सुनकर पत्थर का हृदय भी पिघल जाय। उपस्थित भक्तजनों के प्राण रोने लगे। थोड़ी देरमें यकायक सब एक स्वरसे बोल उठे "आहा! कैसी करुणा! देखो तो चित्रपट की कैसी अवस्था हो गई।" वास्तव में चित्रपट की तत्कालीन अवस्था को देख सब चकित हो गये। अंकित मूर्तियों की ओर देख कर लगता था कि जैसे वे अपने-अपने कर्मोंके लिये कातर भावसे प्रभुसे क्षमा-प्रार्थना कर रहे हैं और प्रभु मुक्तकण्ठसे उन्हें अभय-दान देकर गन्तव्य स्थान को भेज रहे हैं।

बहुत देर तक कीर्त्तन कर बाबाजी महाशयने 'जय नित्यानन्द राम' कहकर चित्रपट को वक्षसे लगाया और योगेन-

बाबूसे बोले 'देखो, निताइचाँदकी कृपासे इन सबका उद्धार हो गया। सब लोग इन्हें प्रणाम करो।' सुनते ही सबने बाबाजी महाशय और उस चित्रपटको दण्डवत् प्रणाम किया। तब योगेनबाबू साश्रुनयन गद्गद् कण्ठसे बोले, 'बाबा, मेरी क्या गति होगी ? मेरे घरके चित्रपटके नरकके जीवों तकका उद्धार हो गया। आपके श्रीमुखसे पत्थरको पिघला देनेवाला, मन-प्राण नचा देनेवाला भुवन-मङ्गल नाम सुनकर घोर पाखण्डियों तकके हृदय पिघल गये, पर मैं तो वही नरकका कीड़ा बना रहा। मेरा पाषाण-हृदय नहीं पिघला; मन-प्राण नहीं नाचे; यह सब देखकर भी प्राणोंमें भयका संचार नहीं हुआ। अपने पापोंके लिये मैंने एक दिन भी व्याकुल हो आपके श्रीचरणोंमें क्षमा-प्रार्थना नहीं की। परकालमें अपनी गतिकी चिन्तासे एक दिन भी दो आँसू नहीं बहाये। प्रभु! मेरी क्या गति होगी!' इतना कहकर वे रोने लगे। बाबाजी महाशयने उन्हें आलिङ्गन-दानसे कृतार्थ कर कहा, 'डरकी क्या बात है ? नाम करो, परमदयाल निताइ-गौराङ्ग अवतारमें कोई बाकी नहीं रहेगा। वे किसी की भी वासना अपूर्ण नहीं रखेंगे। जिस जीवको वे अङ्गीकार कर लेते हैं, उसकी क्या कभी दुर्गति हो सकती है ?'

योगेन—नाम करूँ तभी तो वे दया करेंगे! मैं हूँ घोर अविश्वासी; नाममें मेरी किंचित् मात्र भी रुचि नहीं, नाम करने की सोचता हूँ, तभी आलस्य और नाना प्रकारकी फालतू चिन्ताएँ आकर मनमें घर कर लेती हैं। ऐसी हालतमें नाम करना, न करना बराबर ही है।

बाबाजी—देखो, नामके विषयमें कोई विचार करनेकी आवश्यकता नहीं। एकाग्रता आय या न आय; श्रीगुरुदेवने नाम

करनेका आदेश दिया है, नाम करते चलो; भले-बुरेका विचार गुरुदेव पर छोड़ो।

रुचिके विषयमें निताइचाँदने इस नराधमको उपलक्ष्य कर तुम लोगोंसे अनेक बार कहा है कि जिस तरह पित्त-दूषित जीभ पर मिश्रीका शर्बत कड़वा लगता है पर उसी शर्बतको पीते-पीते पित्त-दोष दूर हो जाता है और शर्बत मीठा लगने लगता है, उसी तरह नाम करते-करते सभी अनर्थ नष्ट हो जाते हैं और नाममें रुचि हो जाती है।

योगेन—अच्छा, नामके निकट अपराध हो जाय, तो कैसे दूर हो ?

बाबाजी—शास्त्र कहते हैं, 'भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्। त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो ॥' जिसके प्रति अपराध हो, उसके अतिरिक्त और कोई उस अपराधका खण्डन नहीं कर सकता। नामापराधका खण्डन करनेके लिये लगातार नाम करना चाहिये।

इस प्रकार भक्तजनोंकी शंकाओंका समाधान और तरह-तरहकी लीलाएँ करते हुए बाबाजी महाशय और कुछ दिन कलकत्तेमें रहे।

एक दिन तड़के इन्टाली कटहल-बगीचेवाले श्रीयुत हरिदास बाबाजी महाशय आकर बाबाजी महाशयको अपने घर चलने के लिये अत्यधिक अनुरोध करने लगे। उनका आग्रह देख बाबाजी महाशयने उनसे अगले दिन सुबह व्यवस्था करनेके लिये कह दिया। हरिदास बाबाजी भी दूसरे दिन तड़के ही गाड़ीकी व्यवस्था कर सभीको अपने घर लिवा ले गये। पता नहीं इससे पहले और कभी बाबाजी महाशयसे हरिदास

की जान पहचान थी कि नहीं। आज साक्षात्कार होते ही उन्होंने सपरिवार उनके श्रीचरणोंमें आत्म-समर्पण किया।

बाबाजी महाशयने स्नानादिकर संकीर्त्तन आरम्भ कर दिया। एक अपूर्व आनन्द था! बहुतसे शिक्षित भद्रपुरुष उपस्थित थे, पर ऐसा कोई नहीं था जो रोते-रोते अधीर न हो गया हो। बहुत देर तक कीर्त्तन होता रहा, समय अधिक हो जानेपर भक्तजनोंकी इच्छा जानकर उन्होंने कीर्त्तन बन्द किया।

दूसरे दिन सुबह उठते ही हरिदादा बाबाजी महाशयके पैर पकड़कर रोते-रोते कहने लगे 'देखिये, मैं दीक्षा-मन्त्र तो ले चुका हूँ, पर मेरी यह अभिलाषा है कि आपसे शिक्षा ग्रहण करूँ। निताइ-गौराङ्ग मन्त्र मुझे नहीं मिला है। आप कृपा कर मुझे निताइ-गौराङ्ग मन्त्र दें। आजसे मैं सपरिवार आपका हो गया। आप दयाकर बतायँ कि हमें क्या करना चाहिये, और ऐसी शक्ति दें कि जिससे हम लोग आपके आदेशानुसार चल सकें।'

बाबाजी महाशयने जलद गम्भीर स्वरसे 'निताइचाँद की इच्छा' कहकर स्नान-आन्हिकादि कर कीर्त्तन आरम्भ किया। घनघोर कीर्त्तन होने लगा। सभी विभोर हो गये और कीर्त्तन-प्रभावसे मानो गौराङ्ग-लीला प्रत्यक्ष अनुभव करने लगे। बाबाजी महाशयने इस शुभ मुहूर्तमें हरिदादाकी मनोकामना पूरी की।

इस प्रकार बड़े आनन्दके साथ कटहल-बगीचेमें हरिदादाके घर तीन दिन रहकर बाबाजी महाशय नवद्वीप चले गये।

———

श्रीधाम नवद्वीपमें

बाबाजी महाशय श्रीधाम नवद्वीप पधारे हैं यह सुनकर बहुतसे लोग आनन्द विभोर हो उनके पास आने लगे। वे भी नाना प्रकारके भगवत् प्रसङ्गों द्वारा उन्हें परमानन्दित करने लगे। एक दिन श्रीयुत मोतीलालराय महाशयके बड़े लडके श्रीयुत धर्मदास राय महाशय बोले 'दादा! श्रीगौराङ्गदेवकी बहुत तरहकी लीलाएँ हैं। जो लोग ब्रजके विशुद्ध माधुर्य भावके उपासक हैं, उनके लिये कौन सी लीला विशेष रूपसे हितकर और आस्वाद्य है ?

बाबाजी—भाइ! निताइ-गौराङ्ग सर्वतत्वमय हैं। ऐसा कोई भाव नहीं जो श्रीगौराङ्गमें न हो; फिर भी भावोंमें अन्तर और तारतम्य तो है ही। 'भावनिधि श्रीगौराङ्गे भावेर शाबल्य, सब भाव हइते राधा भावेर प्राबल्य।' जो लोग अपने सिद्ध देहमें गोपीभावका आरोप कर राधागोविन्द-लीलामें प्रवेश करना चाहते हैं, वे यदि श्रीगौराङ्गदेवको राधारानी न माने, तो उनका लीलामें प्रवेश करना कष्टकर होगा ? वे स्वयं भक्तभाव अंगीकार कर जगत्के आदर्श बने थे। पूर्वलीलाकी अपेक्षा उत्तर लीलामें माधुर्यकी अधिकता है, यह मानना पड़ेगा।

धर्म—अच्छी तरह नहीं समझा।

बाबाजी—नवद्वीपके बहुतसे भक्त श्रीगौराङ्गदेवको जिस दृष्टिसे देखते थे अथवा जिस भावसे आस्वादन करते थे, वह भाव उन्हें अपने आपको अच्छा नहीं लगता था। इसी कारण वे सन्यास लेकर नीलाचल गये और वहां गम्भीरामें रहकर स्वरूप दामोदर और रामानन्द रायको साथ ले एकान्तमें अपने

भावका आस्वादन करते थे। सन्यासके बादवाली जो सब लीलाएँ हैं, वेही भक्तजनोंको विशेष प्रिय और आस्वाद्य हैं। परन्तु ऐसा मालूम होता है कि महाप्रभुके सन्यासकी बात शायद आपके गुरुदेव और कर्त्ता बाबाजी महाशयको अच्छी नहीं लगी।

कर्त्ता बाबाजी—'देखो भाई! रसराज श्रीगौरांगके सन्यास की बात सोचते या कहते हुए तुम लोगोंको कष्ट नहीं होता? हम सन्यास-फन्यास नहीं मानते। हमारे नागरेन्द्र चूड़ामणि रसमय गौरकिशोर तो:—

धवल पाटेर जोड़ परेछे, राङ्गा-राङ्गा पाड़ दिये छे,
चरण उपर दुले जेछे कोंचा।
बाँक-मल सोनार नूपुर, बेजे जेछे मधुर मधुर,
रूप देखिते भुवन मुरछा॥
दीघल दीघल चाँचर चूल, ताय गूँजेछे चाँपार फूल,
कुन्द मालतीर माला बेड़ा भोंटा।
चन्दन माखा गोरा गाय, बाहु दोलाये चले जाय,
कपाल माझे भुवन मोहन फोंटा॥
बाहुर हेलन-दोलन देखि, हातिर शुण्ड किसे लिखि,
नयान बयान जेनो कूँदे कोंदा।
मधुर मधुर कय गो कथा, श्रवण मनेर घुचाय व्यथा,
चाँदे जेनो उगारये सुधा॥

गौरकिशोरके इस रूपको छोड़कर हम अन्य किसी रूप को न तो मानते हैं और न स्वीकार करते हैं।

बाबाजी—यदि मेरा अपराध ग्रहण न करें तो मैं दो-एक बातें कहूँ।

कर्त्ता—इसमें क्या बात है! भगवत् लीला-प्रसंग तो वादानुवाद द्वारा गुरु-शिष्यको समझने ही चाहिये।

बाबाजी—श्रीगौरांग अवतारका मुख्य उद्देश्य है स्वयं को आस्वादन करना, यथा—'श्रीराधाया: प्रणयमहिमा कीदृशो वानयैवा, स्वाद्यो येनातद्भुमधुरिमा कीदृशो वा मदीय: । सौख्यं चास्या मदनुभवत: कीदृशं वेति लोभा, त्तद्भावाढ्य: समजनि शचीगर्भसिन्धौ हरीन्दु: ।' अर्थात् श्रीराधाकी प्रणय-महिमा कैसी है; वे मेरे जिस अतिशय माधुर्यका आस्वादन करती हैं, वह कैसा है; मुझे उपभोग कर उन्हें जो सुखानुभव होता है, वह सुख कैसा है; यह तीन वासनाएँ श्रीकृष्णके मनमें उठीं, उन्होंने देखा कि श्रीराधिकाका भाव अंगीकार किये बिना मेरी इन वासनाओंकी पूर्ति नहीं हो सकती, क्योंकि मैं विषय होनेके कारण विषयजातीय सुखका ही उपभोग करता हूँ, आश्रय-जातीय सुख उससे करोड़ गुना अधिक है, उसका उपभोग मैं तभी कर सकता हूँ जब मैं स्वयं आश्रय बनूँ ।

'बिषय जातीय सुख आमार आस्वाद ।
आमा हइते कोटिगुण आश्रयेर आह्लाद ॥
कभू जदि एइ प्रेमार हइये आश्रय ।
तब एइ प्रेमानन्देर अनुभव हय ॥'

तभी तो श्रीराधिकाके भाव और उनकी कान्तिसे मंडित होकर श्रीकृष्ण शची-गर्भसे अवतीर्ण हुए । स्वयं नागर भावका अवलम्बन कर नागरीगणके साथ सब रसोंका आस्वादन करना तो श्रीकृष्णका स्वाभाविक भाव है । इसके लिये अन्य अवतार की क्या आवश्यकता थी ? श्रीराधा-भाव अंगीकार कर श्रीकृष्ण को आस्वादन करना ही जब श्रीगौरांग-अवतारका प्रधान उद्देश्य है, तब यदि हम उन्हें उसी भावसे न भजें तो क्या हमारे भजनसे उन्हें सुख होगा ? आपने कहा कि हम 'श्रीगौरांगका सन्यास नहीं मानते । हम किसीके प्रति पूर्ण रूपसे

भक्ति करें और उसके कुछ व्यवहारोंको मानें, कुछको छोड़ द, तो उसे पूर्णरूपसे मानना हुआ क्या ? यदि श्रीगौरांगको मानना है, तो उनकी बाल्य चपलता, पौगण्डावस्थाकी उद्धतता, किशोरावस्था का विद्या-मद, यौवन का निष्ठुर व्यवहार और सन्यास ये सब मानना होगा। श्री गौराङ्गदेव के इतने परिकर थे, मगर स्वरूप दामोदर और राय रामानन्द इन दो को ही वे इतना क्यों चाहते थे ? गदाधर पंडित गोस्वामी को ही गोपीनाथ की सेवा और टोटा में वास स्थान क्यों दिया ? कोई यह न समझे कि मैं श्रीगौराङ्गदेव के परिकरों को अन्तरंग और बहिरङ्ग कोटियों में विभक्त कर रहा हूँ। हमारे लिये तो वे सभी पूज्य हैं। यह श्रीमन्महाप्रभु की दृष्टि से पता चलता है कि वे जिस भाव को स्वयं पसन्द करते थे, उसमें जिस किसीसे सहायता मिलती थी उसे वे अन्तरङ्ग मानते थे। स्वरूप दामोदर और राय रामानन्द ये दोनों महाप्रभु को श्री राधारानी के अतिरिक्त कभी भी और किसी भाव से नहीं देखते थे। यही कारण था कि महाप्रभु अपना मनोभाव व्यक्त करें या न करें, ये उनका मनोभाव जान लेते थे और उसी भावके अनुकूल पद गाकर और श्लोक उच्चारण कर या बातचीत कर उन्हें सन्तुष्ट करते थे।

कर्त्ता०— तुम कुछ भी कहो भाई, सन्यास की बात मन में आते ही हमारे प्राणों में जाने क्या होने लगता है। उन्हें घुँघराले केशों से हीन मुंडित मस्तकवाला, गेरुआ वस्त्रधारी, भिखारी के वेश में हम नहीं देख सकते।

बाबाजी०-- वह अलग बात है। लीला तो सारी ही नित्य हैं। भावुक साधक के लिये नवद्वीप लीला भी नित्य है, और नीलाचल लीला भी। जिसे जो प्रिय लगे, वह उसी को लेकर उपासना करे। किसी को कोई आपत्ति नहीं होंगी। पर

यह कहनेसे कि हम अमुक लीला नहीं मानते वैषम्य दोष लगता है। भगवानके अनेक रूप, अनेक नाम, अनेक धाम, अनेक वेश हैं। जिन्हें जो नाम, जो वेश, जो धाम, जो रूप अच्छा लगे वह उसीको लेकर उपासना करे, इसमें किसीको क्या आपत्ति हो सकती है ? हमें अद्वेष्टा होना चाहिये। यह जिसका भजन करता हूँ, मेरे लिये वही सर्वश्रेष्ठ है, यह तो ठीक है, पर दूसरा व्यक्ति जिसका भजन करता है, वह सर्वापेक्षा निकृष्ट है अथवा उसे मैं नहीं मानता, यह कहां तक उचित है ?

धर्मदास— दोनों ही लीलाएँ नित्य हैं, यह बात मैं अच्छी तरह नहीं समझ पाया। एक व्यक्तिकी दो अवस्थाएँ क्या सदा मौजूद रह सकती हैं ?

बाबाजी— यही तो भगवानकी भगवत्ता है, वे जब भी जहाँ भी जो लीला करें, वही नित्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं। जो लोग सन्यासको मानना नहीं चाहते, मैं उनसे पूछता हूँ कि यदि कोई उनके रसमय नागरेन्द्र चूड़ामणि गौरको 'कृष्णचैतन्य' नामसे सम्बोधित करे, तो क्या वे नहीं सुनेंगे ?

कर्त्ता०— सो क्यों नहीं ? 'श्रीकृष्णचैतन्य' नाम तो हम भी अस्वीकार नहीं करते; हमारा तो यही नाम इष्ट-मंत्र है।

बाबाजी— फिर तो आप सन्यासीकी ही उपासना करते हैं। रसमय गौराङ्गसुन्दरका नाम तो श्रीकृष्णचैतन्य नहीं। श्रीकृष्णचैतन्य नामका उच्चारण करते ही श्रीगौराङ्गका सन्यास वेश समने आता है। जिस प्रकार केशीमर्दन, कंस-निषूदन, मथुरानाथ कहनेसे भिन्न-भिन्न रूपवाले कृष्णका बोध होता है, उसी तरह नदिया-बिहारी, गौरकिशोर कहनेसे नटवर गौरसुन्दर, और श्रीकृष्णचैतन्य कहनेसे मुंडित-मस्तक गेरुआ वस्त्रधारी नीलाचल-विहारी गौराङ्गका बोध नहीं होगा ?

इस प्रकार नाना प्रकारके भगवत् कथा प्रसङ्गोंमें बहुत समय बीत गया। यथासमय सबने स्नान-नित्यकर्मादि पूरा कर महाप्रसाद पाकर विश्राम किया।

दूसरे दिन बाबाजी महाशय आठ बजेके लगभग गंगा-स्नानकी इच्छासे साथियों सहित बड़ालघाट पर गये। वहाँ जलक्रीड़ा करते-करते डुबकी लगाई और लापता हो गये। दस मिनट तक जब उस स्थान पर किसी प्रकारकी हलचल न दीखी तो साथी लोग व्याकुल होकर चारों ओर ढूँढ़ने लगे। कोई डुबकी लगाकर, कोई तैरकर, कोई किनारे पर आकर खोजने लगा। जब कहीं पता न लगा तो द्रुतगतिसे आश्रम जाकर परमगुरुदेव वृद्ध बाबाजी महाशयको सूचित किया। वे मृदुभावसे हँसकर बोले, 'कोई चिंता नहीं; वह जादूगरका बेटा तुम लोगोंकी परीक्षा लेनेकी दृष्टिसे डुबकी लगाकर स्टीमर घाटकी ओर जा रहा है; वहाँ चले जाओ, मिल जायगा।' सुनकर वे लोग तीव्रगतिसे स्टीमर घाटकी ओर दौड़े गये। वहाँ प्रायः दस मिनट तक चारोंओर खोजते रहे। उसी समय बाबाजी महाशय यकायक जलके भीतरसे निकल आये। साथियोंके मृत शरीरोंमें मानो प्राण आ गये; वे व्याकुल होकर रोते-रोते जलमें कूद पड़े और उन्हें पकड़ लिया। उन्होंने भी स्नेहपूर्वक एक-एक कर सबको आलिङ्गन किया। फिर हँसते हँसते पूछा, 'मैं यहाँ आ गया हूँ, यह तुम्हें किसने बताया?' साथी बोले, 'और कौन बतायेगा? बहुत देर तक खोजने पर भी जब आपका पता न चला, तो हम लोगोंने जाकर दादा महाशयको बताया। वे हँसकर बोले, 'कोई चिंता नहीं; वह जादूगरका बेटा तुम्हारी परीक्षा लेनेके विचारसे डुबकी लगाकर स्टीमर घाटकी ओर जा रहा है; वहाँ मिल जायगा।'

बाबाजी—अरे पागलो ! ऐसी पागलपनेकी बात क्या उनसे कहनेकी हैं ?

साथी—उनसे न कहें तो क्या करें ? हम लोग तो हताश हो गये। आप ऐसी निष्ठुरता करेंगे, हमने स्वप्नमें भी नहीं सोचा।

बाबाजी—निष्ठुरता नहीं। डुबकी मारते ही सोचा कि देखूँ डुबकी लगाये कितनी दूर जा सकता हूँ। सो यहाँ तक आ गया। तुम लोग इतने परेशान क्यों हो गये ? मैं यथासमय आश्रम पहुँच जाता।

साथी—आदमी क्या इतनी देर तक शान्त बैठा रह सकता है।

बाबाजी—तो खैर, अच्छा किया। कहते हुए किनारे पर आये और आश्रमकी ओर प्रस्थान किया।

नवद्वीपमें पांच-छः दिन रहकर श्रीगुरुदेवसे बिदा ली और कुठीघाट चले गये।

कुठीघाटमें

कुठीघाटमें एक दिन एक सज्जन बाबाजी महाशयके पास आकर बोले, 'हमारे यहाँ पंचायती कालीपूजा होती है। क्या दर्शन करने चलेंगे ?'

बाबाजी—अच्छी बात है, चलो।

यह कहकर वे साथियोंसे बोले, 'खोल-करताल ले चलो, माँ को थोड़ा नाम सुना आयँ।'

यह सुनकर सभी लोग बड़े उत्साहसे नाम करते हुए काली-पूजाके उस पंचायती स्थान पर जा पहुँचे। बहुत लोग इकट्ठा हो

गये; नाम भी खूब जोरोंसे होने लगा। सब आत्मविभोर हो नृत्य कर रहे थे और हाथसे ताली बजा-बजाकर 'भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम कर रहे थे। बाबाजी महाशयने नृत्य करते हुए और माँके मुखकी ओर देखते हुए पद गाया—

केउ कि देखेछो भाइ प्रेम मूर्तिमन्त,
प्रेमेर स्वरूप आमार प्रभु नित्यानन्द।
केउ कि देखेछो भाइ भाव मूर्तिमन्त,
भावेर स्वरूप आमार प्रभु गौरचन्द्र।
केउ कि देखेछो भाइ ज्ञान मूर्तिमन्त,
ज्ञानेर स्वरूप आमार श्रीअद्वैतचन्द्र।
केउ कि देखेछो भाइ रस मूर्तिमन्त,
रसेर स्वरूप आमार गदाधरचन्द्र।
केउ कि देखेछो भाइ भक्ति मूर्तिमन्त,
भक्तिर स्वरूप आमार श्रीश्रीवासचन्द्र।

साथ की साथ रचना करते हुए इसी प्रकारके और न जाने कितने पद गाये। आनन्दका स्रोत बह निकला। बारोयारी काली माँके आगे कविता, नाटक, नाच आदिको छोड़कर कभी नामकीर्त्तन हुआ हो, किसीने कभी नहीं सुना। आज रणरङ्गिनी माँ आनन्दमय निताइ-गौरका गुण-गान सुनकर आनन्दोन्मत्त हो मानो प्रेमतरङ्गिणी हो रही हैं। जिन लोगोंके मुखसे कभी हरेकृष्ण, गोविन्द, निताइ-गौर नाम सुना तक नहीं, वे भी आज 'निताइ गौर राधेश्याम' कहकर नाच रहे हैं। बाबाजी महाशय संकीर्त्तनमें काम और प्रेमकी विशद व्याख्या कर रहे हैं, जिसे सुनकर सभी लोग बड़े प्रसन्न होकर एक दूसरे से कहने लगे 'हम लोगोंने बहुत सी जगहों पर, बहुत बार

नामकीर्त्तन, भागवत-पाठ आदि सुना है, पर काम और प्रेमका अन्तर इतने स्पष्ट रूपसे कोई न समझा सका। आज इन महापुरुषकी कृपासे काम और प्रेमका अन्तर जानकर हमारा हृदय तृप्त हो गया; पर कैसे दुर्भाग्यकी बात है, इतने दिनसे यह महापुरुष यहाँ आते रहे हैं, और हम इन्हें न समझ सके।' किसीने कहा 'भाई, महापुरुषकी कृपा बिना क्या महापुरुषको पहचाना जा सकता है ?'

बाबाजी महाशयने कालीके आगे बहुत देर तक कीर्त्तन-नर्त्तन कर अन्तमें संकीर्त्तन समाप्त किया और माँको दण्डवत् प्रणाम कर निवास-स्थानको लौट आये।

एक दिन न जाने मनमें क्या आया, सुबह नौ बजे साथियोंको नाम करनेका आदेश किया और फणी और राधाविनोदको भेज देकर उन्हें संकीर्त्तनके साथ भिक्षा करने भेज़ दिया। स्वयं गम्भीर होकर बैठे रहे। साढ़े दस बजे संकीर्त्तन वापस आया। उस समय एक अपूर्व दृश्य था। सभीकी आँखोंसे अश्रु-प्रवाह हो रहा था, सभीका शरीर पुलकसे परिपूर्ण था और सभी नृत्यपरायण थे। बाबाजी महाशयने संकीर्त्तनको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया और भिक्षाकी झोली लेकर स्वयं नृत्य करने लगे। नाचते-नाचते भावावेशमें अचैतन्य हो पृथ्वी पर गिर पड़े। साथी उन्हें घेरकर जोर-जोरसे नाम करने लगे। उनके शरीरमें अश्रु,कम्प,पुलक आदि सात्विक विकार एकसाथ प्रकट होने लगे। विस्फारित नेत्रोंसे अविरल अश्रुधार बहने लगी। उस अवस्थामें जो भी उन्हें स्पर्श कर लेता था, वह प्रेमावेशमें विभोर हो नाचते-नाचते पृथ्वी पर गिर पड़ता था। बहुत देर बाद वे कुछ स्थिर हुए और साथियोंको सान्त्वना-वाक्यों से सन्तुष्ट कर नाम बन्द किया।

पुरी-प्रत्यावर्तन

कुछ दिन पूर्व बाबाजी महाशयने श्रीधामपुरी स्थित 'झाँजपीटा मठ' में श्रीमती ललितादासीको एक पत्रमें ठाकुर-सेवा और वैष्णव-सेवाके नियमादि इस प्रकार लिखकर भेजे थे। 'ठाकुर-मन्दिरमें रात-दिन घीका दीपक जलेगा। ठाकुरजीके भोगमें देशी गुड़के अतिरिक्त और कोई मिठाई न रखी जायगी। मठके भीतर किसी प्रकारका तेल न आयगा। दियासलाईसे कोई काम न होगा, सन्ध्याके बाद कोई मठसे बाहर न जायगा। तम्बाकू-गाँजा आदि कोई भी मादक पदार्थ न तो मठमें आयगा और न कोई उसका व्यवहार करेगा। एक समय ठाकुरजीके लिये रसोई होगी, तीसरे पहर श्रीश्रीजगन्नाथदेवका जो महा-प्रसाद आयगा, उसमेंसे श्रीगणेश महापात्र और गदाधर रथको भरपेट देकर जो बच रहेगा, उसीको बाकी लोग पा लेंगे। त्रिसन्ध्या नामकीर्त्तन होगा। तुम्हारे अलावा दो व्यक्तियों द्वारा, श्रीजगन्नाथ-मन्दिरके कीर्त्तनकी नियम-रक्षा होगी' इत्यादि। आज एक पत्र और लिखा जिसमें पूछा कि 'आश्रमका सेवा-कार्य यथाविधि चल रहा है या नहीं।' पुरीसे संवाद आया 'आपकी कृपासे सेवा-कार्य आपके आदेशानुसार चल रहा है। पुरीवासी आपामर जनसाधारण आपके श्रीचरण-दर्शन करनेके लिये बड़े ही उत्सुक हो रहे हैं, अतः एक बार श्रीधाम पधार कर सभीका आनन्द वर्धन करें।' संवाद पाते ही बाबाजी महाशय पुरी जानेकी तैयारी करने लगे। कलकत्तेके भक्त और कुछ दिन वहाँ ठहरनेके लिये अनुरोध करने लगे, पर आप उसी दिन शामको श्रीधामपुरीके लिये रवाना हो लिये। साथमें महाप्रभुका एक

आयल पेण्टका चित्रपट था। सुबह साढ़े आठ बजे श्रीधामपुरी में झाँजपीटा मठ जा पहुँचे।

तीन दिन पहले श्रीजगन्नाथदेवकी सेवा-व्यवस्थाके लिये एक अंग्रेज मैनेजर नियुक्त हुए थे। उनके प्रयत्नसे आज सुबह दस बजेके लगभग श्रीजगन्नाथदेवको प्रथम भोग लगा था। पुरीवासियोंके मनमें आनन्द नहीं समा रहा था। इधर बाबाजी महाशयके आनेकी बात सुन बलरामबाबू, नगेनबाबू, भुवन साउ आदि भक्त आ-आकर उनके चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम कर उनके स्वास्थ्यके बारेमें पूछने लगे। वे भी प्रेमालिङ्गन द्वारा उन सबकी विरह-यंत्रणा दूर कर श्रीधाम और धामेश्वर श्रीजगन्नाथदेवके बारेमें कुशल-प्रश्न करने लगे। बलरामबाबूने प्रसन्नचित्त होकर कहा, 'बड़ा ही शुभ संवाद है; तीन दिन हुए, श्रीजगन्नाथदेवकी सेवा-व्यवस्थाको सुचारु रूपसे चलाने के लिये एक अग्रेज मैनेजरकी नियुक्ति हुई है। उनकी चेष्टासे और श्रीजगन्नाथदेवकी इच्छासे आज दस बजे ठाकुरको प्रथम भोग दिया गया। यदि आज्ञा हो तो थोड़ा सा महाप्रसाद मँगाऊँ।' बाबाजी महाशय अति प्रसन्न हो गद्गद् कण्ठसे बोले, 'बलराम ! बडा ही शुभ संवाद दिया। इतने दिन बाद श्रीजगन्नाथदेवने कृपा कर ग्रहोंको दूर हटाया।'

बलराम—आपने पहले जो कुछ कहा था, वह सब हमने प्रत्यक्ष देख लिया। आपके आदेशानुसार कोणार्क तीर्थमें नवग्रह पूजादि पूरी कर पुरी लौटा ही था कि सुननेमें आया, गवर्नमेण्टने जगन्नाथ-सेवाके लिये एक मैनेजरकी नियुक्तिका प्रस्ताव रखा है; राजाकी स्वीकृतिका इन्तजार है। दस-पन्द्रह दिन बाद सुना कि सब कुछ ठीक हो गया है, शीघ्र ही मैनेजर आ जायँगे। मन ही मन आपकी बात सोचने लगा। देखा कि

ठीक उसी प्रकार हो रहा है जैसे आपने कहा था। अंग्रेज मैनेजर नियुक्त होगा, सुनकर पहले तो सभी डरे, पर अब उसका व्यवहार और धर्मभाव देखकर सब बड़े प्रसन्न हैं।

बलरामबाबूकी बातोंसे नरम सन्तुष्ट हो बाबाजी महाशय बोले, 'निताइकी इच्छासे बड़ी सुन्दर बात हुई। जाओ, महाप्रसाद ले आओ।' श्रीमन्महाप्रभु पधारे हैं, उन्हें समर्पण करना होगा।' आज्ञा पाते ही बलरामदास द्रुतगतिसे जगन्नाथ-मन्दिर पहुँचकर महाप्रसाद ले आये; बाबाजी महाशयने महाप्रसादको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर एक भक्तसे कहा, 'देखो, इस पंगत घरमें श्रीमन्महाप्रभुको आसन देकर भलीभाँति महाप्रसाद सेवन कराओ।' भक्तने आज्ञानुसार काम किया। उधर भोग दिया गया, इधर प्रेमदादाने थोड़े विस्मयके साथ बाबाजी महाशयसे पूछा, 'जो स्वयं पूर्ण पूर्णतम साक्षात् भगवान् हैं; नारायणादि जिनकी अंशकलाएँ हैं, उन्हें दूसरेको समर्पितकी गई वस्तु कैसे अर्पितकी जा सकती है ?'

बाबाजी—बड़ा सुन्दर प्रश्न है। सुनो, पहले बहुतबार तुम लोगोंसे कहा है कि 'लीला' और 'तत्व' दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। दोनोंको मिलानेसे ही मुशकिल होती है और उपासनामें बाधा पडती है। गोस्वामीपादोंने श्रीमन्महाप्रभुके तत्व के सम्बन्धमें कहा है कि उनके रूपमें साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन ही श्रीराधिकाकी भाव-कान्ति धारणकर श्रीधाम नवद्वीपमें अवतीर्ण हुए हैं।' अब यदि ब्रजेन्द्रनन्दनके तत्वको जानना चाहो तो शास्त्र कहते हैं, 'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।' तो देखो, श्रीकृष्ण पूर्ण पूर्णतम साक्षात् भगवान् हैं, तदभिन्नत्व हेतु श्रीगौराङ्ग भी पूर्ण पूर्णतम साक्षात् भगवान् हैं। भगवान्के जन्म, कर्म, उपनयन, विवाह, सन्यास आदि

असम्भव हैं, क्योंकि वे षड़ैश्वर्य परिपूर्ण, निष्क्रिय, निर्लिप्त, गुणातीत, निर्विकार पुरुष हैं। माया शक्ति उनसे दूर रहती है और लीलाशक्ति लज्जित भावसे ओटमें छिपी रहती है। इस रूपमें वे मन-वाणीसे अगोचर हैं। उन्होंने स्वयं कहा है—'न मे विदुः सुरगणाः प्रभवं न महर्षयः।' अर्जुनने कहा है—'न हि ते भगवन् व्यक्ति विदुर्देवा न दानवाः', अन्यत्र—'अनेक बाहूदर-वक्तृनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनन्तरूपम्। नान्तं न मध्यं न पुन-स्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप॥' अनन्तदेव अपने सहस्र मुखोंसे जिनके ऐश्वर्य या तत्वका एक कण भी प्रकट न कर सके, उन्हें साधारण जीव कैसे समझ सकता है? इसलिये उन्हें दूसरेका नैवेद्य देना तो दूर उनकी ध्यान-पूजा करना ही सम्भव नहीं। इसी कारणसे भगवान् जीवके प्रति दयार्द्र हो इच्छाशक्तिको अंगीकार कर अपनी विभुत्व शक्तिको अपने भीतर छिपा लेते हैं और लीलाशक्ति की अधीनता स्वीकार करते हैं। लीलाशक्ति उन्हें जैसे-जैसे नचाती है, वह मन्त्रमुग्ध की तरह उसी तरह नाचते हैं। जब हम लीलाशक्तिके साथ विभुत्व शक्तिको मिलाते हैं तो लीलामय प्रभुके अन्तरको आघात पहुँचता है। ब्रजलीलामें, गोष्ठसे लौटनेके समय ब्रह्माजी ने जो स्तुति की थी, वह इस बातका प्रमाण है। लीलाशक्तिके वशीभूत होकर लीलामयने स्वयं कहा है—'विहरे प्राकृतो यथा।' अन्यत्र कहा है—'माता मोरे पुत्रभावे करये बन्धन, सखा शुद्ध सख्ये करे स्कन्धे आरोहण। प्रिया जदि मान करि करये भर्त्सन, बेदस्तुति हइते शेइ हरे मोर मन॥' हम लोगोंकी जो भी क्रीड़ाएँ हैं, वे इस लीलामय विग्रहको लेकर हैं। श्रीमन्महाप्रभु ने स्वयं श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन किये हैं और उनका महाप्रसाद सेवन किया है। नवद्वीपमें रहते समय उन्होंने अपने हाथों

शालग्रामकी सेवा कर उनका अधरामृत ग्रहण किया है। मर्यादा पुरुषोत्तमने सभी देव-देवियोंकी मर्यादाकी रक्षाकी है। 'धर्म-संस्थापक प्रभु स्थाने सर्व धर्म, लोक-शिक्षा हेतु कभू ना लंघेन कर्म।' लीलामय पुरुषको ऐश्वर्यके नेत्रोंसे देखनेसे सम्बन्ध राज्य में भावकी उपासना करनेवालोंके हृदयमें आतंक और उनकी उपासनामें विघ्न पैदा होता है ? यदि शचीमाताको यह बात समझाई जाती कि 'यदद्वैतं ब्रह्मोपनिषदि तदपास्य तनुभाः। य आत्मान्तर्यामी पुरुष इति सोऽस्यांशविभवः॥' तो क्या वे श्री-गौराङ्गके शरीरको धूलिधूसरित देख या उनका चन्द्रवदन मुरझाया देख उन्हें गोदमें लेकर आँसुओंसे भिगो सकतीं ? क्या उनके भाव-प्रेमका विकास हो सकता और ताड़ना, भत्सर्ना आदि सम्भव होती ?

प्रेम—पर जब वृन्दावनमें गोवर्द्धन धारण किया, पूतना, अघासुर, बकासुर आदिका वध किया, या जब नवद्वीपमें सात प्रहरिया भाव और महाभावावेश हुआ, तब क्या यशोदा मैया या शची माँने इन सब लीलाओंका दर्शन नहीं किया ?

बाबाजी—यही तो पूर्ण माधुर्यका विकास है। 'देखि-लेओ नाहि माने केबलार रीत, ऐश्वर्य शिथिल प्रेमे नहे मोर प्रीत।' गोस्वामीजनोंने तो इस विषयमें स्पष्ट रूपसे लिखा है— 'विष्णु द्वारे करेन कृष्ण असुर संहार।' अर्थात् असुर संहार आदि कार्य कृष्ण स्वयं न कर विष्णु द्वारा कराते हैं। योगमाया ने व्रजगोपियोंकी प्रेम-परीक्षाके लिये बहुत ऐश्वर्य दिखाया, पर वे किसी प्रकार भी विचलित न हुईं। कृष्णके मुँहमें चौदह ब्रह्माण्ड देखकर यशोदाजीने उसे किसी ग्रह अथवा अपदेवताका कार्य समझा और उन्हें शान्त करनेके उपाय करने लगीं। गोपियोंने श्रीकृष्ण पर स्त्री-हत्या (पूतना-वध) और गो-हत्या

(वृषासुर-वध) का दोष लगाया और इससे मुक्ति पानेके लिये तीर्थ-पर्यटन और तीर्थ-स्नानका प्रायश्चित्त बताया, श्रीकृष्णने योगमायाका आश्रय लेकर जैसे ही तीर्थोंका आह्वान किया, वैसे ही सब तीर्थ आकर उपस्थित हो गये। यह सब गोपियोंने अपनी आँखोंसे देखा, पर इसे योगमाया की कृपा समझ कृष्णमें किसी प्रकारका ऐश्वर्य भाव आरोपित नहीं किया। यही तो द्वारका और मथुरा-लीलाके मुकाबले वृन्दावन-लीलाकी विशेषता है। जो लोग कृष्णकी सख्य, वात्सल्य और मधुर भावसे उपासना करते हैं, वे बिना किसी संकोचके नारायण, गोपेश्वर अथवा कात्यायनीका प्रसाद कृष्णको अर्पित करते हैं। ऐसा करते हुए उन्हें किंचित् मात्र भी संकोच नहीं होता।

प्रेम—अच्छा, तो क्या जो महाप्रभुको अमनिया (अनिवेदित वस्तु) भोग लगाते हैं, वे अपराध करते हैं ?

बाबाजी—सो क्यों ? महाप्रभु भावनिधि हैं। जो जिस भावसे उनका भजन करता है, वे उसी भावसे उसका भजन स्वीकार करते हैं। श्रीअद्वैतप्रभुने अपने घर तीन पत्तलें एकसाथ बिछाईं और तीनोंपर तुलसी-मंजरी, पीत घृत आदि रखा, मगर कृष्णको उनमेंसे एक ही पत्तलका भोग लगाया। दूसरे दोनों परोसे अमनिया रहे। श्रीमन्महाप्रभु और श्रीनित्यानन्द प्रभु आये, तो उन्हें उन पत्तलोंपर बिठा दिया। लीलामय महाप्रभु उन पत्तलोंको कृष्ण-नैवेद्य समझकर अद्वैत आचार्यकी प्रशंसा करने लगे। तुम चाहे जिस भावसे उन्हें भोग लगाओ, वे अपने स्वयंके भावानुसार ही उसे ग्रहण करेंगे। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि 'इन दो भावोंमें से कोई भी त्याज्य है।'

इस प्रकार नाना प्रकारके प्रसङ्गोंमें बहुत समय बीत गया। महाप्रभुके भोगके बाद ललितादासीने इन्हें महाप्रसाद

पानेके लिये कहा । सबने महाप्रसाद सेवन कर विश्राम किया ।

संदेह-भंजन

अपराह्नमें बाबाजी महाशय साथियों सहित कीर्त्तन करते हुए श्रीजगन्नाथदेवके मन्दिर गये । आबाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी पुरीवासी उन्हें देखते ही आश्चर्यचकित हो गये । सभीकी यह धारणा हो गई थी कि वे पागल हो गये हैं और सभी यह जानकर बहुत दुःखी थे । आज बड़े रास्तेपर ठीक पहले जैसी प्राणोंको झकझोर देनेवाली संकीर्त्तन-ध्वनि सुनकर मानो सभी के मृत शरीरोंमें फिरसे प्राण आ गये । सभी लोग दौड़-दौड़कर उनके पास जाकर दण्डवत् प्रणाम कर गद्‌गद् कण्ठसे कुशल-क्षेम पूछते हुए अपूर्व उल्लास व्यक्त करने लगे । बाबाजी महाशय भी मृदुहास्यके साथ उनके प्रश्नोंका उत्तर देकर उनकी मनो-व्यथा दूर करने लगे । मन्दिर पहुँचकर ज्यों ही उन्होंने जगन्नाथ देवके दर्शन किये, आँसुओंसे मुख और वक्षस्थल भीग गया । वे गद्‌गद् कण्ठसे नाना प्रकारकी पद-पदावलि द्वारा स्तव-स्तुति करने लगे । थोड़ी देर बाद उन्होंने माधव पशुपालकसे पूछा, 'जगन्नाथजीकी सेवा-व्यवस्था कैसी चल रही है ?'

माधव—श्रीजगन्नाथदेवकी इच्छासे आजकल बड़े सुन्दर ढंगसे चल रही है; फिर भी, यदि यह मैनेजर हिन्दू होता तो और भी सुविधा होती, क्योंकि यह मन्दिरके भीतर तो जा नहीं पाता ।

बाबाजी—आप लोगोंके साथ कैसा व्यवहार है ?

माधव—व्यवहार बड़ा मधुर है । पहले दिन ही सेवक-

पण्डों आदिको बुलाया और पूछा, 'आपके श्रीजगन्नाथदेव की सेवाके क्या नियम हैं, एकबार सुनना चाहता हूँ। मैं हिन्दू नहीं हूँ, इस कारण मुझे सेवा-पूजाकी बातें बतानेमें कोई आपत्ति तो नहीं ?' यह सुनते ही हम सब एकस्वरसे बोले, 'जी, नहीं हुजूर! जब श्रीजगन्नाथदेवने अपनी सेवाकी सुव्यवस्थाके लिये आपको अङ्गीकार किया है, तो इस बातमें सन्देह नहीं कि आप हमारी अपेक्षा उनके विशेष अन्तरङ्ग हैं। आपको बतानेमें आपत्ति कैसी ?' उन्हें नित्य सेवाके विषयमें सभी बातें बताई गईं।

मैनेजर—अच्छा, आजकल क्या इन नियमोंके अनुसार सेवा चल रही है ?

हम—हुजूर, इन नियमोंका एकआना भर भी पालन हो रहा हो इसमें सन्देह है। चौबीस घण्टोंमें जिस दिन दोपहरको भी भोग लग जाता है, हम समझते हैं कि आज सेवा अच्छी हुई।

मैनेजर—सेवा न होनेका कारण अर्थाभाव है या कुछ और ?

हम—जगन्नाथ तो ईश्वर हैं, उनके पास पैसेका अभाव नहीं। अभाव तो सिर्फ बन्दोबस्तका है। यदि राजासाहब थोड़ी बहुत भी नजर रखते, तो सब काम सुचारु रूपसे चलता।

मैनेजर—राजासाहब स्वयं कोई सेवा करते थे क्या ?

हम—सेवा भले ही न करें, पर उनका थोड़ा शासन रहनेसे ही सब ठीक होता।

मैनेजर—जगन्नाथ सिर्फ राजाके उपास्यदेव हैं, या आप लोगोंके भी ?

हम—राजाके भी हैं और हमारे भी ?

मनेजर—अच्छा, सेवा ही तो उपासना है ?

हम—जी हाँ, सेवा ही प्रधान उपासना है । बिना सेवाके साध्य वस्तु नहीं मिलती ।

मैनेजर—तो जिनमें कर्त्तव्य-ज्ञान रहता है, उन्हें उपासनाके लिये दूसरेके शासनकी क्या आवश्यकता ? बड़े दुःखकी बात है ! आप लोग हिन्दू हैं, आपके अपने उपास्य देवताकी उपासना या सेवाकी व्यवस्थाके लिये मैं एक ईसाई आया हूँ; इसमें आप अपना अपमान नहीं मानते ? आप लोग अपने-अपने कर्त्तव्यसे भ्रष्ट हो गये हैं इसीलिये मैं समझता हूँ, सेवामें ऐसी विशृङ्खलता आ गई है । लोग अपने-अपने इष्ट देवताकी सेवाके लिये कितने कायिक क्लेश सहन करते हैं, यहाँ तक कि भिक्षा करके सेवा चलाते हैं । यहाँ तो किसी प्रकारका अभाव ही नहीं । पर सेवकोंके अपने कर्त्तव्यसे भ्रष्ट हो जानेके कारण सेवा बन्द है ! इस विषयमें क्या करना चाहिये, इसका भार मैं आप लोगोंपर ही छोड़ता हूँ ।

साहबकी बात सुनकर हमारी आँखोंमें आँसू आ गये ! हम सब एकस्वरसे कहने लगे कि वास्तवमें इसके लिये हम लोग ही पूर्णतः दोषी हैं । यदि हम अपने इष्टदेवकी सेवामें इतनी अवहेलना न करते तो बात इतनी दूर तक न पहुँचती ? जो भी हो, कलसे हम अपने-अपने कर्त्तव्यके प्रति विशेष रूपसे जागरूक रहेंगे ।

मैनेजर प्रसन्न होकर बोले, 'बड़े सुखकी बात है; अपना काम आप स्वयं ही करलें तो दूसरेको कहनेका मौका ही न रहे । अब यदि आपको चैतन्य न हुआ, तो समझलें कि बड़े अनिष्टकी आशंका हो सकती है ।' उसी दिनसे तीनों धूप, पाँचों अवकाश और बड़े शृङ्गार आदिका काम बड़े सुन्दर ढंगसे चल

रहा है। सुबह दस बजते ही प्रथम भोग लग जाता है।

माधव पशुपालक की बातें सुनकर बाबाजी महाशयने प्रेम-पुलकित हो उन्हें आलिङ्गन किया और कहा, 'बड़े सुखकी बात है कि श्रीजगन्नाथदेवके लिये आप लोगोंके प्राण रोये, उनकी ओर आप लोगोंकी दृष्टि गई, सब इच्छामयकी इच्छा है। मैं नहीं समझता कि यदि यह अंग्रेज मैनेजर न आते, तो इतनी जल्दी सेवा इतने सुचारु रूपसे चल पाती। मंगलमय जब जो कुछ करते हैं, सब मंगलके लिये ही करते हैं।' इतना कह-कर बाबाजी महाशय आनन्दसे नाचने लगे। बहुत देर तक बड़े आनन्दसे नृत्य-कीर्त्तन और श्रीमन्दिरकी परिक्रमा कर वे नाम करते-करते समुद्र-स्नानके लिये चल पड़े। समुद्र-स्नानके पश्चात् हरिदास ठाकुरकी समाधि, टोटा गोपीनाथ, गंगामाता मठ, गम्भीरा आदिके दर्शन करते हुए वे झाँझपीटा मठ वापस आ गये।

राइ राजा

पुरीवासी बाबाजी महाशयको पाकर पूर्ववत् आनन्द करने लगे। आश्रमकी ठाकुर-सेवाका भार श्रीकिशोरीदासी सखीको दिया गया। वे बड़े प्रेमसे ठाकुरजीकी अष्ठकालीन सेवा करने लगीं। समय-समय पर किसी विशेष लीलाके अनुरूप ठाकुरजीकी वेशभूषाकी जाती और उस लीलाके उद्दीपक नृत्य-गीतों द्वारा रस-पुष्टि की जाती। एकदिन बाबाजी महाशयने किशोरीदासीको बुलाकर कहा, 'राइ-राजा' सजा सकती हो ? किशोरीदासीने बड़े आनन्द और उत्साहसे कहा, 'यह कौन-सी बड़ी बात है ?' ललितादासी बोलीं, 'सिर्फ राधारानीको राजा

सजा देनेसे काम न चलेगा, राजराजेश्वरीके उपयुक्त भोग आदि की व्यवस्था और तदनुरूप कीर्त्तन आदि भी करना होगा।'

बाबाजी महाशय मृदुभावसे हँसते हुए बोले, 'राइ के राजा होने पर तो भोग-रागका भार सखियों पर ही रहेगा; इसकी व्यवस्था क्या कोई और करेगा ? तुम्हारा काम, तुम करना, हम तो केवल महाप्रसादके अधिकारी हैं।' सखियाँ एक-स्वरसे बोलीं, 'अच्छा ऐसा ही होगा। महाप्रसादके समय तो आप लोगोंके दर्शन होंगे ?'

बाबाजी महाशय 'हाँ, इसके लिये मैं सदैव तैयार हूँ।' कहकर श्रीजगन्नाथ-दर्शन करने चले गये। इधर राइ-राजाकी उपयुक्त वेशभूषा तैयारकी जाने लगी। उत्सवके लिये आगामी पूर्णिमाका दिन निश्चित किया गया।

आज पूर्णिमा है, सुबहसे ही नाना प्रकारकी तैयारियां हो रही हैं। आश्रम-वासियोंके मनमें आनन्द नहीं समा रहा है। सभी लोग अपने-अपने भावके अनुसार उपयुक्त कार्यमें लगे हैं। कोई कीर्त्तनके लिये नाना प्रकारकी पद-पदावलि याद करनेमें व्यस्त है। कोई यह सोचकर आनन्दसे अधीर है कि उसे खोल बजाना है। जिन्हें नृत्य करना है, वे नाना प्रकारकी वेशभूषा की तैयारी कर रहे हैं। इधर ललितादासी आधा मन आटेकी पूरी-कचौरी, एकमन दूधका सूजीका हलुआ, पाँचसेर सूजीका मोहन भोग और उसी हिसाबसे शाक-तरकारी आदि तैयार करनेमें लगी हैं। बाबाजी महाशयने विशिष्ट-विशिष्ट लोगोंको आमंत्रित किया है। ठाकुरजीकी सेविका किशोरीदासी और उनकी सखियाँ नाना प्रकारकी साज-सज्जा बनानेमें लगी हैं।

देखते-देखते शाम हो गई। सन्ध्या आरती कर किशोरी-दासी बाबाजी महाशयसे बोलीं, 'रात दस बजेसे पहले तो दर्श

खुलेंगे नहीं, क्योंकि यथासमय अभिसार कर निकुंजमें मिलन होगा, तभी तो श्रीमती राजा बनेंगी।' बाबाजी महाशय प्रसन्न हो बोले, 'ठीक भावानुयायी सेवा कर तुम लोग धन्य हो, और मुझे भी धन्य करो। निताइचाँदके चरणोंमें मेरी सदा यही प्रार्थना है कि लोकापेक्षाके कारण तुम्हारे भावमें कमी या शिथिलता न आय।' इतना कहकर वे कीर्त्तनमें चले गये। इधर ठाकुरजीको सजाया जाने लगा। त्रिभंगदादाने अभिसार-कीर्त्तन आरम्भ किया। बाबाजी महाशय बैठकर कीर्त्तन सुन रहे हैं, जो भक्त आते जा रहे हैं, उन्हें यथायोग्य आदर-सत्कारके साथ बिठाते जा रहे हैं। रात नौ बजेके लगभग कुछ लोगोंको अपने-अपने घर लौट जानेके लिये व्यस्त देखकर बाबाजी महाशयने उनसे कहा, 'और थोड़ी देर प्रतीक्षा करें और ठाकुर-दर्शन करके जायँ।' कुछ लोग बाबाजी महाशयसे कहने लगे, 'हमें घर पर विशेष काम है; कुछ भक्त लोग आयँगे, हमारे न मिलने पर वे दुःखी होकर लौट जायँगे। बिना जाये काम नहीं चलता; और ठाकुर-दर्शनके लिये भी मन बड़ा व्याकुल है। आप ऐसी व्यवस्था कीजिये जिससे दोनों ही बातें सध जायँ।' बाबाजी महाशय किंकर्त्तव्य विमूढ़ भावसे सोचने लगे, इधर भक्तजनोंकी उत्कण्ठा है, उधर निज जनोंकी भावनाओंके प्रति आघात होता है। निज जनोंकी मनोव्यथाको दूर करनेके बहुतसे उपाय हैं, पर भक्तोंके दुःखको दूर करनेका कोई उपाय नहीं। यह सब सोचकर और भक्त-वांछा पूर्ण करनेका दृढ़ संकल्प कर वे मन्दिरके द्वार पर जाकर कहने लगे, 'एकबार दरवाजा खोल दो, फिर बन्द कर लेना।' सेवक लोग बड़ी निष्ठाके साथ ठाकुरजीको सजानेमें लगे थे। वे ऐसी अवस्थामें दरवाजा कैसे खोल सकते थे, इसलिये किसीने उत्तर न दिया। आपने बार-बार दरवाजे

पर धक्का दे-देकर खोलनेके लिये कहा, पर भाव-निष्ठ सेवकोंने दरवाजा न खोला। यह देखकर कि भक्तलोग दुःखी हो रहे हैं, बाबाजी महाशयने दरवाजे पर जोरसे लात मारी। इतने पर भी जब दरवाजा न खुला, तो वे द्रुतगतिसे दूसरे दरवाजेमें होकर मंदिरमें जानेको हुए। उसी समय पीछेसे ललितादासी बोलीं, 'बाबू भक्तजनोंकी वांछा पूर्ण करनेके लिये राइ-राजा करनेसे तो न करना अच्छा था।' बाबाजी महाशयने पीछेकी ओर मुड़कर उन्हें देखते ही बाँये हाथसे उनके गाल पर एक थप्पड़ मारा और मंदिरमें घुसकर दरवाजा खोल दिया। दर्शन कर भक्तोंको बड़ा आनन्द हुआ। पर साथी और अन्यान्य लोग बहुत दुःखी हुए। कोई-कोई उच्च स्वरसे रोने लगे। कीर्त्तन कुछ समयके लिये बन्द हो गया। बादमें बाबाजी महाशयकी विशेष चेष्टासे त्रिभंगदादाने राइ-राजा लीलाके पदोंसे कीर्त्तन आरम्भ किया। पर विशेष आनन्द न आया। जो लोग नृत्य करनेके लिये सुसज्जित बैठे थे, उनसे नृत्य करनेके लिये विशेष अनुरोध किया गया, पर उन्होंने नृत्य नहीं किया। थोड़ी ही देर में आश्रम जनशून्य-सा नीरव हो गया। ठाकुरका भोग-राग भी हो गया पर सेवकोंमें से बहुतोंने प्रसाद न पाया। बाकी लोग महाप्रसाद पाकर अपने-अपने स्थानको चले गये। बाबाजी महाशयने किंचित् महाप्रसाद पाकर विश्राम किया। दूसरे दिन सुबह बाबाजी महाशयने ललितादासी, किशोरीदासी, कुसुममंजरीदासी आदिको बुलाकर कहा, 'देखो, कल मैंने तुम्हें बहुत आघात पहुँचाया। वह भी अज्ञात भावसे नहीं, जान-बूझकर। तुम लोग सरल भावसे बताओ, इसके लिये मुझे क्या दण्ड मिलना चाहिये ? सिर्फ तुम लोगोंको ही नहीं; मैंने श्रीराधारानी और राधाकान्तको भी दुःख पहुँचाया है। मैंने क्रोधके वशीभूत

द्दो निकुञ्ज-द्वारपर पदाघात किया, इसलिये यह उचित नहीं कि मैं अब तुम सब लोगोंके साथ रहूँ। मैं आजसे नृसिंहदेवका उपासक कहकर अपना परिचय दूँगा। अपनेको राधागोविन्द या निताइ-गौरांगका दास कहना मेरे लिये अब उचित नहीं। श्रीराधाकान्तदेव जिस स्थितिमें नीचे विराजमान थे, उस स्थिति में यदि मेरी लातसे दरवाजा खुल जाता, तो सर्वनाश ही होता। यह सब देखते हुए मैं समझता हूँ कि मैं अब इस आश्रममें रहने के योग्य नहीं।' यह कहकर जैसे ही वे जानेको हुए, सखियाँ उनके पैर पकड़कर साश्रु नयन और गद्‌गद् कण्ठसे कहने लगीं, 'हमारा अपराध क्षमा कीजिये; हम समझ न सकीं और इसी-लिए आपके आदेशका उल्लघन किया। हम जब आपकी अनु-गता दासी हैं और आपकी आज्ञानुसार आपकी कृपादत्त सेवा कर रही हैं, तो हमें यह अधिकार कहाँ कि हम आपकी बातमें अच्छाई-बुराई सोचें ? हमारा कर्त्तव्य तो यही है कि बिना सोचे विचारे आपके आदेशका पालन करें। कृपा कर हमारा अपराध क्षमा कीजिये।' बाबाजी महाशय बोले, 'नहीं, तुम लोगोंने कोई गलत काम नहीं किया। तुमने ठीक ही किया। तुमने तो मेरी आज्ञाका पालन करनेके सिवा और कुछ नहीं किया। मैंने ही भ्रमवश अपनी पहली बात भूलकर तुम्हें महान् दुःख दिया। तुम लोग और बाधा न दो; जब तक मेरे अन्तःकरणकी वृत्ति परिवर्त्तित नहीं हो जाती, मैं दूसरी जगह रहूँगा। तुम्हें डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं, तुम लोगोंके व्यवहारसे मैं विशेष सुखी हूँ। तुम सब मिलकर भगवत्सेवा करो। भाग्यमें होगा तो आकर तुम्हारे साथ मैं सेवामें योगदान करूँगा।' यह कहकर वे बाहर चले गये। 'तथापि गुरुर धर्म गौरव वर्जित' इस सिद्धान्तके एकमात्र उदाहरण स्वेच्छामय स्वतंत्र प्रभुके इस

व्यवहारसे साथी लोग किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये और मृत प्राय जैसे रहने लगे। बाबाजी महाशय श्रीजगन्नाथदेवके दर्शन कर प्राणवल्लभ मठमें चले गये। साथियोंमेंसे बहुतसे उनकी खोज खबर पाकर वहाँ जा पहुँचे, पर उन्होंने प्रेमदादाको अपने पास रखकर और सबको बिदा कर दिया। उन्होंने प्रेमदादाको आदेश दिया, 'एक पाव दाल,एक पाव चावल, आधा पाव लाल-मिर्च, आधा पाव काली मिर्च, आधा पाव हल्दी आदिकी खिचडी बनाकर श्रीनृसिंहदेवको गरम-गरम भोग लगाया करो। वर्त्त-मान अवस्थामें मैं राधागोविन्द या निताइ-गौराङ्गके प्रसादका अधिकारी नहीं।' प्रेमदादा आदेशानुसार कार्य करने लगे। पंद्रह दिन इसी प्रकार चला। इधर आश्रमवासियोंने बाबाजी महा-शयके लौटकर आ जानेकी कामनासे इन पन्द्रह दिनोंमें तीन अष्टप्रहर कीर्त्तन और दो चौबीसप्रहर कीर्त्तन किये। करुणामय ने करुणा की। अन्तिम चौबीस प्रहरी कीर्त्तनके दूसरे दिन आप आश्रम लौट आये। साथी लोग फूले न समाये। पूर्ववत् आनन्द-उत्सव होने लगे। आपने सेवकोंको उपदेश दिया कि सेवा और कीर्त्तन दोनोंमें विशेष भावसे समन्वय रखें और किसी प्रकारसे रसाभास दोष न आने दें। आप भी विशेष रूपसे ऐसा करनेकी चेष्टा करने लगे।

श्रीश्रीराधाविनोदका शुभागमन

एक दिन सुबह लगभग ग्यारह बजे बाबाजी महाशय झाँझपीटा मठमें बैठे थे। उसी समय कलकत्तेसे पुलिनदादाका एक पत्र आया। उन्होंने लिखा था, 'कलकत्तेमें हम लोगोंका कोई निरपेक्ष स्थान नहीं है। रामदादा आदि जो विरक्त गुरु-भाई हैं, वे अधिकतर कलकत्तेमें ही रहते हैं; कोई निर्दिष्ट स्थान

न होनेसे उन्हें बड़ा कष्ट होता है। इसलिए हममेंसे कुछ गृहस्थ गुरुभाइयोंने परामर्श कर मिर्जापुर स्ट्रीट पर एक दुमंजिला मकान चालीस रुपये मासिक किराये पर तय कर लिया है; स्थान मठके योग्य है। सब कुछ ठीक है, सिर्फ आपके आदेशकी देर है। सब वहाँ जाकर रहेंगे और हम लोग भी अवकाश मिलने पर वहाँ जाकर कीर्त्तनादिमें योग देते रहेंगे।' पत्र पढ़कर आप मृदुभावसे हँसते हुए बोले, 'किराये पर मठ लेकर रहेंगे; वह मठ चलेगा कितने दिन? अन्तमें अशान्ति ही पैदा करेगा। अच्छा, नया-नया उत्साह है, जितने दिन चले ठीक है।' यह कहकर आपने पत्रका उत्तर दे दिया। ६६, मिर्जापुर स्ट्रीट पर स्थित उस मकानमें यथानियम मठकी स्थापना हो गई। बड़े आनन्दसे छः महीने निकल गये। कलकत्तावासी और बाहरसे आनेवाले अन्य सभी भक्तजनोंको पता चल गया कि मिर्जापुर मठमें जानेसे मालूम हो जायगा कि बाबाजी महाशय पुरीमें हैं या नहीं। जिसे जो जानना होता, वह वहाँ जाकर पता कर लेता। एक दिन शामको चार बजेके करीब एक बंगाली ब्रह्मचारीने आकर एक व्यक्तिसे पूछा, 'मिर्जापुर मठ यही है? रामदास बाबाजी आदि इसी जगह रहते हैं?' पुलिन-दादा मठमें ही थे; वे बोले, 'जी हाँ। आप कहाँसे पधारे हैं? रामदास बाबाजी आदिको किसलिये पूछ रहे हैं?'

ब्रह्मचारी—आपका क्या नाम है?

पुलिन—मेरा नाम श्रीपुलिनबिहारी मलिक है।

ब्रह्मचारी—मैं आपको ही खोज रहा था। मैं बहुत दिनों से अकेला ही नाना देश-देशान्तरोंमें घूम रहा हूँ। अधिकांश समय हरिद्वारसे इधर ही रहता हूँ। एक दिन हरिद्वार पहाड़की एक घाटीमें लेटा हुआ था; अर्द्ध निद्रित अवस्थामें था; न जाने

किसने उस समय मेरे सिरहाने बैठकर जलद गम्भीर स्वरमें कहा, 'मैं इस पहाड़ीमें पत्थरोंसे दबा पड़ा हूँ; तू मुझे निकाल कर मेरी सेवा कर। मेरे बारेमें और बातें पीछे जान जायगा।' मैंने उसी अवस्थामें पूछा, 'आप कौन हैं? आपका नाम क्या है?' उत्तरमें शब्द हुआ, 'मेरा नाम है विनोदविहारी। तू मुझे निकाल कर मेरी सेवा कर, मैं तुझे सब बता दूँगा।' मैंने हठात् आँखें खोलकर देखा तो कहीं कुछ नहीं। उठकर चारों ओर विशेष अनुसन्धान करने पर भी कुछ पता न चला। मैं सोचने लगा कि मैंने ऐसा स्वप्न तो कभी नहीं देखा। यदि यह यथार्थ ही ठाकुरजीका आदेश है, तो इस पहाड़के भीतर उनका कैसे पता पाऊँ और उनके आदेशका उल्लंघन भी कैसे करूँ? इस प्रकार सोच-विचार करते-करते रात बीत गई, सूर्यके प्रकाशमें मैं निकटवर्ती सभी स्थानोंमें घूम आया, पर कुछ पता न चला, एक स्थानको पेड़-पौधोंसे घिरा देखकर मेरे मनमें सन्देह हुआ। मैंने सोचा कि यहाँ आदमियोंका आवागमन नहीं है, अतः यहाँ खोज करनेसे कुछ न कुछ पता चल सकता है। फिर सोचा कि इतना सारा जंगल साफ करनेके बाद भी यदि निराशा ही हाथ आई तो बड़ा दुःख होगा; इसलिए जब तक कोई और आदेश प्राप्त न हो, तब तक कुछ भी न किया जाय। ऐसा संकल्प कर यथासमय महाप्रसाद पाकर मैं इसी आशासे कुछ विश्राम करने लगा कि गतरात्रिकी तरह कोई फिर आकर कुछ कहे पर किसी ने कुछ नहीं कहा। रातमें नाना प्रकारकी चिन्ताओंके कारण नींद अच्छी तरह नहीं आई। शेष रात्रिमें, अर्द्धनिद्रित अवस्था में मैंने देखा कि लगभग दस-ग्यारह वर्षका एक अत्यन्त सुन्दर कृष्णवर्ण बालक मेरे सिरहाने बैठकर मुस्कराते हुए मृदु मधुर स्वरसे कह रहा है, 'देखो भाई, तुमने जिस स्थानके बारेमें सोचा

है, मैं वहीं हूँ। मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। जितनी जल्दी हो सके, मुझे बाहर निकाल कर मेरी सेवा करो। भूख-प्यासके कारण मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है।' यह सुनकर मैं आँसुओंको रोक न सका और कातर स्वरमें बोला, 'मैं भिखारी ब्रह्मचारी हूँ, इस जंगलको कैसे साफ कराऊँगा? इस कामके लिए तो बहुत पैसा चाहिये।' यह सुनते ही वह बालक बोला, 'कोई चिन्ता नहीं, तुम सिर्फ चेष्टा करो, सब काम अपने आप हो जायगा।' सुधा-मिश्रित उस आश्वास-वाणीको सुन मेरे मन-प्राण शीतल हो गये। आँखें खोलीं, तो कहीं कुछ नहीं। प्राणों को बड़ा कष्ट हुआ। सोचने लगा कि 'हाय! मैंने आँखें खोलीं ही क्यों? यदि आँखें न खोलता, तो कुछ देर और अमृतके समान वचनोंको सुनकर कानोंको शीतल कर लेता। बलिहारी! वैसे वचन क्या फिर कभी सुन पाऊँगा?' ऐसा सोचते-सोचते दिन निकल आया। उस स्थानपर जाकर सोचने लगा कि इस जंगलको कटानेको क्या और कैसे व्यवस्था करूँ? मैं तो यहाँ बिलकुल अपरिचित हूँ। पासमें सिर्फ साढ़ेचार रुपये हैं. इनसे क्या होगा? पर उन्होंने कहा है, 'तुम उद्योग करो। फिर सब काम अपने आप हो जायगा।' इसलिये मैं जितना कर सकता हूँ, करूँ। यह सोचकर मैं बस्तीकी ओर उतर कर जानेको हुआ। उसी समय दो पुरुष और तीन महिलाएँ दो कुल्हाड़ियाँ लेकर आये। विस्मयके साथ उन लोगोंकी ओर देखते हुए मैंने कहा, 'इधर कहाँ जा रहे हो?' उनमेंसे एक व्यक्तिने कहा, 'बाबा! हम लकड़हारे हैं; लकड़ी काटने जा रहे हैं।'

मैं—लकड़ी काटकर क्या करोगे?

लकड़०—हमारा यही पेशा है; लकड़ी ले जाकर बेचते हैं, और जो पैसा मिलता है उसीसे गुजर-बसर करते हैं।

मैं—अच्छा, मैं एक जगह दिखाऊँ, वहाँकी लकड़ी काट-कर ले जाओगे ?

लकड़०—क्यों नहीं ? हमें तो लकड़ी चाहिये ।

यह सुनकर मैं बड़ा खुश हुआ और उन लोगोंको जंगल के पास ले जाकर बोला, 'पहले जंगलके भीतर जानेके लिये एक चौड़ा रास्ता निकालना पड़ेगा; पीछे क्या करना होगा, देखकर बताऊँगा ।' इसपर वे स्त्रियाँ बोलीं, बाबा ! आज इस कच्ची लकड़ीको तो बाजारमें कोई खरीदेगा नहीं, हम लोग खायँगे क्या ? मैंने उस दिनके लिये उन्हें कुछ पैसे दे-देनेको कहा, तो वे तैयार हो गईं । उन्होंने लकड़ी काटना शुरू कर दिया । शामको चार बजे मैंने उन्हें सवा रुपया दिया । वे बड़े खुश हुए और कहने लगे कि दूसरे दिन आकर सारी जगह साफ कर देंगे । दूसरे दिन वे आठ-दस आदमी मिलकर आये और ठीक तरहसे रास्ता साफ कर दिया । उन्हें साथ लेकर जंगलके भीतर गया तो देखता हूँ कि लगभग आठ हाथ जमीन साफ-सुथरी पड़ी है और दूसरी जमीनकी अपेक्षा यह जमीन करीब डेढ़ हाथ ऊँची है । मेरे मनमें दृढ़ धारणा बन गई कि ठाकुरजी इसी जगह होंगे । लकड़हारोंसे उस जगहको खोदनेके लिये कहा, तो वे बोले, 'हम लोग कुल्हाड़ीके अलावा और कोई औजार नहीं लाये हैं, कल ले आयँगे ।' मैं भी उनकी बातसे सहमत हो गया । उन सबको चार-चार आनेके हिसाबसे मजदूरी दे दी । वे चले गये, पर मैं उत्कण्ठावश और कहीं न जाकर इस उठी हुई भूमिके एक ओर लेट गया । रातको चार बजेके लगभग पूर्वपरिचित उसी सुमधुर कण्ठसे आदेश मिला, 'तुम जहाँ सोच रहे हो, मैं उसी स्थान पर हूँ । ठीक बीचमें थोड़ा खोदने पर ही मुझे देख लोगे ।' यह आश्वासन पाकर बड़ी तृप्ति हुई । दूसरे

दिन लकड़हारोंके आनेपर मैंने उन्हें निर्दिष्ट जगह दिखाई और धीरे-धीरे खोदनेको कहा। प्रायः एकहाथ गड्ढा करनेके बाद श्रीमूर्तिके दर्शन हो गये। सभी लोग श्रीमूर्ति-दर्शन कर विस्मित हो गये। काफी जगह खोदनेके बाद दो अपूर्व दारु विग्रह निकले। मूर्त्तियोंको देखकर कौन कह सकता था कि वे मिट्टीमें दबी पड़ी थीं। ऐसी उज्ज्वल ज्योतिपूर्ण मूर्त्तियाँ मैंने कभी नहीं देखी थीं। प्रभु-इच्छासे एक-एक दो-दो कर दर्शक आने लगे। सभी उन श्रीमूर्तियोंके बारेमें जानकारी प्राप्त करनेके लिये उत्सुक थे। प्रभुका आदेश न होनेके कारण मैंने किसीसे कुछ नहीं कहा, पर लकड़हारोंसे उन्हें सारी बातका पता चल गया। श्रीमूर्त्तिके साथ एक जोड़ा कोशा-कुशी[1], एक कमण्डलु, एक ताम्रकुण्ड, एक छोटा थाल और दो छोटी कटोरियाँ भी निकलीं। एक कमण्डलु मेरे पास था; इनकी सहायतासे सेवा-कार्य चलने लगा। कुछ वर्ष तक बड़े आनन्दसे सेवाकी। इच्छा-मयकी इच्छासे या मेरे किसी अपराधके कारण, एक दिन रात को आदेश प्राप्त हुआ, 'मुझे पुरी धाम पहुँचा आ।' नींद टूटने पर मैं बड़ा दुःखी होकर कहने लगा, 'हे प्रभु! मुझसे ऐसा क्या अपराध हुआ, जिसके कारण मुझे अपनी सेवासे वंचित कर दिया? यहाँसे पुरी धाम बहुत दूर है, फिर तुम्हारी यह नव-कैशोर मूर्त्ति; मैं अकेला तुम्हें कैसे ले जाऊँगा? ले भी जाऊँ तो मैं किसीको पहचानता नहीं, मेरी बातका विश्वास कर कोई तुम्हें ग्रहण करे, न करे।' ऐसे विचार मनमें बराबर आते रहे। एक दिन रातको फिर आदेश मिला, 'भाई, तुम्हारे किसी भी दोषके कारण मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा रहा। मेरी बड़ी इच्छा

[1] नावकी शकलके छोटे-बड़े दो जल-पात्र।

है कि मैं पुरीधाम जाऊँ। तू और देर न कर मुझे वहाँ झाँझ-पीटा मठमें चरणदास बाबाजीके पास छोड़ आ।' ठाकुरकी एकान्त इच्छासे मैं बड़े कष्टसे कलकत्ते आया हूँ। यहाँ दो-एक लोगोंसे चरणदास बाबाके बारेमें पूछा तो उन्होंने कहा, 'हम उन्हें जानते तो हैं, पर वे बहुत दिन एक स्थान पर नहीं रहते। उनके शिष्य पुलिनबिहारी मलिक, रामदास बाबाजी आदि मिर्जापुर स्ट्रीट पर एक मठमें रहते हैं। आप वहाँ जायँ तो पता चल जायगा कि वे इस समय पुरीमें हैं या नहीं। इतना ही नहीं, वे लोग चाहेंगे तो आपको कोई कष्ट भी न होगा।' यह सब जानकर ही मैं आपके पास आया हूँ; अब इस विषयमें आप जैसा चाहें कीजिये।

ब्रह्मचारीजीकी बात सुनकर सभी बड़े प्रसन्न हुए। पुलिनदादा ब्रह्मचारीजीसे बोले, 'आप ठाकुरजीको लेकर यहीं रहिये। मैं बाबाजी महाशयको पत्र लिखकर तीन-चार दिनमें आपके पुरी जानेकी व्यवस्था किये देता हूँ; कोई चिन्ता न करें।'

इधर कई मास पहले बाबाजी महाशय झाँझपीटा मठके पुराने पक्के कमरेमें ठाकुर-सेवाकी असुविधा देख, एक फूँसकी कुटिया तैयार कर उसमें ठाकुरजीको ले आये थे। इस घटनाके प्राय: पन्द्रह दिन पूर्व एक दिन उन्होंने लक्ष्मण महाराणा नामक एक बढ़ईको बुलाकर कहा, 'भाई, चार-पाँच दिनके भीतर एक बड़ा खुला सिंहासन तैयार कर देना है।' लक्ष्मणने कहा, 'इन ठाकुरजीके आकारके अनुसार ही बना दूँ, और बड़ा क्या करना है?' इसपर बाबाजी महाशय बोले, 'नहीं भाई, मेरे यहाँ और चार मूर्त्तियाँ आनेवाली हैं। दो बड़ी हैं, और दो उनसे कुछ छोटी। वे चारों मूर्त्तियाँ और यह ठाकुर एक साथ रह सकें,

ऐसा सिंहासन होना चाहिये।' इतना कहकर उसे आकार बताया। उसने चार-पाँच दिनमें सिंहासन तैयार कर दिया। सिंहासन पर ठाकुरजीको बिठाते समय किशोरीदासीने पूछा, 'वे ठाकुर कब तक शुभागमन करेंगे ?'

बाबाजी—दस-बारह दिनमें ही आ पहुँचेंगे।

किशोरी—कहाँसे आयँगे ?

बाबाजी—दो मूर्त्ति हरिद्वारसे, और दो कलकत्तेसे।

किशोरी—मणिमय विग्रह हैं ?

बाबाजी—चारों दारु विग्रह हैं।

किशोरी—राधागोविन्द मूर्त्तियाँ हैं या और कोई ?

बाबाजी—दो बड़ी मूर्त्तियाँ राधागोविन्द हैं; वे हरिद्वार से आ रही हैं; और दो मूर्त्तियाँ निताइगौर हैं।

किशोरी—जी, उनके स्थान बता देते तो ठीक रहता; उसके अनुसार आसनादि ठीक करने होंगे न ?

बाबाजी महाशयने श्रीमन्दिरमें जाकर स्थान निश्चित किये। सभी आश्रमवासी उत्सुकताके साथ नये ठाकुरोंकी प्रतीक्षा करने लगे। वे प्रायः बाबाजी महाशयसे कहते, 'आज भी ठाकुर नहीं आये ?' बाबाजी महाशय मृदुहास्यके साथ उत्तर देते, 'आयँगे। समय होते ही आयँगे।'

एक दिन चार बजेके करीब आपने कलकत्ता दर्जीपाड़ा के योगेनबाबूको पत्र लिखाकि वे पत्र पढ़ते ही खूब लम्बी नलकी वाली एक फरसी (हुक्का) और साथमें कलकत्तेमें उपलब्ध अच्छेसे अच्छा तमाकू भेज दें। पत्र लिखते समय ललितादासी पास ही खड़ी थी; तमाकूकी बात लिखते देखकर वे बोलीं,

'तमाकू का क्या होगा ?' बाबाजी महाशयने कहा, 'जो ठाकुर हरिद्वारसे आ रहे हैं, वे तमाकू सेवन करते हैं।' उसी वक्त पुलिनदादाका पत्र आया जिसमें ठाकुरजीका विवरण था। पत्र पढ़ते ही उन्होंने प्रसन्न हो उत्तर दिया, 'ब्रह्मचारीजीसे मेरा दण्डवत् प्रणाम कहना और ऐसी व्यवस्था करना जिससे अविलम्ब ब्रह्मचारीजी सहित ठाकुरजी यहाँ आ सकें।' पुलिनदादा ने बाबाजी महाशयका पत्र पाते ही भली भाँति ब्रह्मचारीजीके साथ ठाकुरजीको भेज दिया। दूसरे दिन नौ बजेके करीब ठाकुरजीने झाँझपीटा मठमें शुभविजय की। अति मनोमुग्धकर ठाकुरको देख सभी तृप्त हो गये। यथानियम ठाकुरजीका अभिषेकादि कर उन्हें मन्दिरमें स्थापित किया गया। ठाकुरजीका नाम हुआ श्रीराधाविनोद।' ब्रह्मचारीजीने ठाकुरका सारा वृत्तान्त भली प्रकार बाबाजी महाशयको सुनाकर अन्तमें कहा, 'विनोदबिहारी तमाकू सेवन करते आये हैं।' यह कहकर उन्होंने ठाकुरजीका हुक्का, कली और तमाकू निकाल कर बाहर रख दिये। इधर योगेनबाबूका भेजा तमाकू आदि भी आ पहुँचा। तब बाबाजी महाशय और बाकी सभी लोगोंने निश्चय किया कि नये हुक्केमें विनोदजीको तमाकू दिया जाय। बहुत कौतूहल के साथ सेवकोंने तमाकू सजाकर नली विनोदजीके हाथमें दी और मन्दिरका द्वार बन्द कर सब बाहर आ गये। कुछ देर बाद जब द्वार खोला, तो देखा कि तमाकूके धुँए और सुन्दर खुशबू से मन्दिर परिपूर्ण है। रोज इसी तरह होने लगा। ब्रह्मचारीजी कुछ दिन वहाँ रहकर श्रीविनोदबिहारीजी और बाबाजी महाशयसे बिदा ले कलकत्ते चले गये।

———

श्रीश्रीनिताइ-गौरका आगमन

एक दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशयने ललितादासीको बुलाकर कहा, 'देखो, आज श्रीश्रीराधाकान्तदेवके घर दो अतिथि आयँगे, सो अच्छी तरह भोगरागकी व्यवस्था करना। पायस, पूरी, दही, संदेश आदिका प्रबन्ध करना। सबसे पहले कुछ नाश्तेकी व्यवस्था रखना। देखना उन्हें कोई कष्ट न हो। दो फूल मालाएँ चाहिये।' इतना कहकर स्वयं मानो उनकी प्रतीक्षा में ठाकुरजीके आँगनमें घूमने लगे और बीच-बीचमें चौंक कर सदर दरवाजेकी ओर जाकर बड़ी उत्कण्ठासे देखने लगे। ललितादासी आदि आश्रमवासी बाबाजी महाशयकी ऐसी अवस्था देख विस्मित हो परस्पर कहने लगे, 'कैसा आश्चर्य! कितने भद्रपुरुष आते रहते हैं, महात्मा लोग भी पधारते रहते हैं, पर इनकी ऐसी व्यग्रता हमने पहले तो कभी नहीं देखी। और फिर, 'उन्हें कष्ट न हो, नाश्तेकी व्यवस्था हो, फूलमालाएँ हों।' ऐसा भी कभी नहीं सुना। निश्चय ही इसमें कुछ रहस्य है। यह कहकर सब अपने-अपने काममें लग गये।

करीब साढ़े नौ बजे कलकत्तेसे बाबाजी महाशयके प्रिय शिष्य हरिदासदादा दो दारु विग्रह निताइ-गौरके साथ सपरिवार आ पहुँचे। श्रीमूर्त्तियाँ आकारमें बहुत बड़ी नहीं थीं, तथापि वे बड़ी मनोमुग्धकर और माधुर्यपूर्ण थीं। उनके हास्य-भरे चमकते मुखचन्द्र देखते ही मन-प्राण द्रवित हो जाते थे। बाबाजी महाशयने दूरसे देखते ही द्रुतगतिसे जाकर दोनों मूर्त्तियोंको वक्षस्थलसे लगाया और नाचते-नाचते श्रीमन्दिरमें प्रवेश कर सिंहासनके दोनों ओर दोनोंको विराजमान कर दिया और किशोरीदासीसे भली प्रकार सेवा करनेके लिये आदेश देते

हुए सबसे पहले मिश्रीका शर्बत और बालभोग देनेको कहा। फिर जैसे ही आप बाहर निकले हरिदादाने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और उनके चरण पकड़ कर रोने लगे। इन्होंने सान्त्वना देकर पूछा, 'इस वक्त सपरिवार श्रीविग्रहोंको लेकर कैसे आना हुआ ?'

हरि०—जी, आपके चले आनेके बाद कलकत्तेमें एक मुहूर्त्त भी रहनेको मन नहीं किया। मैं अब वहाँ नहीं जाऊँगा; मुझे अङ्गीकार कीजिये। स्त्री, पुत्र, परिवार और यह ठाकुर सभी कुछ मैंने आपको अर्पित किये। अब आपकी इच्छा हो सो करें।

बाबाजी—घरबार किस पर छोड़ आये ?

हरि०—सभी कुछ तो ले आया हूँ। अब मुझे उस माया से मुग्ध कर अपने श्रीचरणोंसे अलग न कीजिये।

बाबाजी—तुमने अपनी स्त्री और माँ की अनुमतिसे ऐसा किया है ?

हरि०—मैंने अकेले ही आनेका निश्चय किया था, पर वे लोग जब मेरे साथ आनेको प्रस्तुत हुए, तो मैंने उन्हें अच्छी तरह समझा दिया कि मैं वापस नहीं जाऊँगा; निष्किञ्चन भाव से बाबाजी महाशयके साथ रहूँगा; यदि तुम लोग उसी भावसे रह सको तो चलो, नहीं तो अपना घरबार लेकर रहो। फिर भी उन लोगोंने मेरे साथ चलनेका आग्रह किया।

बाबाजी महाशयने कुछ नहीं कहा; थोड़ा मृदुभावसे हँसकर मठके पासवाले एक मकानमें हरिदादा की माँ और स्त्री के रहनेकी व्यवस्था कर दी। हरिदादा उन लोगोंका संसर्ग छोड़कर मठमें रहने लगे। अब श्रीश्रीराधाकान्तदेव आश्रमके अधीश्वर थे; श्रीश्रीराधाविनोदजी और श्रीश्रीनिताइ-गौर

अभ्यागत रूपमें रहने लगे। परमानन्दपूर्वक सेवा चलने लगी। सेवक लोग नित्य नूतन वेशभूषाकी व्यवस्था कर नाना प्रकारके कौशलसे लीला-रस आस्वादन करने और कराने लगे। मठमें निरन्तर आनन्दका स्रोत बहने लगा।

कुछ प्रसङ्ग

एक दिन सुबह बाबाजी महाशय स्नान आदि कर सदल नाम करते-करते श्रीश्रीजगन्नाथदेवके मन्दिर गये। कुछ देर मन्दिरमें संकीर्त्तन कर सबको आश्रम भेज दिया और स्वयं समुद्र तीरपर श्रीश्रीहरिदास ठाकुरके समाधि-मन्दिर चले गये। जब वे बहुत देर तक आश्रम न लौटे तो फणी, राधाविनोद और उद्धारण उनके पास जाकर आश्रम चलनेके लिये कहने लगे। वे बोले, 'मैं कुछ दिन यहीं एकान्तवास करूँगा।' फणी आदि के बहुत अनुरोध करनेपर भी जब वे न लौटे, तो वे लोग भी उनके साथ रह गये। उन लोगोंने जब झाँझपीटा मठसे महाप्रसाद भेजनेका प्रस्ताव रखा, तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया और हरिदास ठाकुरकी सेवा भिक्षा द्वारा चलाई।

इस प्रकार सात-आठ दिन बीत गये। एक दिन कौशलपूर्वक ललितादासीने मठसे श्रीगोविन्दानन्द परिव्राजकको मठमें खर्चके अभावकी बात बतानेके लिये बाबाजी महाशयके पास भेजा। उन्होंने सोचा था कि यह बात सुनते ही बाबाजी महाशय आश्रम चले आयँगे, पर ऐसा न हुआ। गोविन्दानन्दने जाकर कहा, 'मठमें कुछ भी नहीं है; श्रीश्रीराधाकान्तकी सेवा बन्द है, जलानेके लिए तेल तक नहीं है, जिससे ठाकुर-मन्दिरमें दीपक जल सके। आप कृपा कर चलिये।' बाबाजी

महाशय मृदुभावसे हँसते हुए बोले, 'क्यों, मैं श्रीश्रीराधाकान्त देवसे ज्यादा शक्तिमान तो हूँ नहीं, उनकी इच्छा तेलकी रोशनी में रहनेकी होगी, तो योगमायाकी इच्छासे उसकी व्यवस्था हो जायगी, नहीं तो वे चन्द्रमाकी रोशनीमें रहेंगे। श्रीकृष्ण-सेवाकी सामग्रीकी व्यवस्था करना श्रीयोगमायादेवीके हाथमें है। वे यदि व्यवस्था न करें, तो किसी सेवककी क्या सामर्थ्य जो कर सके? चेष्टा भी करेगा तो वह स्वतंत्रता समझी जायगी। सेव्य-सेवक और पति-पतिव्रताका व्यवहार एक-जैसा है। पतिव्रता स्त्री पतिकी मुखापेक्षी है; पति द्वारा दिये द्रव्यसे सन्तुष्ट रहती है; पतिके सुखमें सुखी रहती है, पति द्वारा उपार्जित धनसे अपनी चतुराई और बुद्धि-कौशलके साथ वह पति-सेवाके लिए आवश्यक वस्तुएँ संग्रह कर पतिको आज्ञानुवर्त्तिनी होकर रहती है; स्वतंत्र होकर कोई काम नही करती। इसी तरह सेवक प्रभुकी दी हुई वस्तुओंसे अपने अनुराग और बुद्धि-कौशलके साथ नाना प्रकारसे सेवा कर प्रभुको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा करता है। वह यदि स्वतंत्रता बरते, तो क्या प्रभु उसे सहन करेंगे? राधाकान्त ही मुझे लाये हैं, मैं तो उन्हें लाया नहीं?'

गोविन्द०—आपकी इस बातसे उपासनाका विरोध नहीं होता क्या? यदि राधाकान्त ही लानेवाले और सेवा-वस्तु संग्रह करनेवाले हुए, तो विशुद्ध माधुर्य कहाँ रहा? ब्रजेन्द्र-नन्दन कृष्णमें ऐश्वर्यकी गंध भी आ जाय, तो ब्रज-उपासना कहाँ रही? माँ यशोदा यदि यह सोचने लगें कि कृष्ण जो कुछ ला देंगे, उसीसे उनकी सेवा होगी, तो उनकी शुद्ध वात्सल्य जनित सेवाकी उत्कण्ठा, व्यग्रता या चेष्टा कहाँ रही? वह दे रहे हैं या देंगे ऐसी धारणा रखते ही तो ईश्वरत्व आ गया; मेरा पुत्र,मेरा सखा, मेरे प्राणवल्लभ········यह बुद्धि कहाँ रही?

बाबाजी—बड़ी गूढ़ बात है। बड़े मनोयोगके साथ सुनो। दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक सभी तरहसे समान नहीं रहते। प्रायः कोई दो-एक बातें ही लेकर उपमा दी जाती है। कुछ अंशोंमें पतिव्रता स्त्रीके साथ ब्रज उपासकोंकी समानता दिखाई गई है। जिस तरह पतिव्रता पति-मुखापेक्षी, पति-सुखमें सुखी, पति-परायणा और पति-आज्ञानुवर्त्तिनी होकर सेवा करती है, उसी तरह ब्रज-उपासक भी सर्वदा कृष्ण-मुखापेक्षी, कृष्ण-सुखमें सुखी, कृष्णनिष्ठ और कृष्ण-आज्ञानुवर्त्ती होकर कृष्ण-सेवा करते हैं। इसी अंशमें समानता है। कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थः प्रभुः। ब्रजलीलामें प्रभु श्रीयोगमाया हैं, उन्हींकी इच्छासे वृन्दावन-लीला होती है। योगमायाकी इच्छासे कृष्ण-सुखके लिये षड़्ऋतु वर्त्तमान रहती हैं; इच्छामात्रसे आवश्यक फल-फूलोंसे वृक्ष-लताएँ भर उठती हैं। उन्हींकी इच्छासे गायें दुग्धवती हो जाती हैं; अतएव जो कृष्ण-सेवा करते हैं, उनके प्रभु एकमात्र योग-माया हैं। प्रभुदत्त अर्थात् योगमाया-प्रदत्त वस्तु द्वारा कृष्ण-सेवा कर वे लोग प्रभु अर्थात् योगमाया की सन्तुष्टि की चेष्टा करते हैं।

गोविन्द०—ब्रजगोपियोंके कृष्ण-आज्ञानुवर्त्तिनी होनेसे मान आदिके लिये स्थान कहाँ रहता है?

बाबाजी—यह बहुत ही मधुर बात है। कृष्णाज्ञासे कृष्ण-आज्ञाका उल्लंघन! 'प्रिया जदि मान करि करये भर्त्सन; वेद-स्तुति हइते सेइ हरे मोर मन।' आदि कृष्ण-मुख वाक्योंसे स्पष्ट है कि कृष्णको सुख होगा यह जानकर ही गोपियाँ मान करती हैं।

गोविन्द०—आपने कहा, राधाकान्त मुझे लाये हैं; सो कैसे?

बाबाजी—यथार्थ बात तो यही है। यदि कृष्ण मन-प्राण हरण कर आकर्षित न करें, तो क्या कोई संसार-शृङ्खला तोड़ सकता है, या अविद्या-बन्धनसे मुक्त हो सकता है? वे केश पकड़ कर ठीक दासकी तरह आकर्षित कर ले आये हैं, तभी मैं आया हूँ। आज यहाँ मैं अपनी इच्छासे आया हूँ, वे जब आकर्षित करेंगे तो जाऊँगा। तुम मठ जाकर कह दो।

इस तरह उन्होंने गोविन्दानन्दको बिदा किया। दूसरे दिन एकादशी थी; निर्जल उपवास करेंगे। उन्होंने फणी, राधाविनोद और उद्धारणको अपने तीन ओर खड़ा कर 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।' नाम करनेके लिये कहा और स्वयं संख्या रखने लगे। दस बजेके करीब एक व्यक्ति श्रीजगन्नाथदेवका कुछ महाप्रसाद लेकर आया; बाबाजी महाशयने साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर महाप्रसाद सिरसे लगाया। इसी अवस्थामें सारा दिन और सारी रात कट गई, पर उन्हें कुछ ध्यान नहीं। दूसरे दिन सुबह सात बजे महाप्रसादका एक कण ग्रहण कर आप समुद्र-स्नान करने चले गये। इस प्रकार हरिदास ठाकुरके समाधि-मन्दिरमें पन्द्रह दिन रहनेके बाद आप सोलहवें दिन आश्रम लौट आये।

एक दिन बाबाजी महाशय झाँझपीटा मठके पंगत घरमें बैठे हुए थे; हरिदादा जाकर बोले, 'मुझे दया कर भेक दे दीजिये। मेरी अब इस प्रकार धोती-चादर पहननेकी इच्छा नहीं होती।'

बाबाजी—क्यों, तुम्हारा भेक तो हो गया। सुना है कि तुम लोगोंमें विवाहसे पहले भेक न हो तो विवाह ही शुद्ध नहीं होता।

हरि०—वह भेक कोई भेक नहीं, इस भेकका अर्थ है"

वैराग्य धर्माश्रय; और उस भेकका अर्थ है....संसारमें प्रवेश। मुझे और भुलावा देनेसे काम नहीं चलेगा। भेक देना ही होगा।

बाबाजी—क्या वास्तवमें अब और संसारधर्म पालन करनेकी तुम्हारी इच्छा नहीं है ?

हरि०—मैं संसारमें प्रवेश न करूँगा। आप कृपा कर मेरा माया-बन्धन काट दीजिये।

इतना कहकर वे उनके चरण पकड़ कर रोने लगे। उन्होंने उन्हें आलिङ्गन-दान कर कहा, 'देखो, यदि यथार्थ ही वेश-परिवर्त्तन करनेकी इच्छा हो तो उधरका जो कुछ भी खिंचाव है उससे पहले मुक्ति पालो, क्योंकि वैराग्य लेकर फिर राज-दरबारमें जाना बड़ा गलत है।'

हरि०—उधरका खिंचाव अब कुछ भी नहीं है, कलकत्ता में सिर्फ एक घर है। उसे बेच देनेसे सब काम पूरा हो जायगा।

बाबाजी—तो इस कामको करनेके बाद ही भेक लेना ठीक होगा।

हरिदादाने और कुछ न कहा। वे कलकत्ते जाकर सात दिनके भीतर घर बेचकर श्रीधामपुरी आ गये। घर बेचकर जो रुपये प्राप्त हुए, उन्हें बाबाजी महाशयके आगे रखा तो वे विस्मित होकर बोले, 'इतनेमें ही घर बेच आये ?'

हरि०—जी, आपकी बड़ी कृपा है। जाते ही एक ग्राहक मिल गया; उसने जितना कहा उतनेमें ही रजिस्ट्री कर दी।

बाबाजी महाशय साश्रुगद्गद् कण्ठसे कहने लगे, 'बलिहारी, नवानुरागका कैसा प्रबल प्रताप है ! निताइचाँद यदि जीवकी यह अवस्था सदा रखते, तो न जाने कितने-कितने बड़े कार्य होते। अच्छा, ये रुपये अपनी माँको न देकर यहाँ क्यों लाये ?'

हरि०—मैं आपके अतिरिक्त और किसीको नहीं जानता। मेरी नामकी जो कुछ वस्तु मेरे पास है, वह सब आपके श्रीचरणोंमें समर्पित है। मैं जीवन भरके लिये आपका आश्रित दास हूँ। मुझे और मायाके प्रलोभनमें फेंक कर प्रतारित न कीजियेगा।

बाबाजी महाशय और कुछ न कह सके। ललितादासी को आदेश किया, 'लो, यह रुपये लेकर कमरेमें रखो, पर साव-धान! जब तक मैं न कहूँ, एक पैसा भी इसमेंसे खर्च न हो।'

पाँच-छह दिन बीत गये। एक दिन सुबह हरिदादा भेक लेनेके लिये बड़ी जिद करने लगे। उन्होंने किसी तरह बाबाजी महाशयके पैर ही न छोड़े। आँसुओंसे उनका मुँह और वक्ष भीग गया। बाबाजी महाशयने यह देखकर कि वे किसी प्रकार भी नहीं मानते तो उन्हें डोर-कौपीन पहनाकर नाम करते-करते कुछ घरोंसे भिक्षा कर लानेका आदेश किया। हरिदादा प्रेमानन्द में गद्‌गद् कण्ठसे मन-प्राण मत्त कर देनेवाला 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम करते हुए भिक्षाके लिए निकले। आहा, कैसी अपूर्व शोभा! कंधे पर भिक्षाकी झोली, हाथोंमें करताल, और आँखोंमें निरन्तर अश्रुधार! आँसुओंसे वक्षस्थल भीगा जा रहा है। जो कोई भी उनकी इस अवस्थाको देखता है, वहीं प्रेमावेशमें 'निताइचाँदकी कृपा की जय हो' कहकर रो उठता है। यथासमय वे भिक्षा लेकर आश्रम को लौट आए। भिक्षामें प्राप्त सामग्रीके साथ सभी वासना-कामनाएँ श्रीगुरुदेवके श्रीचरणोंमें समर्पितकर वे गुरुदेवकी आज्ञा की प्रतीक्षामें वहाँ खड़े रहे। बाबाजी महाशय बोले, 'देखो सावधान, भेककी मर्यादा रखनी होगी। बाहरी सजावट ही भेक नहीं है। गोस्वामीजनोंने आचरण कर दिखाया है कि पहले

वैराग्य, फिर वेश। पहले वस्तु भीतर प्रकट होती है, पीछे बाहर दिखाई देती है।"

हरि०—भेकके लिये क्या-क्या विधि-निषेध हैं बता दीजिए।

बाबाजी—आश्रयकी बात है। आश्रय कई प्रकारके होते हैं; उनमेंसे कई अवान्तर हैं, कई बहिरंग हैं, और कई प्रधान या अवश्य पालनीय हैं। प्रधान आश्रय पाँच प्रकारके हैं—नामाश्रय, गुरुपदाश्रय, मंत्राश्रय, भावाश्रय एवं वेशाश्रय—ये पाँच अवश्य पालनीय हैं। इनमें वेशाश्रय सबके बाद है, अर्थात् जब तक पहले चार आश्रय ग्रहण नहीं किए जाते, तब तक वेशाश्रय मंगलप्रद नहीं हो सकता। वेश-आश्रयके बाद जहाँ-जहाँ वैपरीत्य देखा जाय, वहीं समझना चाहिए कि बाकी चार आश्रयों में कहीं कोई गोलमाल है। जो लोग सच्चे हृदयसे इन पाँच आश्रयोंको ग्रहण करते हैं, उनका कभी पतन नहीं होता।

हरि०—अवान्तर आश्रय क्या है?

बाबाजी—वे कई प्रकारके हैं। कुछके बारेमें बताता हूँ। इन पाँच आश्रयोंके ग्रहण करनेपर रूपाश्रय, गुणाश्रय, धामाश्रय, लीलाश्रय आदि अवान्तर भाव स्वय ही आ जाते हैं। जैसे 'कृष्ण' नामका आश्रय ग्रहण करनेसे कालारूप, भक्तानुग्रह, असुरनिग्रह आदि गुण और द्वारका, मथुरा, वृन्दावन आदि धामोंका आश्रय अपने आप हो जाता है। इसके बाद गुरुपदाश्रय और मंत्राश्रय होनेपर किसी निर्दिष्ट धाम और रूपका आश्रय विशेष भावसे हो जाता है। फिर, भावाश्रय होनेपर बाल्य, पौगण्ड, कैशोर आदि वयसोंका आश्रय और उनसे सम्बन्धित अवस्थाओंवाले विषयोंके आश्रय स्वतः हो जाते हैं; उसके लिये अलगसे कुछ नहीं करना पड़ता। वेश-आश्रयके अन्तर्गत ये बातें

आती हैं; ग्राम्य-कथा न कहना, न सुनना, विषय-लिप्त न होना; अर्थ-संचय न करना; काम-क्रोधका दास होकर इन्द्रियोंकी सन्तुष्टि करनेकी इच्छासे महिलाओंको ओर न देखना और न उनसे वार्त्तालाप करना। अपने अभीष्ट रसको छोड़कर अन्य रसोंके प्रति न तो द्वेष बुद्धि रखना और न उनकी समालोचना करना। 'तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः॥' सदा इस श्लोकका मर्मार्थ हृदयंगम कर उसके अनुसार आचरण करनेकी चेष्टा करना। स्त्री-संग अथवा स्त्रीके संगियोंका संग; बाहरी आडम्बर; अनावश्यक बातचीत; मिथ्या व्यवहार; परचर्चा; परनिन्दा; द्वेषभाव; हिंसा; द्रोह; परछिद्रान्वेषण; अतिरिक्त भोजन; आसक्ति; विलासिता; अनिवेदित भोजन आदि बातोंका विशेष यत्नके साथ परित्याग करना। श्रवण, कीर्त्तनादि नवधा भक्तिका पालन करना। और क्या बताऊँ? आचरण करते रहो; जब जो आवश्यकता होगी, मंगलमय निताइचाँद हृदयमें स्फूर्त्ति करा देंगे।

हरिदादा हाथ जोड़कर बाबाजी महाशयकी बातें सुन रहे थे; आँसुओंसे वक्षस्थल भीग रहा था। वे गद्गद कण्ठसे बोले, 'गुरुदेव! मेरी कोई सामर्थ्य नहीं कि इन सब बातोंका आचरण कर सकूँ, एकमात्र आपकी कृपा ही मेरा सम्बल है।' यह कहते हुए उन्होंने बाबाजी महाशयको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर उनके श्रीचरण पकड़ लिये। उन्होंने उन्हें उठा कर आलिङ्गन किया, साथ ही मुट्ठी भिक्षा करनेका आदेश दिया।

एक दिन चार बजेके करीब श्रीयुत जगदीश बाबूके घर से उनका नौकर दीनबन्धु दास आकर बाबाजी महाशयसे बोला,

'बाबूजीके यहाँ एक लोहेका सन्दूक है, यदि आश्रममें आवश्यकता हो तो उसे मँगा लीजिए, नहीं तो उसे बेच दें।' आपने कहा, 'देखो भाई! जगदीशबाबू और प्यारीबाबूसे कहना कि यहाँ भिक्षासे सारा काम चलता है; सन्दूकमें रखने लायक कोई चीज नहीं दीखती। फिर, उनके इतने पैसे बेकार क्यों जायँ, उनसे कहो कि वे उसे बेच दें।' दीनबन्धुने यह बात जगदीश बाबू और उनके भाई प्यारीबाबूसे कही। दोनोंने जाने क्या सोचकर दीनबन्धुसे कहा, 'देख दीना, चार आदमी बुला ला और सन्दूक झाँझपीटा मठमें पहुँचा आ।' दीनबन्धुने कहा, 'बाबाजी महाशयने तो निषेध किया है।' प्यारीबाबू बोले, 'तुम कहना कि सन्दूक आपको नहीं, राधाकान्तदेवको दिया है।' उसने सन्दूक मठमें पहुँचा दिया और बाबाजी महाशयसे सारी बात कह दी। बाबाजी महाशय मृदुभावसे हँसते हुए बोले, 'ठीक है। राधाकान्तदेव बड़े आदमी बनना चाहते हैं तो बनें, मुझे क्या आपत्ति?' और झाँझपीटा मठसे लगे दोमंजिले मकानके नीचेवाले कमरेमें सन्दूक रखवा दिया।

कई दिन बाद ललितादासीने पूछा, 'लोहेके सन्दूकमें क्या रखा जायगा?' आप बोले, 'जिन्होंने मँगाया है वे ही जानें।' इतना कहकर आप श्रीजगन्नाथ-दर्शन करने चले गये। दर्शन करते समय यकायक जगन्नाथदेवकी कण्ठमाला फिसलकर रत्नवेदी पर आ गिरी। सेवकने उसी समय वह माला उनके गलेमें पहना दी। आप साश्रुनयन गद्गद कण्ठसे बोले, 'अच्छा प्रभु! तुम्हारी जो इच्छा।' और साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणामकर लक्ष्मीदेवीके दर्शनार्थ चले गये। लक्ष्मीदेवीके जगमोहन और मन्दिरमें बहुत-सी कौड़ियोंकी पिटारियाँ झूलती रहती हैं। पता नहीं क्यों, इनमेंसे एक पिटारी पर बाबाजी महाशयका मन

चला गया। एक सेवकसे बोले, 'भाई, ये पिटारी मुझे दे दोगे ?'

सेवक—बाबा, आज मेरी सेवा नहीं है ? जिसकी बारी है, वही बता सकता है। ये पिटारियाँ, लक्ष्मीपूर्णिमाको छोड़ और किसी दिन नहीं खोली जातीं। यह जो धानका गुच्छा है, यह ठाकुरजीके नवान्नवाले दिन रखा जाता है। दूसरे वर्ष नवान्नके समय पुराने गुच्छोंको उतारकर राजाकी नहरमें डाल दिया जाता है और सेवकोंके घरोंमें बाँट दिया जाता है। हम लोगोंमें पहलेसे ऐसी प्रथा चली आ रही है। मैं कैसे एक नया नियम चला दूँ ?

यह सुनकर बाबाजी महाशय और कुछ कहे बिना लक्ष्मीदेवीको दण्डवत् प्रणामकर श्रीमन्महाप्रभुके पाद-पद्म दर्शन करने चले गये। पाँच मिनटके भीतर ही उपर्युक्त सेवक विशेष व्यग्रताके साथ बाबाजी महाशयके पास आकर प्रेमगद्गद् कण्ठसे बोला, 'बाबा, आप भाग्यवान महापुरुष हैं, आप जो चाह रहे थे, वह लक्ष्मीदेवीने कृपाकर दिया है, चलिये ले आइये।' यह सुनते ही वे जाने कैसे एक विचित्र भावसे कुछ देर नीरव खड़े रहे। फिर साश्रुनयन गद्गद् कण्ठसे बोले, 'चलो भाई, लक्ष्मीदेवीका कृपाचिह्न देखकर कृतार्थ होऊँ।' द्रुतगतिसे लक्ष्मीदेवीके जगमोहनमें पहुँचकर देखते है कि जिस धानके गुच्छे और पिटारीको लेनेका आपका मन हुआ था, वे दोनों ही अविकृत भावसे लक्ष्मीदेवीके आगे पड़े हैं। यह देखकर उन्होंने विस्मित भावसे सेवकसे सारा वृत्तान्त पूछा, तो वह बोला, 'जैसे ही आप बातचीत कर आंगनसे बाहर निकले, यह गुच्छा और पिटारी हिलने लगे। मैंने पहले तो सोचा कि हवासे ऐसा हो रहा होगा, पर उसी समय यह बात ध्यानमें आई कि यदि हवा

से ऐसा होता, तो यही दो क्यों हिलते ? ऐसा सोच ही रहा था कि दोनों टूटकर नीचे गिर पड़े। आश्चर्य यह कि इतने ऊँचेसे गिरने पर भी न तो ये चीजें टूटीं, न बिखरीं; ऐसा लगा कि जैसे किसीने हाथसे उतार कर रख दिया हो। इसीसे मेरे और दूसरे लोगोंके मनमें दृढ़ निश्चय हो गया कि बाबाजी महाशयने ये चीजें माँगी थीं; हमने मना कर दिया, पर लक्ष्मीदेवीने स्वयं उन्हें दे दीं। इसीलिये आपको बुलाने गया था। लक्ष्मीदेवीकी कृपादत्त वस्तु ग्रहण कीजिये।' इतना कहकर उसने दोनों चीजें बाबाजी महाशयको चादरमें बाँध दीं। वे ठीक बच्चेकी तरह जोर-जोरसे रोते हुए बोले, 'हा निताइचाँद! तुम्हारा खेल तुम्हीं जानते हो। कितनी तरहसे कितनी लीलाएँ खेलते हो, मैं क्षुद्र जीव क्या समझूँ ? जो हो, तुम्हारी कृपाकी जय हो।' यह कहकर वे द्रुतगतिसे आश्रम लौट आये। श्रीजगन्नाथदेवकी कृपादत्त माला और लक्ष्मीदेवीकी कृपादत्त वस्तुएँ ललितादासी को देकर उन्हें पूर्वोक्त सन्दूकमें रखनेके लिये कहा और आदेश दिया कि उस जगह रोज सन्ध्याके समय एक घीका दीपक जलाया करें।

एक दिन सन्ध्या समय आपने किशोरीदासीको बुलाकर पूछा, 'आज रातको बासर शैय्या और कल सुबह मान-कीर्त्तन के अनुरूप ठाकुरका वेश कर सकोगी ?'

किशोरी०—आपकी कृपा हो तो यह कौन-सी बड़ी बात है ? आदेश दीजिये कि किस वक्त क्या करना होगा।

बाबाजी—मैं क्या बताऊँ ? कीर्त्तनके भावोंके अनुरूप काम करो; दूसरे शब्दोंमें, राधारानीकी एक प्रतिनिधिके रूप में काम करना है।

किशोरी०—मेरे मनमें एक वासना जागी है। आदेश दें तो उसके अनुसार कार्य करूँ।

बाबाजी—बताओ, क्या मनोवासना है।

किशोरी०—मेरी इच्छा है कि आप राधारानीकी प्रतिनिधि स्वरूपमें रहें; हम लोग आपके आनुगत्यमें सब काम करें।

किशोरीदासीका सभीने बड़े आनन्दसे समर्थन किया, अत: बाबाजी महाशय कोई आपत्ति न कर सके।

कुसुमदासीने गोपीचन्दन द्वारा उनका नाना प्रकारसे शृङ्गार किया; नीली साड़ी पहनाई, तुलसी-काष्ठकी माला और फूलमालासे नाना प्रकारके अलंकार बनाकर अच्छी तरह सजा दिया। अति अपूर्व शोभा! बाहरके लोगोंकी बात तो दूर रही, उनके साथी भी उन्हें मुशकिलसे पहचान पाते थे। हाव-भाव कटाक्ष सभी बदल गये। सब कुछ नवीन, सभी मनोमुग्धकर। जो भी लोग वहाँ थे, सबने स्त्रीवेश धारण किया। हरिदादाको कीर्त्तन करनेका आदेश हुआ। वे प्रथम संकेतसे बासर[1] शय्या तकका कीर्त्तन करने लगे। इधर पद-पदावलियोंके भावोंके अनुरूप अभिनय होने लगा। संकीर्त्तन बाबाजी महाशयके शयन-कक्षमें हो रहा था। उन्होंने किशोरीदासीको आदेश दिया, 'तुम कीर्त्तनके भावोंके अनुरूप राधारानीके आचरणीय कार्योंका श्रीमन्दिरमें आचरण करो। यहाँ कीर्त्तनीया साधकजनोंके उद्दीपनके लिये एक शय्याकी रचना करो।' यह कहकर अपने बिस्तरकी चादर आदि बदलकर उसी प्रकार स्वयं भी आचरण करने लगे।

---

[1]सुहाग रात।

आनन्दकी अवधि नहीं। बाबाजी महाशय एक-एक पद में आखर देते हैं, और रसका स्रोत फूट पड़ता है। सभी उपस्थित लोग भाव-निमग्न हैं। कौन कह सकता है कि लीला अप्रकट है ? सभी तो वर्त्तमान है। श्रीमती उत्कण्ठित भावसे बिछे हुए बिस्तरको फिरसे बिछाती हैं; सुवासित ताम्बूलको फिरसे कर्पूर-वासित करती हैं—इन विषयोंके पद-कीर्त्तनके शुरू होते ही, सब लोग उच्चस्वरसे रो-रोकर कीर्त्तन करने लगे। इस प्रकार महानन्दमें सारी रात कीर्त्तन हुआ। किसी को बाह्यस्मृति नहीं। श्रीमतीके कहनेपर 'त्यज सखी कानु आगमन आश। जामिनी शेष भेल सबहुँ नैराश' सबको ज्ञान हुआ कि रात्रि शेष हो गई, सभी भाव-विभोर थे; निद्रा किसी के पास फटकी तक नहीं। सुबह होते ही श्रीश्रीराधाकान्तदेवके आगे खण्डिता गान शुरू हुआ। पदानुसार ठाकुरकी वेश-भूषाकी गई। ठाकुर-मन्दिरका द्वार खोला गया। वह एक अपूर्व दृश्य था ! नागर खण्डित वेशमें दूर खड़े हुए हैं, पासमें कोई नहीं। श्रीमती मानिनी हैं। नागरको पीछे कर कम्पित कलेवर सखी-मंजरियाँ नीरव खड़ी हैं। हरिदादाने वृन्दादेवीके भावावेशमें पहले खण्डिता, फिर दुर्जय मान, और फिर कलहान्तरिता गान किया। उनके आखरोंकी छटा और भाव-भङ्गीसे ठीक वृन्दादेवी जैसा भाव प्रकट होने लगा। सुबहसे ही गान आरम्भ हुआ है, अतः बाहरके श्रोता बड़ी संख्यामें इकट्ठा हो गये हैं। हरिदादाका गान सुनकर सभी मुग्ध हैं। सभी नीरव हैं और भावविभोर हो गान सुन रहे हैं। श्रीमती दुर्जय मानमें डूबी हैं, श्रीकृष्ण मानभंजन करनेकी चेष्टामें लगे हैं, और सखी-मंजरियाँ उन्हीं भावोंको लेकर आविष्ट हैं; सेवा-कार्य कौन करे ? इसलिये ठाकुरजीकी रसोई आदिके काम बन्द हैं, किसीका इधर ध्यान ही नहीं।

नौ बजेके करीब श्रीकृष्ण श्रीमतीकी प्रतारणाके फल-स्वरूप श्रीकुण्डके जलमें प्राण-त्यागनेका निश्चय कर कुण्डके किनारे जा पहुँचे। इधर श्रीमतीके हृदयमें कलहान्तरिता भाव जाग्रत हुआ। वे श्रीकृष्णके लिये उत्कण्ठिता और अपने व्यवहार के लिये बड़ी अनुतप्त हो उठीं। कोई-कोई सखियाँ उन्हें उलाहना देने लगीं, कोई तरह-तरहसे सान्त्वना देने लगीं। अन्तमें उन्होंने श्रीकृष्ण-विरहमें प्राण त्यागनेका संकल्प कर लिया। उसी समय दूतियाँ श्रीकृष्णके पास गईं और उनसे विदेशिनी रूपसे मिलीं। इस विषयको लेकर गान चल रहा था। किसीको बाह्यज्ञान नहीं था। ग्यारह बज चुके थे, इसलिये इच्छा न होते हुए भी समाप्त किया गया। तब सबको होश आया। कुछ लोगोंको साथ लेकर ललितादासीने बड़ी कुशलतासे रसोई तैयार कर थोड़े ही समयमें ठाकुरजीके भोगकी व्यवस्था कर दी। सखी वेशधारी कुछ लोगोंको छोड़कर बाकी सभीने वेश परिवर्त्तन कर लिये, पर हरिदादाने नहीं किया। वेश-परिवर्त्तन की बात कोई कहता तो सुनते ही रो पड़ते।

बाबाजी महाशयने यथासमय प्रसादादि ग्रहणकर श्रीजगन्नाथ-दर्शन किये और श्रीराधारमणकुञ्जमें जाकर थोड़ा विश्राम किया। हरिदादा बाबाजी महाशयके दर्शनोंके लिये इधर-उधर दौड़-भाग करते श्रीराधारमणकुञ्ज जा पहुँचे। वहाँ उन्हें देखते ही दौड़कर उनके श्रीचरण पकड़ लिये और व्याकुल भावसे रोने लगे। कोई नहीं जानता कि वे क्यों रो रहे हैं। बाबाजी महाशयने पूछा, 'हरिदास क्यों रोते हो, क्या बात है?' हरिदादा और भी व्याकुल हो उठे। उनके हृदयमें नवीन अनुराग था, नवीन भावोंका संचार था, इसलिये चित्तवृत्तियाँ एकदम उद्वेलित हो उठी थीं। किसीकी ताकत न थी जो उन्हें

स्थिर कर सकता। कुछ देर बाद अन्तर्यामी बाबाजी महाशयने न जाने क्या सोचा। वे मृदुभावसे मुसकाते हुए बोले, 'प्राणों में प्रकृत भावका संचार हो तो ठीक है, पर बड़ा गुरुतर काम है। देखना, कहीं कपटता स्पर्श न करे। किसीकी देखादेखी किसी कार्यको न कर बैठना। मन-प्राणको सदैव अवरोधमें न रखनेसे भावका अभाव हो जाता है। श्रीनिताइचाँदकी कृपासे जिसके हृदयमें जिस भावका विकास हो, उसे सदा उसी भावको स्थायी करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। नाना प्रकारके संचारी भावोंके वशीभूत होनेसे भावनिष्ठा या रसनिष्ठा जाती रहती है। अतः इस विषयमें विशेष सतर्कताकी आवश्यकता है।' हरिदादा गद्गद् कण्ठसे बोले, 'प्रभु, आप अन्तर्यामी हैं। सभी कुछ जानते हैं। मैं और क्या कहूँ ? मेरा कर्त्तव्याकर्त्तव्य सब आप पर निर्भर है। मैं किसी प्रकार भी यह वेश नहीं बदल पा रहा हूँ। जब भी परिवर्त्तनकी बात सोचता हूँ मुझे हृत्कम्प होने लगता है। मैं क्या करूँ, आदेश कीजिये।'

बाबाजी—मैं पहले ही कह चुका हूँ कि भाव या वेश किसीके आदेश-उपदेशसे नहीं चलता; प्रभु कृपा कर जैसी हृदय में स्फूर्ति करें, उसीके अनुसार आचरण करो।

हरि०—आपने कृपाकर जो कुछ दिया है, वह मेरे लिये बिलकुल अभावनीय है। उस कृपादत्त वस्तुकी अनुकूलताके लिए मुझे क्या-क्या करना चाहिए, आदेश कर इस अङ्गीकार किये जीवको मनोवासना पूरी कीजिए।

बाबाजी—जो लोग तुम्हारे आदर्श हैं, उनके आनुगत्य में अस्वतंत्र भावसे उनके मार्गका अनुसरण करो। आनुगत्य ही भक्तिपथका जीवन है। बिना आनुगत्यके चाहे कितना भजन किया जाय, ब्रजमें कृष्ण-प्राप्ति दुर्लभ है। इस भक्तिका नाम है

रागानुगा या भावानुगा भक्ति। किसी प्रकारकी स्वतंत्रता आते ही भक्तिदेवी प्रस्थान कर जाती है।

हरि०—सखियोंके अतिरिक्त अन्यान्य गुरु भाइयोंके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए ?

बाबाजी—स्वयं में गृहस्थ गोपजाति बुद्धि रखकर प्राणिमात्रको अपनेसे श्रेष्ठ मानो। पुरुष-अभिमानी जीवके साथ बैठकर भोजन, शयन, और निर्जनमें रहन-सहन आदि बहुत अनिष्टकारी हैं। अपने रस और भावके विपरीत आश्रय लेनेवाले लोगोंका सङ्ग अनिष्टकारी है। स्वरूप प्रकृतिके साथ निर्जन वास करना सर्वथा त्याज्य है। ग्राम्य सम्बन्ध, अर्थात् पहले सम्बन्धीजनोंके साथ कोई सम्पर्क रखना, अनिष्टकारी है।

इस प्रकार नाना प्रकारके उपदेश देकर आपने उन्हें झाँझपीटा मठ भेज दिया। कोई घण्टाभर बाद वे स्वयं वहाँ आ गये। ललितादासी आदिने पूछा, 'इस नई सखीका क्या नाम हुआ ?'

बाबाजी महाशय बोले, 'तुम सब उसके भाव और स्वभावके अनुरूप कोई नाम निश्चित कर दो।'

ललिता०—हम क्या समझें ? आपको जो नाम अच्छा लगे, सो रखिये।

बाबाजी—कल इसका जो सुन्दर कीर्त्तन सुना उससे पता चला कि यह दौत्य कार्यमें विशेष निपुण है, अतः इसका नाम वृन्दादासी रखना ठीक है।

ललिता०—यह तो देवीका नाम है ! ऐसा नाम रखिये जिससे यह हमारे वर्गमें ही रहे।

बाबाजी—किसीका स्वभाव चाहे जैसा हो, तुम उसे

अपने वर्गमें ही रखना चाहती हो ! वहाँ भी बिना वकालत किये तुम्हारा काम नहीं चलता !

ललितादासी लज्जित हो गईं; वे और कुछ न बोलीं। बाबाजी महाशय बोले, 'यह निश्चय समझो; चाहे जिस भावसे भजन करो, वहाँ जाकर रस-तारतम्य होते ही दूसरे रस या स्थानमें जाना पड़ेगा। ललितादेवी घूसखोर नहीं है। वे जिसकी जैसी भाव-योग्यता देखती हैं उसे उसी भाव, उसी यूथ, और उसी सेवामें नियुक्त करती हैं। वहाँ अनुरोधके लिये जगह नहीं, सब योग्यताका खेल है।' इस प्रकार उपदेश देकर उन्होंने सभी सखियोंको बुलाकर कहा, 'आजसे तुम सब रोज रूप, अभिसार और मिलनके पद गाओगी, यही तुम्हारी आस्वादनीय वस्तु है। देखना, व्यवसाय बदलनेकी चेष्टा न करना, नहीं तो वंचित रहोगी।' तभीसे आपके आदेशानुसार रूप, अभिसार और मिलनके पद गाये जाने लगे।

सदल श्रीधाम वृन्दावन-यात्रा

देखते-देखते श्रीजगन्नाथदेवकी स्नान-यात्रा आ पहुँची। बाबाजी महाशयने पूर्ववत् बड़े आनन्दके साथ स्नान-यात्रा, गुण्डिचा-मार्जन, रथयात्रा आदि उत्सव किये।

एक दिन संकीर्त्तनमें बहुतसे लोग इकट्ठा हो गये; संकीर्त्तनके बीचमें ही वे श्रीधाम वृन्दावन जानेके लिये सबसे बिदा माँगने लग गये। बिदाईकी भङ्गी कुछ और ही तरह की थी, अतः भक्तजनोंके प्राणोंको बड़ा आघात पहुँचा। सब बच्चोंकी तरह ज़ोर-जोरसे रोने लगे। संकीर्त्तन खतम होनेपर सब बाबाजी महाशयके चरण पकड़कर वृन्दावन-यात्रा स्थगित करने

के लिये उनसे व्याकुल भावसे अनुरोध करने लगे। इसलिए उस बार श्रीधाम बृन्दावन जाना न हो सका। कुछ दिन बाद उन्होंने पुरीवासी भक्तजनोंको समझा बुझाकर, और शीघ्र लौटनेका आश्वासन देकर तथा ललितादासी आदि सखियोंको एवं उनकी सहायताके लिए चार-पाँच अन्य लोगोंको आश्रमके सेवा-कार्यके लिए नियुक्त कर, सदल वृन्दावन-यात्राके उद्देश्यसे कलकत्तेके लिये प्रस्थान किया। गाड़ी यथासमय हावड़ा पहुँची। साथियोंने पूछा कि किसके घर ठहरना होगा, तो बोले 'निताइकी इच्छासे कलकत्तामें सिर्फ दो दिन रहेंगे। शहरके भीतर जाकर फिर निकलना मुश्किल होगा, अतः बराहनगर कामाख्यादासके घर चलेंगे।' गाड़ी कर सभी लोग बराहनगर पहुँचे। कामाख्यादास बाबाजी साथियों सहित इन्हें पाकर बड़े आनन्दसे सेवा करने लगे।

सिउड़ीमें एक मास

दो दिन बीते। तीसरे दिन सुबह मृदुमधुर वचनोंसे कामाख्यादास बाबाजीसे तथा अन्यान्य भक्तजनोंसे बिदा लेकर बाबाजी महाशय सिउड़ीके लिए रवाना हुए। यथासमय सिउड़ी पहुँचकर वहाँके जमींदार श्रीयुत राखालदास चौधरीके घर ठहरे। जमींदार साहबकी बहन श्रीमती कुसुमकुमारीदासीके विशेष आग्रह पर नवद्वीप-निवासी पण्डित प्रवर श्रीयुत रामदास बाबाजी महाशयको एक मास श्रीचैतन्यचरितामृतमें सनातन-शिक्षाका पाठ करनेके लिए नियुक्त किया गया।

एक दिन पण्डित महाशय नाम-माहात्म्यकी व्याख्या कर रहे थे। उन्होंने कुछ बातें ऐसी कहीं जिनमें नामकी अपेक्षा

कर्मकी प्रधानता सिद्ध करनेका प्रयास दीख पड़ता था। उन्हें सुनकर बाबाजी महाशय चुपकेसे उठकर चले गये और एक बगीचेमें जाकर बैठ गए। उस दिनसे वे पाठ सुनने नहीं गए। जैसे ही पाठ खतम होता वे कीर्त्तन करने पहुँच जाते। तीन चार दिन तक पण्डितजी कर्मकी प्रधानताकी बातें करते रहे। इससे श्रोताओंमेंसे बहुतोंको आघात पहुँचा। एक दिन कुछ भक्त इकट्ठा होकर बाबाजी महाशयके पास गये और व्यथित हृदयसे पण्डितजीकी व्याख्याकी समालोचना करने लगे। वे बोले, 'भाई, शान्त रहो, यहाँ नाना प्रकारके लोग इकट्ठा हैं। लगता है कि निताइचाँदने भिन्न-भिन्न प्रकारके लोगोंकी मनस्तुष्टिके लिए यह लीला खेली है।'

एक दिन बाबाजी महाशय एक कमरेमें बैठे थे; यकायक रामदादा, राधाविनोद, फणी आदि कुछ लोगोंको आपने आदेश दिया, 'उच्चस्वरसे एक लाख महामंत्र कीर्त्तन करो।' आदेशानुसार सबने नाम आरम्भ कर दिया। आप बीचमें बैठकर संख्या रखने लगे। थोड़ी देरमें वह कमरा पसीजने लगा और उसमेंसे जल चूने लगा। नामकी ध्वनि भी जोर पकड़ती गयी। चारों ओरसे बहुतसे लोग आकर इकट्ठा हो गये। सभी उस व्यापारको देखकर विस्मित हो गये और आपसमें कहने लगे, 'कैसा आश्चर्य है! नाम तो बहुत सुना है, पर इस प्रकार नाम की शक्ति प्रत्यक्ष कभी नहीं देखी। यह नामकी शक्ति है या महापुरुष की, कुछ समझमें नहीं आता।' सभी लोग एकस्वरसे महापुरुषकी शक्तिकी जय देने लगे। यथासमय एक लाख नाम पूरा हुआ। इसके विषयमें राखाल बाबूने बाबाजी महाशयसे पूछा, तो वे बोले, 'देखो, नामकी शक्ति असीम है। ऐसा कोई काम दुनियाँमें नहीं, जिसे नाम न कर सके। यहाँ तक कि नामी

जिस कामको करनेमें असमर्थ है, नाम उसे बड़ी आसानीसे कर देता है।' 'सर्वशक्ति नामे दिल करिया बिभाग, आमार दुर्दैव नामे नाहि अनुराग।' प्रत्यक्ष प्रमाण देखो, भक्तप्रवर हनुमान राम नाम लेकर नामकी शक्तिसे अनायास एक उछालमें समुद्र पार कर गये, किन्तु रामचन्द्र स्वयं कितने कष्टसे समुद्र बाँधकर पार हुए।

राखाल०—और समय भी तो नाम होता है, पर ऐसा तो हमने कभी नहीं देखा।

बाबाजी—नाम स्वतंत्र है; वह जब कोई ऐश्वर्य-प्रकाश कर भ्रमान्ध अविश्वासी जीवोंमें विश्वास जाग्रत करनेकी इच्छा करेगा, तभी तो ऐसा होगा।

राखाल०—मेरा विश्वास है कि उज्ज्वल वस्तु भी पात्र विशेषके सम्पर्कमें आकर विशेष उज्ज्वल हो जाती है।

बाबाजी महाशय विशेष और कुछ न कहकर बोले, 'इन सब बातोंकी समालोचना करनेकी आवश्यकता नहीं। नाम सर्व-शक्तिमान है, यह विश्वास मनमें दृढ़ रखना ही आवश्यक है।'

दूसरे दिन चार बजेके करीब वे साथियों सहित खुले मैदानमें घूम रहे थे। उसी समय वहाँके मजिस्ट्रेट साहब घोड़े पर चढ़े हुए उनके आगेसे निकल गये। यह देखकर फणीने धीरे से साथियोंसे कहा, 'साहबकी स्पर्धा देखी। बाबाजी महाशयके सामनेसे घोड़े पर चढ़कर निकल गये।' उनका यह कहना था कि बाबाजी महाशय रुष्ट होकर फणीकी भर्त्सना करते हुए बोले, 'ये लोग राजपुरुष हैं, श्रीमती महारानीके गण हैं। जब जिन्हें पृथ्वी अंगीकार करती है, तब उन्हीं देहोंमें अष्टवसु अधिष्ठान करते है। भगवानने स्वयं कहा है—'नराणाञ्च नराधिपः' अतः राजपुरुष अर्थात् राजप्रतिनिधिका अपमान करना भगवानका

अपमान करना है। तुमने अपराध किया है, जाओ, उनके आगे जाकर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर उनसे क्षमा प्रार्थना करो।' बालक फणी बड़ा लज्जित हुआ और उसने आदेशानुसार द्रुत-गतिसे जाकर साहबके आगे दण्डवत् प्रणाम किया। साहबने विस्मित हो घोड़ेकी लगाम खींच ली और पास खड़े एक व्यक्ति से फणीके आचरणका अर्थ पूछा। उस व्यक्तिने बाबाजी महाशय के आदेशकी बात साहबको बता दी। साहब घोड़ेको मोड़कर बाबाजो महाशयके पास आये और अपना टोप उतार कर उन्हें प्रणाम किया। बाबाजी महाशयने भी प्रतिप्रणाम किया।

इस प्रकार कई दिन बीते। एक दिन सुबह आपने शीतलदास, उद्धारण, नीलमणि, नन्दकिशोर आदि सात साथियों को आदेश दिया, 'यह राढ़देश मेरे निताइचाँदकी विहार-भूमि है, अतः तुम लोग पैदल अयाचक वृत्तिसे पहले हेतमपुर श्रीश्री-राधाबल्लभजी, फिर मयनाडाल श्रीमन्महाप्रभु, एकचाका वीर-चन्द्रपुर आदि स्थानोंके दर्शन कर एक सप्ताहके भीतर वापस आ जाओ। अगले शनिवारको शुभ अधिवास होगा और रवि-वारको अष्टप्रहर नाम-कीर्त्तन। नाम-कीर्त्तनमें तुम्हें योग देना होगा।' इतना कहकर आप नित्य कर्म करने चले गये। वे लोग भी आदेशानुसार वहाँसे चल दिये।

शनिवारको अधिवास और रविवारको नाम शुरू हुआ। सुबहसे ही बाबाजी महाशय एकदम बाह्यज्ञान शून्य हो गये। बड़ी मुशकिलसे उन्हें थोड़ा-सा महाप्रसाद सेवन कराया गया। उनके नेत्र बराबर रक्तवर्ण और डबडबायेसे थे। बातें करते, तो असंलग्न, और जैसे किसी और राज्य की। रात बीत गई, पर उन्हें कुछ होश नहीं। एक व्यक्ति आकर बोला, 'नगरकीर्त्तन में नहीं चलेंगे ? सात बज गये!' वे चौंक कर बोले, 'ऐं! अच्छा

चलो।' इतना कहकर वे नगर कीर्त्तनके लिये निकले। अपूर्व आनन्द ! जिस रास्तेसे कीर्त्तन जा रहा था, उस पर और किसी का आवागमन संभव न था। चारों ओर आदमी ही आदमी दीख पड़ते थे। लड़के-लड़कियाँ आगे-पीछे नाचते-नाचते जा रहे थे। दुकानदार अपने-अपने काममें व्यस्त थे, पर गगनभेदी सुमधुर नामकी आवाज कानमें पड़ते ही कीर्त्तनकी ओर भाग पड़े। स्त्रियोंमें कुछ जलकी कलसियाँ लिये थीं, कुछ स्नान करने जा रही थीं, कुछ स्नान कर घर लौट रही थीं; संकीर्त्तनकी ध्वनि सुनकर वे रास्तेके एक ओर खड़ी होकर भाव-विभोर हो नाम सुनने लगीं। आनन्दमें आँसुओंकी झड़ी लग गई। विशेष संभ्रान्त घरोंकी महिलाएँ छतोंपर चढ़कर या दरवाजे खोलकर उनकी आड़मेंसे ध्यानसे नाम सुनने लगीं। बहुत देर तक नगर-भ्रमण कर सब राखालबाबूके घर लौटे और दही-हल्दीसे नाम समाप्त किया। फिर आवेशमें आकर बाबाजी महाशय उस हल्दी लगी जगह पर लोटते हुए सब लोगोंके सिरसे अपना पैर छुवाने लगे। जो कोई उनके पैरोंमें झुककर प्रणाम करता, उसीके मस्तकसे पैर लगाकर अस्पष्ट शब्दोंमें उससे जानें क्या कहते। आँखें बन्द थीं। यकायक पंडित रामदासके मनमें न जाने क्या आया, उन्होंने बाबाजी महाशयको दण्डवत् प्रणाम कर उनके पैर पकड़ लिये और कहा, 'बाबा, मैंने आपके चरणोंमें अपराध किया है; कई दिनसे मेरे मनमें बड़ा संताप है, मुझे क्षमा कीजिये।' वे गद्‌गद् कण्ठसे बोले, 'तुम्हारा और कोई अपराध नहीं। तुमने सनातन-शिक्षाकी व्याख्या करते समय बहुत लोगों के हृदयमें निराशाका संचार किया है। महाप्रभुने सनातन गोस्वामीको जो उपदेश दिया था उसके केवल वे ही पात्र थे। ऐसे कठोर आदेशका पालन करना दूसरोंके लिये सम्भव नहीं।

कलिहत दुर्बल जीव अल्पायु और अन्नगत प्राण हैं; वे केवल कृपाके भिखारी हैं। कृपा ही उनका सम्बल है। तभी तो महाप्रभुने कृपा कर उनके लिये एकमात्र हरिनामकी व्यवस्था की है, और वह भी कैसी सरल! 'खाइते शुइते जथा-तथा नाम लय, काल देश नियम नाइ सर्वसिद्धि हय।' 'शुद्धं यद्यप्यशुद्धं व्यवहितरहितं तारयत्येव सत्यम्' इत्यादि। कलिके जीवोंको उन्होंने कोई कठोर आदेश नहीं दिया। जैसे ही त्रिताप-दग्ध निराश प्राण कलिके जीवोंके मनमें प्रभु-कृपासे थोड़ी आशाका संचार होता है, तुम्हारे जैसे पंडित अभिमानी बहुतसे लोग प्रचारकका पद ग्रहण कर उस कृपालब्ध सुकोमल नामको विधिके कितने ही कठोर आवरणोंसे ढककर फिरसे उनके मनमें निराशा जाग्रत कर देते हैं। तुम लोगोंको शान्ति मिलना बहुत ही कठिन है। तुम पाण्डित्य प्राप्त कर सकते हो और भजन-साधनकी बातोंसे भी अवगत हो सकते हो, पर कृपाकी बातसे अनभिज्ञ ही रहोगे। कृपाको जाननेके लिये कृपाको छोड और कोई साधन नहीं है। कृपाके विषयमें कोई सिद्धान्त निश्चित करना एकदम भूल है। अपनी मनोवृत्तिके अनुसार सर्वसाधारणके लिए एक सिद्धान्त बतानेसे अपराध होता है। विशेष कर भगवद्वाक्यका आशय समझे बिना अपनी बुद्धिवृत्तिके बल पर अपने बनाये सिद्धान्तको चरम सिद्धान्तके रूपमें प्रकाश करना बड़ा भारी भ्रम है।'

राम०—तो व्यास-आसन पर बैठकर शास्त्र-व्याख्या कैसे हो?

बाबाजी—वहाँ 'मैं जो कहता हूँ यही चरम सिद्धान्त है' ऐसा दंभ न दिखाकर इस प्रकारकी भाषाका प्रयोग करना चाहिए कि 'मैंने अपनी बुद्धिवृत्तिके अनुसार ऐसा समझा है या

श्रीगुरुदेवने कृपा कर अन्तर्यामी रूपसे ऐसा समझाया है। दूसरे लोग अपने भजनबलसे या गुरुकृपासे अन्य प्रकारकी व्याख्या भी कर सकते हैं।'

पण्डितजी साश्रुनयन और गद्‌गद् कण्ठसे बोले, 'मैं धन्य हुआ। आज मुझे बहुत शिक्षा मिली।'

बाबाजी महाशयने पण्डितजीको आलिङ्गन कर कहा, 'भाई, पाठसे पहले और उसके बाद श्रोताओंसे क्षमा-याचना करना ठीक होता है।' इतना कहकर वे एकदम मूर्छित होकर गिर पड़े। बहुत सेवा-सुश्रुषाके बाद जब उन्हें चैतन्य प्राप्त हुआ, तो वे सभीको दण्डवत् प्रणाम कर सभीसे क्षमा-प्रार्थना करने लगे। फिर समय अधिक हुआ जान उन्होंने अपने हृदयके भाव संवरण कर स्नान आन्हिकादि किए और महाप्रसाद ग्रहण कर विश्राम किया।

दुमका-यात्रा

कई दिनसे बाबाजी महाशयके शिष्य श्रीभागवत मिश्र, उन्हें दुमका ले जानेके लिए विशेष आग्रह कर रहे थे। सिउड़ी से दुमका बीस कोस है। भागवत मिश्र महाशयकी इच्छा थी कि बाबाजी महाशयको तो एक घोड़ागाड़ी द्वारा लिवा जायँ और अन्य सबके लिए बैलगाड़ी की व्यवस्था कर दी जाय। उन्होंने अपने मनकी बात बाबाजी महाशयके आगे रखी, तो आप बोले, 'देखो भागवत, हमारे निताइचाँद जिस रास्तेसे आए गए हैं उस पर किसी सवारीमें बैठकर जाना उचित नहीं। अतएव हम लोग पैदल ही जायँगे।' इतना कहकर वे तीसरे पहर कोई चार बजे साथियों सहित नाम करते हुए प्रस्थान कर

रातको आठ बजे मौड़ेश्वर ग्राममें मौड़ेश्वर शिव-मन्दिरमें जा पहुँचे। शिवजीके दर्शन कर 'हमारे निताइचाँदका पूजा हुआ शिवलिङ्ग !' कहते ही अचैतन्य हो गये। साथी सब घबड़ाकर उन्हें घेर कर नाम करने लगे। कोई आधा घण्टे बाद जब उन्हें कुछ-कुछ वाह्यज्ञान हुआ, तो वे हाथ जोड़कर बड़ी देर तक शिवजीकी स्तुति करते रहे।

उस रात वहीं ठहर कर उन्होंने दूसरे दिन सुबह प्रातः-कृत्य समाप्त कर साथियों सहित नाम करते-करते जंगलके रास्तेसे प्रस्थान किया। ग्यारह बजेके करीब एक गाँवमें पहुँच-कर उन्होंने एक व्यक्तिसे पूछा, 'भाई, इस गाँवका नाम क्या है ?' उसने बताया 'रानीश्वर' यह सुनते ही आप मृदु भावसे हँसे और बोले, 'रानी·······राधारानी, ईश्वर·······श्रीकृष्ण; अर्थात् राधाकृष्ण रहते हैं इस गाँवमें, तभी नाम है रानीश्वर। तो आज इसी गाँवमें रहा जाय।' इतना कहकर गाँवके बीच नदी किनारे एक गायवाले घरमें बैठ गए। घर बहुत साफ-सुथरा नहीं था। साथियोंने उसे झाड़ पोंछकर रहने योग्य बना लिया। उन्हें भिक्षा करनेका आदेश हुआ, तो वे नाम करते हुए भिक्षाके लिए निकल पड़े।

गाँवमें बहुतसे शैव ब्राह्मण रहते थे। वे 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम सुनकर खड्ग हाथमें ले-लेकर आये और उनकी नाना प्रकारसे भर्त्सना करने लगे। एकने कहा 'तुम लोगोंको नौकरी नहीं मिलती, जो इस तरह घर-घर जाकर भीख माँगते हो ?' दूसरा बोला, 'बेटोंको और कोई काम न मिले, तो कुलीगीरी करके तो पेट भर ही सकते हैं।' इस प्रकार वे अपनी-अपनी मनोवृत्तिके अनुसार कहते रहे पर ये लोग बाबाजी महाशयके आदेशानुसार नाम करते-करते

नगर-भ्रमण करनेके बाद लौट आये। केवल आधा सेर चावल भिक्षामें प्राप्त हुए थे। लौटकर वे बाबाजी महाशयसे बोले, 'यह कैसे गाँवमें आ पहुँचे। भिक्षा तो मिलती ही नहीं; गालियाँ और मिलती हैं।'

बाबाजी—क्यों भाई, भिखारी वैरागी हो गालियोंसे दुःख पानेकी क्या बात है?

साथी—केवल हमें गाली देते तो भी कोई बात नहीं थी। ये तो निताइगौरके पीछे पड़ गये हैं। जो भी दोष है निताइ गौरका!

बाबाजी—कोई चिन्ता नहीं। निताइचाँद यहाँ कोई खेल खेलेंगे, तभी लगता है यह सब हो रहा है। जाओ, तुम लोग स्नान-आन्हिकादि कर आओ; पीछे जो होगा सो होगा।

आपके आदेशानुसार सभी स्नान करने चले गये। अकेले बाबाजी महाशय स्थिर भावसे बैठे रहे। आधा घण्टे बाद एक भद्रपुरुष कोई दस सेर चावल और उसी हिसाबसे दाल, तरकारी, तेल, नमक आदि लेकर आये और हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे कि इस सब सामग्रीका महाप्रभुको भोग लगाया जाय और उससे वैष्णव-सेवा हो।

बाबाजी महाशय साश्रु नयन और गद्‌गद् कण्ठसे बोले, 'आहा! लीलामय निताइचाँदकी कैसी विचित्र लीला है।' उन्होंने उस भद्रपुरुषसे पूछा, 'भाई, तुम्हें किसने बताया कि यहाँ महाप्रभु हैं?'

भद्र०—जी, यह एक अद्‌भुत कहानी है। जिस समय कुछ बाबा लोग भिक्षा करनेके लिये नाम करते-करते गाँवके भीतर आये, मेरे मनमें यह बात आई कि यदि यह पता चल जाय कि ये लोग कहाँसे आये हैं और यहाँ कहाँ ठहरे हैं, तो

वहाँ एक बार जाकर इनके चरण-दर्शन करूँ। यह सोच ही रहा था कि एक दीर्घकाय विदेशी ब्राह्मण आकर मुझसे बोला, 'भाई, इन लोगोंने नदी किनारे एक गायोंके घरमें आश्रय लिया है। कोई पचीस-छब्बीस मूर्त्ति हैं; इनके भोजनादिकी भी कोई व्यवस्था नहीं है।' इतना कहकर वे चले गये। मैं उन्हें पहचान नहीं सका। उनका परिचय पूछनेका भी मौका न मिला। जल्दी ही यह सब सामग्री लेकर घरसे चल पड़ा।

ये बातें हो ही रही थीं कि एक और भद्रपुरुष दो नौकरों के साथ आधा मन चावल और दाल, तरकारी, घी, मसाले, मिट्टीकी हँड़िया और लकड़ी लेकर बाबाजी महाशयके पास आया। बाबाजी महाशयने विस्मित भाव, साश्रुनयन और गद्-गद् कण्ठसे पूछा, 'भाई, तुम ये सब क्यों ले आये ?'

नवागन्तुक—बाबा, क्यों ले आया, नहीं बता सकता। एक घण्टे पहले कुछ वैष्णव 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम करते हुए गाँवमें आये थे। पहले तो मैंने सोचा कि वे नगर-कीर्त्तनके लिये निकले हैं। क्षणभर पीछे ही एक बुढ़िया एक मुट्ठी चावल हाथमें लेकर आई, तो उनमेंसे एकने अपने कंधेपर लटकी भिक्षाकी झोली दिखाई। बुढ़ियाने उस झोलीमें चावल डालकर उन्हें प्रणाम किया; वे लोग भी प्रति प्रणाम कर धीरे-धीरे चले गये। तब मेरी समझमें आया कि वे भिक्षार्थ आये थे। मेरे पास गाँवके छह-सात ब्राह्मण बैठे थे; वे उनकी नाना प्रकारसे कटु आलोचना-भर्त्स्ना करने लगे। फिर भी वे बड़े आनन्दसे उन्हें प्रणाम कर दूसरी जगह चले गये। ब्राह्मण भी अपने-अपने घर चले गये। तभी मेरे मनमें इच्छा हुई कि यदि उन वैष्णवोंके रहनेकी जगहका पता चल जाय, तो भोगके लिये कुछ दाल-चावल भेज दूँ। बहुत तलाश

करने पर इस स्थानका पता चला, तो यह थोड़ेसे दाल-चावल ले आया। ग्रहण कर, कृतार्थ करें।

बाबाजी—भाई, मेरे ग्रहण करने न करनेकी कोई बात नहीं; मैं तो खेल देख रहा हूँ निताइचाँदका।

इसी समय साथी लोग स्नान कर लौट आये। आपने आदेश दिया कि खूब उत्साहके साथ निताइचाँदकी कृपादत्त वस्तु महाप्रभुको भोग लगाओ। यह पूछने पर कि रसोई कहाँ की जाय, आप बोले, 'यह जो कालीबाड़ी दिखाई दे रही है, वहाँ महाप्रभुको ले जाकर उचित स्थान पर विराजमान कर भोगकी व्यवस्था करो।' साथियोंने आदेशानुसार काम किया। यथासमय भोग दिया गया; आपके आदेशसे रामदादाने भाव गद्गद् कण्ठसे मन-प्राण झकझोर देनेवाला भोग आरति कीर्त्तन आरम्भ किया। बहुतसे लोग इकट्ठा हो गये। वे कालीबाड़ीमें समा भी नहीं रहे थे। कोई तीन बजे कीर्त्तन समाप्त हुआ। जिन ब्राह्मणोंने गाली-गलौजकी थी, वे दुःखी हृदयसे बाबाजी महाशयके पास आकर अपने-अपने कियेके लिये क्षमा-याचना करने लगे। बाबाजी महाशय हाथ जोड़कर बोले, 'यह क्या? आप लोग ब्राह्मण हैं, हमारे गुरु हैं, आप जो चाहें कह सकते हैं, जो चाहें कर सकते हैं। आपका अपराध कैसा? ऐसी बात तो सोचकर भी हमें अपराध होगा। आइये, सब लोग प्रसाद ग्रहण करें।' सुनते ही सब विशेष उत्साहके साथ बाबाजी महाशयके साथ चल पड़े। आपने भी बिना किसी भेदभावके उन्हें पत्तल देनेके लिये आदेश दिया। महापुरुषकी शक्तिका प्रभाव हो या निताइचाँदकी कृपाका, प्रायः बीस निष्ठावान ब्राह्मण बाबाजी महाशयको घेरकर महाप्रसाद-सेवन करने बैठे। क्षणभर पहले जो वैष्णवोंको घृणाकी दृष्टिसे देख रहे थे, वे ही अब परोसनेका

कार्य करने लगे। नामकी कृपासे और सत्संगके बलसे अब किसी के मनमें दुविधा न रही। सभी बड़े आनन्दसे महाप्रसाद ग्रहण कर अपनेको धन्य समझने लगे और आपसमें कहने लगे, 'आज हम लोग पवित्र हो गये। हमें अपने जीवनमें ऐसे अदोषदर्शी महापुरुषका संग प्राप्त करनेकी आशा न थी। आज हमारा गाँव धन्य हुआ; हम भी धन्य हुए।' इस तरह अपनी-अपनी मनो-भावनाके अनुसार सब बातें करते रहे। कोई सौ व्यक्तियोंने महाप्रसाद-सेवन किया; सभी बड़े प्रसन्न थे। बहुतसे लोग बाबाजी महाशयसे दो-एक दिन वहीं रुकनेके लिए विशेष अनु-रोध करने लगे। आपने कहा, 'भाई, यहाँ मैं अपनी इच्छासे नहीं आया। निताइचाँद लाये हैं; वे चाहें तो दो दिन क्या, दस दिन भी रख सकते हैं। वे न चाहें, तो मेरी सामर्थ्य एक मुहूर्त्त भी यहाँ रहनेकी नहीं। आप निताइचाँदसे कहिये; इस बार नहीं, तो अगली बार ले आयँगे।'

भद्र०—हम तो आपमें ही निताइचाँद देख रहे हैं। आपके चाहनेसे ही सब हो सकता है।

बाबाजी—निताइ-निताइ ! मैं क्षुद्रजीव हूँ। मेरे लिए ऐसा मत कहिए। आप आशीर्वाद कीजिए कि मैं निताइ-दासका दास बन सकूं।

इस प्रकार उन्हें समझाकर बाबाजी महाशयने साथियों को दुमकाके लिए तैयार होनेका आदेश दिया और थोडी देरमें सबको दण्डवत् प्रणामकर कीर्त्तन करते हुए वहाँसे चल पड़े।

————

दुमका-प्रसङ्ग

निम्नलिखित घटना श्रीयुत किशोरीमोहनसिंह, दुमका डिस्टिलरी सुपरिण्टेण्डेण्टने लिखी है, और उन्हींके शब्दोंमें उद्धृत है।

कोई अठारह वर्ष पहले आश्विन मासके अन्तमें अथवा कार्त्तिकके आरम्भमें श्रीदुर्गापूजाके पहले दिन कोई नौ बजे महात्मा श्रीयुत राधारमणचरणदास बाबाजी महाशय साथियों सहित सिउड़ीसे दुमका पधारे। सिउड़ीसे दुमका बीस कोसके लगभग है। बाबाजी महाशय नाम करते हुए पैदल ही आये थे। मैं उस समय दुमका डिस्टिलरीका सुपरिण्टेण्डेण्ट था और बोमपाश साहब मजिस्ट्रेट थे। वे बड़े सज्जन थे। डिप्टी कलेक्टर थे यतीनबाबू। उनका घर मेरी डिस्टिलरीके पास था। तीन-चार वर्ष पहले यतीनबाबू, योगेनबाबू आदिने यतीनबाबूके घरके पास एक 'हरिसभा' स्थापितकी थी। हम रोज सन्ध्या समय वहाँ इकट्ठा होकर नाम करते थे। उस दिन जब बाबाजी महाशय पधारे तो हरिसभामें बड़ी धूम थी। संध्या पाँच बजे वे साथियों सहित 'भज निताइ गौर राधेश्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम करते-करते वैद्यनाथबाबूके घरसे निकले और सामान्य भावसे शहरके एकओर भ्रमण कर मजिस्ट्रेट साहबके घरके आगे होते हुए सीधे हरिसभा पहुँचे। साहबके घरके आगे कीर्त्तन आया, तो वे अपलकनेत्र बहुत समय तक बाबाजी महाशयकी ओर देखते रहे। कुछ दूर तक संकीर्त्तनके साथ भी गये। उनकी दृष्टि बाबाजी महाशय पर ही टिकी थी। बाबाजी महाशयने हरिसभा पहुँचकर रामदास बाबाजी महाशयको कीर्त्तन करनेका आदेश दिया। उन्होंने कीर्त्तन आरम्भ किया:—

जदि गौराङ्ग ना ह'त, कि मेने हइत, केमने धरिताम दे'।
राधार महिमा, प्रेमरस सीमा, जगते जाना'त के ॥
बृन्दाबिपिन, मधुर माधुरी, प्रबेश चातुरी सार।
बरज जुबती, भाबेर भकति, शकति हइत कार ॥
गाओ गाओ पुनः, गौराङ्गेर गुण, सरल करिया मन।
ए भब संसारे, दयाल ठाकुर, ना देखिये अन्यजन ॥
(एमन) गौराङ्ग बलिये, ना गेलाम गलिये, केमने धरिलाम दे'।
बासु घोषेर हिया, पाषाणेते दिया, केमने गड़िल से ॥

अपूर्व आनन्द ! ऐसा कोई नहीं, जिसको आँखोंमें जल न हो। सभी बच्चोंकी तरह जोर-जोरसे रो रहे थे। बाबाजी महाशय आविष्ट भावसे नृत्य करते-करते रामदास बाबाजी की गोदमें जा बैठे और उनकी चिबुक पकड़कर साश्रु नयन और गद्‌गद् कण्ठसे न जाने क्या कहते-कहते एकदम अचैतन्य हो भूमिपर गिर पड़े। उनके विस्फारित-निष्पंद नेत्रोंसे अविरत अश्रु धार बहने लगी और उनका विशाल शरीर काष्ठवत् स्तब्ध हो गया। तीन-चार साथियोंको भी आवेश हो गया, पर बाबाजी महाशयके विषयमें सब विशेष चिन्तित थे। कोई भागकर पंखा ले आया, कोई जल। कोई-कोई उनके साथियोंसे व्याकुल भावसे पूछने लगे, 'इस अवस्थाका क्या कारण है वे किस प्रकार स्थिर हो सकेंगे ?' प्रेमदास बाबाजी महाशयने कहा 'आप चिन्ता न करें, और नाममें योग दें। वे अभी स्थिर हो जायँगे।'

यह सुन हम सब नाममें योग देने लगे। रामदास बाबाजी महाशय कीर्त्तनमें बीच-बीचमें आखर देते—'हाय रे तखन केन जनम हइल ना, प्रकट लीला देखते पेलाम ना, साङ्गोपाङ्ग संगे निये गौर तूमि कोथाय बिहरिछ, किछुइ देख्‌ते पेलाम ना'

इत्यादि । एक-एक आखरके साथ उपस्थित लोग रो-रोकर अधीर हो जाते। यकायक बाबाजी महाशयके शरीरमें ऐसा कम्प होने लगा कि देखकर लगता जैसे सारा कमरा काँप रहा है। उनके दाँत भी इस तरह काँपने लगे कि देखकर भय होता और लगता कि सब दाँत अभी गिर पड़ेंगे। एक साथ सर्वाङ्ग पुलकावलिसे विभूषित हो गया। फिर देखते-देखते ऐसा लगा कि आधे शरीरमें कम्प है, और आधा स्थिर है; एक आँख खुली है, दूसरी बन्द है; एक हाथमें पुलक है, दूसरेमें कुछ नहीं; मुंहमें एक ओर हँसी है, दूसरी ओर क्रन्दन ! सब आश्चर्यचकित ! श्रीचैतन्य चरितामृतमें बहुत प्रकारके भावोंका वर्णन है, पर आज उन सबको प्रत्यक्ष देखकर हम अपनेको धन्य मानने लगे। आगन्तुक भद्रपुरुष आपसमें कहने लगे, 'मानव-शरीरमें इस प्रकारके भाव प्रकट हो सकते हैं, इसकी हमने कभी कल्पना भी नहीं की थी। आज इन महापुरुषको देखकर हम आश्चर्यचकित हैं। बहुतसे भक्तोंका कहना है कि श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके शरीरमें बहुत प्रकारके भाव प्रकट होते थे। हमें इसपर विश्वास नहीं होता था। सोचते थे, भक्त लोग अपने इष्टदेवके शरीरमें सामान्य कुछ देख लेते हैं, तो अतिशयोक्तिके साथ उसका वर्णन करते हैं। आज हमारा वह भ्रम दूर हुआ।'

मैं कीर्त्तनमण्डलीसे उठकर बाबाजी महाशयको स्पर्श करनेके विचारसे उनके पास गया, तो देखा कि उनका सुकोमल विशाल शरीर लौहवत् हो गया है। आँसू और पसीने की बूँदें मिलकर जमीन पर पानीकी तरह बह रही हैं। रातके ग्यारह बजे तक उन्हें घेरकर सब उच्च स्वरसे नाम करते रहे, तब कहीं उन्हें चैतन्य हुआ। तब उन्हें पूर्ववत् स्वस्थ और स्थिर देखकर हमारे मृत शरीरोंमें जैसे प्राण लौट आये।

दुमकावासी भद्र-अभद्र, बालक-बच्चे, बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभीको बाबाजी महाशयके दुमका-आगमनकी बात पता चल गई। दूसरे दिन सुबह बहुतसे साँताल लोग इकट्ठे होकर अपनी भाषामें कीर्त्तन करते हुए बाबाजी महाशयके पास आ पहुँचे। कीर्त्तनके आते ही बाबाजी महाशयने साष्टाङ्ग दण्डवत् की। साँताल लोगोंने भी साष्टाङ्ग दण्डवत् कर प्रेमानन्दमें नृत्य-कीर्त्तन किया। बहुत देर तक कीर्त्तन हुआ, तत्पश्चात् समय काफी हुआ जान बाबाजी महाशयने उन लोगोंको बिदा किया और आप स्वयं भी स्नानादि नित्यकृत्य पूरे कर महाप्रसाद ग्रहणकर विश्राम करने लगे।

शामको चार बजे बहुतसे भद्रपुरुषोंके अनुरोध पर नगर-कीर्त्तन निकाला गया। दुमकासे दो मील दूर रसिकपुर तक कीर्त्तन गया। बहुतसे साँतालोंने आकर उसमें योग दिया। उनकी नृत्य-भङ्गी और उनमत्तता देख सब अवाक् रह गये। रात कोई ग्यारह बजे कीर्त्तन लौटकर आया। संकीर्त्तनके बाहर निकलनेके समय बोमपाश साहब कुछ दूर तक कीर्त्तनके साथ-साथ गये थे। संकीर्त्तन लौटा, तो उसकी ध्वनि सुनकर और साँताल लोगोंकी अवस्था देखकर साहबको थोड़ा भय हुआ। जब तक कीर्त्तन बन्द न हुआ, वे घोड़े पर उसके साथ रहे। दूसरे दिन उन्होंने यतीनबाबूसे कहा, 'बाबू, तुम्हारे घर एक साधु आये हैं, वे कौन हैं और किसलिये आए हैं ?'

यतीन०—वे हमारे पादरी हैं और एक महापुरुष हैं; सदा नाम-कीर्त्तन लेकर जगह-जगह भ्रमण करते रहते हैं। सिउड़ी आये थे, वहाँसे हम लोग यहाँ लिवा लाए हैं।

साहब—उनके साथ कितने लोग रहते हैं ?

यतीन०—कोई ठीक नहीं। वह किसीको साथ रहनेके

लिए मना नहीं करते। इस समय कोई पच्चीस-छब्बीस लोग साथ हैं।

साहब—मुझे बड़ी आशंका है। कहीं ये साँताल लोग पागल न हो जायँ।

यतीन०—वे भगवत् नाम और भगवत् चर्चाको छोड़ और किसी बातसे सम्बन्ध नहीं रखते।

साहब—मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।

यतीनबाबू साहबको ले गए। उनसे बाहर प्रतीक्षा करनेके लिए कह भीतर जाकर बाबाजी महाशयसे सारी बातें कहीं। सुनते ही बाबाजी महाशयने घरके बाहर आकर साहबसे भेंट की। दोनोंने एक दूसरेको सलाम किया। साहब बाबाजी महाशयको ऊपरसे नीचे तक देखते रह गए। बहुत देर बाद उन्होंने पूछा, 'आप यहाँ कितने दिन रहेंगे ?'

बाबाजी—भाई, मैं अपनी इच्छासे तो आया नहीं; जो मुझे लाये हैं, वे जानें, कितने दिन रखेंगे।

साहबने सोचा कि वे किसी व्यक्तिके बारेमें कह रहे हैं। इसलिए पूछा, 'क्यों, उन्होंने दिनोंके बारेमें कुछ नहीं कहा ?'

बाबाजी—भाई, वे इच्छामय स्वतंत्र ईश्वर हैं; उनके मनकी बात न कोई जान सकता है और न वे किसीको बताते हैं। उनकी जब जैसी इच्छा होती है करते हैं।

साहब—वे कहाँ रहते हैं ?

बाबाजी—सर्वत्र।

साहब—तो हम उन्हें देख क्यों नहीं पाते ?

बाबाजी—वे स्वेच्छामय भगवान् हैं; जिसे दिखाई देना चाहते हैं, वही उन्हें देख सकता है। बिना उनकी इच्छाके किसी की ताकत नहीं जो उन्हें देख सके।

के लिये यह दो सौ रुपये दे दें और इस दासका साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कहें।

बाबाजी—मैं यहाँ हूँ, योगेनको कैसे पता ?

कामाख्या०—यह तो आप ही जाने।

बाबाजी महाशयके नेत्र रक्तवर्ण हो गये; साश्रु नयन गद्‌गद् कण्ठसे बोले, 'बलिहारी, निताइचाँदकी कैसी करुणा ! मुझ जैसे क्षुद्र जीवके आनन्दके लिये वे छिपे-छिपे न जाने क्या-क्या करते हैं। हाय रे, उन्हें भजता नहीं, तब तो उनकी इतनी दया; यदि उन्हें भजता, तो पता नहीं कितनी दया करते ! मुझ जैसा अविश्वासी जीव पीछे कहीं भ्रममें न पड़ जाय, इसलिये दयामयने पहले ही बन्दोबस्त कर दिया।' इस प्रकार कहते-कहते वे बच्चेकी तरह रो उठे। आगन्तुक लोग यह सब देखकर विस्मित हो आपसमें कहने लगे, 'दृढ़ विश्वस्त भावसे यदि सामान्य जीव भी कोई इच्छा करता है, तो ईश्वर उसे पूरा करते हैं; फिर ये तो सिद्ध महात्मा हैं, इनकी तो बात ही क्या है ?' कोई कहने लगे, 'इनका जैसा अलौकिक भाव हमने और कहीं नहीं देखा।' इस तरह अपने-अपने मनोभावके अनुसार सब लोग बातें कर अपनी-अपनी जगह चले गए। इधर बाबाजी महाशयने साथियोंको आदेश दिया कि आज ही अपराह्नमें श्रीधाम वृन्दावन-यात्रा करनी है, अतः सब यथाशीघ्र आह्निकादि कर और महाप्रसाद पा स्टेशन पहुँच गए।

श्रीधाम वृन्दावनमें

काशीके बहुतसे भद्रपुरुष बाबाजी महाशयके साथ काशी स्टेशन आए। गाड़ीका समय होनेपर उन्होंने अपने मधुर

वाक्योंसे सबको बिदा किया। यथासमय ट्रेन हाथरस स्टेशन पहुँची; वे साथियों सहित एक धर्मशालामें ठहर गए और ठाकुरजीके भोगादिकी व्यवस्था होने लगी। इसी समय श्रीधाम वृन्दावनसे सिद्ध श्रीजगदीशदास बाबाजी महाशयके शिष्य श्रीयुत शचीनन्दनदास बाबाजी महाशय आ पहुँचे। देखते ही दोनोंने एक दूसरेको प्रणाम-आलिङ्गन किया।

बाबाजी महाशयने पूछा, 'आप क्या सोचकर यहाँ पधारे ?'

शची०—मैं श्रीधाम वृन्दावनसे गौड़मण्डल जा रहा था; पता नहीं क्यों इधर बहुत आकर्षण हो आया। आकर देखा कि आप यहाँ विराजमान हैं; आज मेरा परम सौभाग्य है। आपके दर्शन करनेकी वासना बहुत दिनोंसे थी; इस बार तो दृढ़ संकल्प ही कर लिया था कि श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र जाकर आपके श्रीचरणों के दर्शन करूँगा। प्रभुने यहीं मिला दिया।

बाबाजी—भाई, मेरा विश्वास है कि तुम लोग वृन्दावन बासी हो, अतः राधारानीके विशेष कृपा-पात्र हो। इस अधम को वृन्दावन ले जानेके लिए राधारानीने तुम्हें भेजा है।

शची०—अपनी वृन्दावन-यात्राके विषयमें किसीको कोई संवाद दिया है ?

बाबाजी—निताइचाँद जानें; मुझे तो इसकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई।

शची०—मेरी इच्छा है कि नित्यस्वरूप ब्रह्मचारीको एक तार भेज दिया जाय।

बाबाजी—भाई, मैं कुछ नहीं जानता; तुम लोगोंकी जो इच्छा हो कर सकते हो, मुझे कोई आपत्ति नहीं।

शचीनन्दन दास बाबाजी महाशयने प्रसन्न हो नित्य-

स्वरूप ब्रह्मचारीको तार कर दिया। उनके साथ कोई पाँच-छह सेर पेड़े थे। वह उन्होंने बाबाजी महाशयके आगे रख दिये।

बाबाजी महाशय—इसका क्या होगा ?

शची०—महाप्रभुको भोग देकर सभी ग्रहण करेंगे।

बाबाजी—ठीक है। महाप्रभु सेवकोंके साथ बहुत दूरसे आ रहे हैं, भूख लग आई है। यह कहकर उन्होंने प्रेमदादाको भोग लगानेका आदेश दिया। भोग लगकर आया, तो बाबाजी महाशयने शचीनन्दनदास बाबाजीसे कहा, 'आओ भाई, एक-साथ महाप्रसाद पायँ।' उन्होंने कुछ आपत्ति की; पर जब बाबाजी महाशय किसी प्रकार न माने तो प्रसाद पाने बैठ गये। बाबाजी महाशयने आरम्भमें ही एक पेड़ा उनके मुँहमें दिया; उन्होंने भी एक पेड़ा लेकर उनके मुँहमें दिया। फिर साथियों को बुलाकर दोनों अपने हाथसे उन्हें पेड़े देने लगे। कुछ देर बाद महाप्रभुको अन्न भोग दिया गया। शचीनन्दन बाबाजी महाशयकी महाप्रसाद पानेकी इच्छा न थी, पर वे बाबाजी महाशयके अनुरोधको टाल न सके। इतने थोड़े समयमें दोनों प्रेम-बन्धनमें इस तरह बँध गये कि शचीनन्दन बाबाजी महाशय का गौडमण्डल जाना न हो सका। और बाबाजी महाशयके साथ वृन्दावन लौट आये।

इधर तार पाते ही नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी गणेशबाबू और गोविन्द दादाको लेकर बाबाजी महाशयके ठहरने और भोगादि की व्यवस्था करने लगे। थोड़ी ही देरमें बाबाजी महाशयकी वृन्दावन-यात्रा की बात चारों ओर फैल गई। सब उत्कंठित हो उनके आनेकी बाट देखने लगे। श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी महाशय, श्रीमाधवदास बाबाजी महाशय, नित्यस्वरूप ब्रह्म-चारी, गणेश भट्टाचार्य, अटलदादा, गोविन्ददादा आदि बहुतसे

लोग उनके स्वागतके लिये वृन्दावन स्टेशन पर पहुँच गये। वृन्दावनकी गाड़ीमें चढ़ते ही बाबाजी महाशयकी न जाने कैसी अवस्था हो गई। किसीसे बातचीत नहीं, रक्तवर्ण दोनों नेत्रोंसे अविरत अश्रु-विसर्जन; क्षण-क्षण पर सर्वाङ्ग पुलकावलिसे विभूषित; क्षण-क्षण पर कम्प ! जैसे वे इस राज्यमें हैं ही नहीं। साथी लोग आनन्दोन्मत्त हो कीर्त्तन करने लगे। जैसे ही गाड़ी मथुरा स्टेशनसे इधर पुलके ऊपर पहुँची, शचीनन्दनदास बाबाजी महाशय बोले, 'दादा, मथुरा आ गया।' सुनते ही बाबाजी महाशय उनके गलेमें हाथ डालकर बच्चेकी तरह रोने लगे। गाड़ीमें जितने भी लोग थे, सब उनकी यह अवस्था देखकर अवाक् रह गये। इसी अवस्थामें बहुत समय बीत गया। यथासमय गाड़ी वृन्दावन स्टेशन पर पहुँची। वृन्दावनवासी कीर्त्तनध्वनि सुनकर बाबाजी महाशयके डिब्बेके पास आ गये। साथी एक-एक कर उतरने लगे। पर बाबाजी महाशय एकदम बाह्यज्ञान-रहित निश्चल-निःशब्द बैठे रहे। शचीनन्दन बाबाजी महाशय उन्हें पकड़े थे। अटलदादाने कहा, 'यह वृन्दावन स्टेशन है।' 'वृन्दावन' शब्द कानमें पहुँचते ही बाबाजी महाशयने सिंहकी तरह हुंकार भरी और एक उछालमें प्लेटफार्म पर कूदकर व्याकुल भावसे रजमें लोटने लगे। किसकी ताकत थी जो उन्हें स्थिर करता। सर्वाङ्ग धूल-धूसरित हो गया। अश्रुजलसे वक्षस्थल भीग गया। नामकीर्त्तन पूर्ववत् चलता रहा। बहुत देर बाद जब वे कुछ स्थिर हुए तो चारों ओर लोगोंकी भीड़को देख उन्होंने सबको दण्डवत् प्रणाम किया और सभीने उन्हें प्रतिप्रणाम किया। नित्यस्वरूप सबका परिचय देने लगे, 'यह हमारे माधव दादा हैं; हमसे बहुत स्नेह रखते हैं। नवद्वीपदादासे इनका विशेष प्रेम था। गोविन्ददादा इनके साथ

ही श्रीराधाकुण्डमें रहते हैं और ये हमारे काकागुरु हैं, इनका नाम है श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी महाशय, ये सिद्ध जगन्नाथ दास बाबाजी महाशयके शिष्य हैं।' यह सुनते ही बाबाजी महाशयने उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उन्होंने भी झट उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया, और बोले, 'आओ, मेरे सोनेके चाँद ! आज मैंने एक रत्न पाया। चलो रात हो गई है, स्थान पर चलो।' इतना कहकर वे उनके कंधे पर हाथ रखकर चलने लगे। बाबाजी महाशय श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी महाशयको आगे कर और माधवदादाका हाथ पकड़ कीर्त्तन करते-करते गोविन्दजीके मन्दिरकी परिक्रमा करते हुए गङ्गाजी के मन्दिर जा पहुँचे। वहीं उनके ठहरनेकी व्यवस्था की गई थी। पता नहीं क्यों, गोविन्ददादा बाबाजी महाशयसे दूर ही दूर रहकर सेवा की व्यवस्था कर रहे थे। प्रेमकी गति वक्र है। जहाँ जितना प्रेम होता है, वहाँ उतना ही अभिमान भी होता है। नित्यस्वरूप दादा गोविन्ददादाको बाबाजी महाशयके पास ले गये, तो उन्होंने आग्रहके साथ उन्हें आलिंगन करते हुए प्रेमगद्गद् कण्ठसे कहा, 'क्यों रे गोविन्द ! तू इतने दिन मुझे छोड़कर कैसे रहा यहाँ ? कैसा कठोर हृदय है तेरा ! ला, क्या-क्या बाल्यभोग है, ले आ, बड़ी प्यास लग रही है।' गोविन्द-दादा रहस्य भरे स्वरसे बोले, 'हाँ जानता हूँ, बड़े प्रेमी पुरुष हैं न आप' और द्रुतगतिसे जाकर शरबत और बाल्यभोग ले आये। बाबाजी महाशय श्रीरामहरिदास बाबाजी महाशय, माधवदास बाबाजी महाशय आदि महात्माओंको साथ लेकर बाल्यभोग प्रसाद पाने बैठे। थोड़ी देर बाद महाप्रसाद पाकर सब अपने-अपने स्थानको चले गये।

श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी, श्रीमाधवदास बाबाजी

महाशय आदि नाम मात्रको अपनी-अपनी भजनकुटीमें जाते; वे सदा बाबाजी महाशयके साथ ही रहते। गङ्गाजीका मन्दिर यमुनाजीके पास है। बाबाजी महाशय अवसर पाते ही भ्रमर-घाटपर जा बैठते। उधरसे ब्रजनारियोंकी टोलियोंको जाते देख उन्हें सखी-मंजरियोंसे घिरी राधारानीके रूपका उद्दीपन हो जाता, मोरकी आवाज सुन और भौंरोंका गुञ्जन सुन, और तरु-लताओंकी शोभा देख वे भावाबिष्ट हो जाते।

गङ्गा-मन्दिरमें चार-पाँच दिन रहनेके बाद वे नित्य-स्वरूप दादा, अटलदादा आदिके विशेष आग्रह पर श्रीमदन-मोहन पाड़ामें कड़ली-कुञ्ज चले गये। उनका अपूर्व कीर्त्तन सुन और अकल्पनीय भावावेश तथा अदृष्टपूर्व सुमधुर सरल व्यवहार देखकर धीरे-धीरे वृन्दावनवासी आबाल, वृद्ध, युवक उनके प्रति आकृष्ट होने लगे। एक दिन एक वृद्धने आकर पूछा, 'बाबा, श्रीराधागोविन्द-प्राप्तिका सहज उपाय क्या है ?'

बाबाजी—कलिके जीवोंके लिये कृपाके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं।

वृद्ध—कृपाको पानेका उपाय ?

बाबाजी—कृपा पानेका उपाय है कृपा। भगवान् कृपा-परवश है। कृपा उनसे जो कराती है वही करते हैं। आहार-विहार, शयन-स्वप्न, जागरण किसी भी बातमें वे बिन्दुमात्र भी स्वतन्त्र नहीं; पूरी तरह कृपाके आधीन हैं। कृपा उन्हें जिस व्यक्तिके पास भेजती है उसका कुल, शील, रूप, गुण, जाति, विद्या, भजन-साधन कुछ भी वे नहीं देखते; बिना कुछ सोचे-बिचारे यंत्रारूढ़ पुतलीकी तरह उसके पास पहुँच जाते हैं, इच्छा न होते हुए भी उस पर दया करते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा है—'अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसया पाययदप्य-

साध्वी। लेभे गतिं धात्र्यचितां तदन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजामः।' सोचिये, पूतनाने कृपा किस कारणसे पाई ? कंसके आदेशसे क्रूर राक्षसीने कृष्णको मारनेकी नियतसे स्तनमें कालकूट विष लगाकर उनके मुँहमें दिया। कृपामय कृष्णने उसे धात्री जनोचित गति प्रदानकी। तभी तो कहता हूँ, कृपा के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं, जिससे कृष्ण-प्राप्ति हो सके।

वृद्ध—ठीक है। यदि वे बिना सोचे-बिचारे ही कृपा करते हैं, तो सभी पर समान भावसे कृपा क्यों नहीं होती ? कोई तो सदा आनन्द-सागरमें डूबा रहकर भगवद्धाममें भक्तोंके साथ उनका सान्निध्य-सुख भोगता है, और कोई सदा असत् संग और असत् कार्योंमें रत रहकर अशेष यंत्रणादायक नरक भोगता है। ऐसा क्यों ? यदि यह कहें कि सब अपनी-अपनी सुकृति-दुष्कृतिका फल भोगते हैं, तो कृपा कहाँ रही ? जिसके पास सुकृति है, वह तो अपनी शक्तिके प्रभावसे ही भगवद्भक्ति या भगवान्का सान्निध्य प्राप्त कर लेगा। उसमें फिर कृपाकी क्या बात ? यदि वे पूतनाकी तरह सभी असुर प्रकृति वाली स्त्रियोंको मातृस्थानीय गति प्रदान करें तभी तो उनकी अहैतुकी कृपा मानी जा सकती है, नहीं तो कहना न पड़ेगा कि उनमें पक्षपातका दोष है ?

बाबाजी—भाई, किसी भी भावसे सही, जिस तरह पूतना कृष्णको पानेके लिये उन्हें गोदमें ले उनके मुखमें अपना स्तन देनेके लिये तन्मनस्का थी, उसी तरह लोभ-परवश हुए बिना कृपा कैसे ग्रहणकी जा सकती है ? विकारग्रस्त रोगियोंको अच्छा वैद्य कृपा-परवश हो औषधि देता है, फिर भी वे उसे नहीं लेते अथवा दूर फेंक देते हैं। इसी तरह जब तक भगवत्प्राप्ति की कामना नहीं होती, तब तक कृपा ग्रहण नहीं की जा

सकती। तभी तो शास्त्र कहते हैं—'कृष्णभक्तिरस भाविता मतिः क्रियतां यदि कुतोऽपि लभ्यते। तत्र मूल्यमेव लौल्यमेकलं जन्मकोटि सुकृतैर्न लभ्यते ॥' उन्हें अथवा उनकी कृपाको पानेके लिये लोभ अथवा प्रबल इच्छा ही एकमात्र सोपान है।

वृद्ध—समझा। पर लोभ कैसे हो ?

बाबाजी—भाई, लोभ नित्यसिद्ध है। जीव कर्मके अनुसार चाहे जो शरीर क्यों न धारण करे, लोभ साथमें रहता है। 'सुखं मे भूयात् दुःखं माभूत्' यह भावना जीवमात्रमें रहती है। जीव सुखके लोभसे दौड़-दौड़कर नाना प्रकारके कार्य करता है, यहाँ तक कि वह लोभके कारण हिताहितका ज्ञान भी खो देता है। रूप लोभी पतंगे अग्निको सुन्दर, सुखप्रद जान अग्निकुण्डमें कूदकर कष्टसे छटपटाते हुए जीवन त्याग देते हैं, उन्हें देखकर भी दूसरे पतंगोंको होश नहीं आता और वे भी अग्निकुण्डमें गिर पड़ते हैं। उसी तरह लोग सुखके लोभमें अंधे हो प्रकृत सुखमय पदार्थको त्यागकर काम क्रोधाग्नि रूप इस संसार कूपमें कूद पड़ते हैं और परिणाममें दुःख ही भोगते हैं। इसमें भगवान्‌का क्या दोष ? उन्होंने संसारको विषमय तो बनाया नहीं। जीव शिक्षाभूमिको विलासभूमि मानकर, अभक्ष्य भक्षण कर, जहाँ न जाना चाहिये वहाँ जाकर, जो न कहना चाहिए उसे कहकर, जिसे न छूना चाहिए उसे छूकर, जिसे न देखना चाहिए उसे देखकर, अनादिकालसे यंत्रणा भोगता आ रहा है। भगवान् उसे प्रकृत आनन्दमय पदार्थ देते भी हैं, तो वह उसे दुःखमय समझकर छोड़ देता है। यदि दैवात् महत् कृपासे उसे होश आ जाय, तो काम प्रेममें बदल कर कृष्ण कर्ममें, क्रोध भक्तिके प्रतिकूल पदार्थमें, मोह-मद इष्टके गुणगानमें और मात्सर्य प्रभुके काममें नियुक्त होकर लोभको प्रकृत लोभनीय

परम सुखमय पदार्थमें नियुक्त कर दें । तब यह संसार ही भगवत्कृपा प्राप्तिमें सहायक और स्त्री-पुत्रादि शिक्षागुरुके रूपमें बदल जायँ ।

वृद्ध—तो महत्कृपा ही भगवत्प्राप्ति या भगवत्कृपा-प्राप्ति का मूल साधन है ।

बाबाजी—हां । 'महत्कृपा बिना कोनो कार्य सिद्ध नय । कृष्ण कृपा दूरे रहु संसार ना जाय क्षय ।'

इतनी देर वृद्ध भक्त उनकी बातें सुनते रहे और अपनी बात कहते रहे । जैसे ही उन्होंने कहा, 'महत्कृपा ही एकमात्र अवलम्बन है' वे उनके पैर पकड़ कर साश्रुनयन और गद्गद कण्ठसे कहने लगे, 'बाबा, इस गँवार विकलेन्द्रिय वृद्ध पर कृपा करनी पड़ेगी । इतने दिन व्यर्थ अभिमानमें खो दिये । समझता रहा कि भजन करनेसे ही भगवत्प्राप्ति हो जाती है । आज आपके संग-प्रभावसे पता चला कि कृपाके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है; आगे-पीछे कृपा ही एकमात्र सहारा है । वृद्धकी अवस्था देखकर बाबाजी महाशयने झट उन्हें उठा आलिगन कर कृतार्थ किया और नाना प्रकारसे सान्त्वना दी ।

बाबाजी महाशय श्रीधाम वृन्दावन पधारे हैं, यह बात भक्त-वैष्णवोंके बीच फैल गई । सिद्ध भगवानदास बाबाजी महाशयके प्रिय शिष्य सिद्ध महात्मा श्रीयुत जगदीशदास बाबाजी महाशय कड़ली कुञ्जसे कुछ ही दूर कालीदह पर रह कर भजन करते थे; एक दिन वे कुछ भक्तोंके साथ कड़ली कुञ्ज पधारे । बाबाजी महाशय ऊपरके मंजिलमें बैठे थे; खबर पाते ही वे द्रुतगतिसे जाकर, उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर बड़े सम्मान के साथ ऊपर लिवा लाए । बैठनेके लिये आसन दिया, और इष्टालाप आरम्भ किया । परमार्थ सम्बन्धसे श्रीयुत जगदीशदास

बाबाजी महाशय उनके काका थे, अतः वे वात्सल्यभावसे बोले, 'भाई, तुम वृन्दावन आए हो यह सुनकर भी मैं तुमसे मिल न सका। मैं वृद्ध हूँ, शहरमें जाकर मिलना मेरे लिए असम्भव है। अब तुम्हें पासमें आए जानकर मिलनेकी बड़ी इच्छा हुई। अच्छे तो हो ?' बाबाजी महाशयने हाथ जोड़कर कहा, 'आपकी कृपासे खूब आनन्दसे हूँ। आप इतना कष्ट उठाकर क्यों आये ? मैं तो स्वयं ही आता, पर ठीक है सन्तानके प्रति इतना वात्सल्य न होनेसे भो तो काम नहीं चलता।' इसपर ज़गदीश-दास बाबाजी महाशयने कहा, 'भाई, तुम हमारे लिए आदरकी वस्तु हो। निताइ-गौराङ्गकी कृपासे तुम्हें परमधन प्राप्त है, तुम्हारे गौरवमें हम गौरवान्वित हैं। प्रार्थना करता हूँ कि तुम दिनों दिन उन्नति करो। भक्तिपथ पर बहुत-सी शाखा-उप-शाखाएँ फैल जानेसे नाना प्रकारके विस्फोट हो रहे हैं। विशुद्ध पथपर चलने वाले लोग बिरले ही हैं। निरपराध होकर दीर्घ जीवन-लाभ करो और आपामर जनसाधारणको विशुद्ध प्रेम-भक्ति पर आधारित महाप्रभु द्वारा प्रवर्त्तित और गोस्वामी पादों द्वारा आचरित पथका प्रदर्शन करो, जिससे जगतके जीव धन्य हों।' इस प्रकार कोई दो घण्टे तक इष्टगोष्ठी होती रही। माधु-करीका समय जानकर जगदीश बाबाने अपनी भजनकुटीको लौटनेकी इच्छा व्यक्तकी, तो बाबाजी महाशय हाथ जोड़कर बोले, 'बाबा, मेरी वासना है कि मैं जितने दिन यहाँ रहूँ, आप यहीं माधुकरी करें। यदि अनुमति दें, तो महाप्रसाद आपकी भजनकुटी पर भिजवानेकी व्यवस्था कर दूँ।' वे बोले, 'भाई, मैं किसीका निमन्त्रण न लेता हूँ, न किसीका परोसा लेता हूँ। अच्छा, एक दिन तुम्हारे साथ बैठकर महाप्रसाद पाऊँगा; आज मत रोको। मैं चलता हूँ।' इतना कहकर वे कालीदह चले

गये। बाबाजी महाशय कुछ दूर तक उनके साथ गए और उनके आदेश करने पर लौट आए। इस प्रकार कभी जगदीश बाबा इनके पास आते और कभी ये उनकी कुटी पर जाते। प्राय: नित्य ही दोनों मिलकर इष्ट-गोष्ठी करते।

इस तरह परमानन्दमें दिन बीतने लगे। एक दिन अपराह्नमें श्रीयुत केशवानन्द स्वामी पधारे। बहुत दिनोंसे इन लोगोंका परस्पर भ्रातृभाव था। बाबाजी महाशय इन्हें दादा कहते। स्वामीजी बोले, 'भाई, तुम्हारे यहाँ आनेकी बात सुनी थी, पर नाना कामोंमें व्यस्त रहनेके कारण न आ सका। मेरा अपराध न लें।'

बाबाजी—मुझे तो पता नहीं था कि आप यहाँ हैं, नहीं तो मैं स्वयं जाकर आपके दर्शन करता।

स्वामी०—भाई, मैंने राधाबागमें एक आश्रम बना लिया है, उसीके काममें व्यस्त रहा। इसलिए न आ सका।

बाबाजी—काम पूरा हो गया ?

स्वामी०—हाँ। कल उसकी प्रतिष्ठाके उपलक्षमें कुछ होम, जप, पूजादि हैं। तुम्हें अपने दलके साथ वहाँ जाना होगा। निमन्त्रणके लिए ही मैं आया हूँ। अवश्य आना।

बाबाजी—दादा, वह तो अपना ही आश्रम है; उसके लिए निमन्त्रण की क्या आवश्यकता ?

स्वामी०—नहीं, नहीं, कल वहाँ कीर्त्तन करना होगा और आश्रम की प्रतिष्ठा होगी, यही बताने आया हूँ। निमंत्रण क्या करूँगा ? तुम्हारा आश्रम है, तुम जाओगे ही। मैं तो भाई, निमित्तमात्र हूँ।

इस प्रकार नाना प्रकारसे इष्टालाप कर स्वामीजी चले गए। अटलदादा बाबाजी महाशयसे बोले, 'आपने स्वामीजी

का निमन्त्रण ग्रहण कर लिया। वे लोग तो ज्ञानमार्गावलम्बी हैं; वे ठाकुर-देवता नहीं मानते; किसीको भोग नहीं लगाते। हम लोग वहाँ प्रसाद कैसे पायँगे ?'

बाबाजी—अच्छा, ये सब तुम्हें सोचनेकी आवश्यकता नहीं। तुम लोग केशवानन्द दादाको पहचानते नहीं; वे परम-भक्त हैं; गौराङ्गदेवमें उनका सुदृढ़ भक्ति-विश्वास है। केवल वेश मत देखा करो। महापुरुष किस वेशमें, किस भावसे रहते हैं, कौन जान सकता है ? बहुतसे महात्मा अपनेको प्रतिष्ठाके हाथोंसे बचानेके लिये घोर पाखण्डीके वेशमें रहते हैं। कल देखना, मेरे साथ जो महाप्रभु हैं, वे वहाँ जाकर उनके यज्ञेश्वर के रूपमें अधिष्ठित हो सब भोग स्वीकार करेंगे।

नाना प्रकारकी कथावार्त्तामें रात हो गई; यथासमय सबने महाप्रसाद पाकर विश्राम किया। दूसरे दिन कोई दस बजे बाबाजी महाशय साथियों सहित नाम करते-करते महाप्रभु का चित्रपट साथ ले राधाबागमें स्वामीजीके आश्रम जा पहुँचे। अपूर्व कौतूहल ! कीर्त्तन जैसे ही आश्रमके पास पहुँचा, स्वामीजी शिष्यों सहित आकर उसे भीतर लिवा ले गये। बाबाजी महाशयके आदेशानुसार उनके साथियोंने महाप्रभुके चित्रपटको उस वेदीपर बिठा दिया, जो हवनके लिये तैयारकी गई थी। इन लोगोंने और स्वामीजीके शिष्योंने मिलकर दो घण्टे तक घमासान कीर्त्तन किया। स्वामीजी प्रसन्न हो बोले, 'जब सर्व यज्ञेश्वर श्रीमन्महाप्रभुने आकर यज्ञवेदीको स्वीकार कर लिया, तब समझो कि सारा यज्ञ सफल हो गया। अब पृथक्से यज्ञकी क्या आवश्यकता है ?' यह सुनकर सभी हरिबोल ध्वनि कर उठे। बाबाजी महाशयने आनन्दमें नृत्य करते-करते स्वामीजी को आलिङ्गन कर लिया। दोनों एक दूसरेको वक्षसे लगाये

प्रेमविभोर हो हँसने, रोने और नृत्य करने लगे। एक साथ दोनों के शरीरमें अश्रु-कम्प-पुलकादि सात्विक विकार प्रकट हो गये। दोनों महापुरुषोंके शिष्य यह सब देखकर अवाक्! दोनोंके शिष्य समझते थे कि उपासना और आन्तरिक भावको लेकर दोनों एक-दूसरेसे पृथक् हैं, पर अब कौन कहे कि दोनोंमें किसी प्रकारका पार्थक्य है ? कुछ समय बाद दोनों स्थिर हुए और बैठ गये। सभी शिष्य चारों ओर बैठकर महाप्रभु द्वयके मुखारविन्दसे निकला भगवल्लीला-कथामृत पान कर अपने कर्ण-चकोरोंको तृप्त करने लगे। नाना प्रकारके भगवत्प्रसङ्ग चल रहे थे। उसी समय स्वामीजीके एक शिष्यने आकर कहा, 'रसोई हो चुकी है, अब क्या करना है ?' स्वामीजीने बाबाजी महाशयसे पूछा तो आप बोले, 'यज्ञ-वेदी पर जो यज्ञेश्वर श्रीगौराङ्गदेव विराजमान हैं, उन्हें सब चीजोंका भोग लगेगा।' यथासमय भोग-आरती कीर्त्तनके बाद दोनों महापुरुषोंने उपस्थित भक्तजनोंके साथ महाप्रसाद-सेवन कर किञ्चित विश्राम किया। स्वामीजी चाहते थे कि उस दिन बाबाजी महाशय साथियों सहित श्रीमन्महाप्रभुको लेकर आश्रममें ही रहें। यह प्रस्ताव बाबाजी महाशयके आगे रखा, तो वे बोले, 'दादा! यह तो मेरा अपना आश्रम है। फिर जब इच्छा होगी आ जाऊँगा। पर आज यहाँ रहनेसे काम नहीं चलेगा, क्षमा कीजिए।' इतना कहकर वे दण्डवत् प्रणाम कर नाम करते-करते कोई साढ़े चार बजे कड़ली कुञ्ज चले गये।

———

राजर्षि बनमालीबाबूके साथ तत्वालोचना

एक दिन राजर्षि बनमालीराय बहादुरके आदेशसे उनके मैनेजर श्रीयुत कामिनीबाबू बाबाजी महाशयसे आकर बोले, 'मुझे राजर्षि बनमालीबाबूने भेजा है। नाना प्रकारके कामोंमें व्यस्त रहनेके कारण वे स्वयं नहीं आ सके। उनकी त्रुटि क्षमा कीजिए। उन्होंने दण्डवत् प्रणाम कर विनीत प्रार्थनाकी है कि परसों उनके ठाकुर श्रीश्रीराधाविनोद-विनोदिनी गोष्ठाष्टमीके उपलक्ष्यमें वनभ्रमण करने निकलेंगे, अतः आप साथियों सहित उनके श्रीश्रीराधाकुण्डवाले मकान पर पहुँचनेकी कृपा करें।

बाबाजी—एक साथ श्रीराधाकुण्ड, श्यामकुण्ड, कुंडेश्वर-कुंडेश्वरी और उनके प्रिय भक्त राजर्षि बहादुरके दर्शन होंगे, यह मेरा परम सौभाग्य है। कब चलना होगा ?

कामिनी०—आज्ञा दें तो कल ही सारा प्रबन्ध किया जाय।

बाबाजी—भाई, निताइचाँदकी जो इच्छा होगी सो करेंगे। बलिहारी, निताइ कैसे दयालु हैं ! श्रीराधाकुण्ड-श्यामकुण्डके दर्शन करनेमें मुझे कष्ट न हो, इस उद्देश्यसे वे नाना प्रकारका प्रबन्ध कर रहे हैं; कैसी अद्भुत कृपा है। प्रभु ! धन्य है आपकी करुणा ! आप इच्छामात्रसे सब कर सकते हैं; हम तो विशेष निपुणतासे सोचकर भी उसे धारण नहीं कर सकते। कृपामय ! इस प्रकारकी अहैतुकी कृपाकी बात और किसी युग में नहीं सुनी।' यह कहते-कहते उनके नेत्र अश्रुपूर्ण और रक्त-

वर्ण हो गए। गद्‌गद् कण्ठसे वे निताइचाँदका न जाने कितना गुणगान करने लगे।

दूसरे दिन यथासमय अटलदादाने कुछ गाड़ी-इक्कोंका प्रबन्ध किया। बाबाजी महाशयकी आज्ञानुसार तीन व्यक्ति महाप्रभुका चित्रपट साथ ले एक गाड़ीमें बैठकर पहले ही राजर्षिके पास पहुँच गये। थोड़ी देरमें अटलदास इक्केमें बैठकर आए और बताया कि बाबाजी महाशय साथियों सहित मानसीगङ्गा तक आ पहुंचे हैं। राजर्षि बहादुर श्रीहरिचरणदास बाबाजी, श्रीरसिकदास बाबाजी, श्रीविष्णुदास बाबाजी, छोटे नित्यानन्ददास बाबाजी आदि वैष्णवोंको साथ ले श्रीकुण्ड और कुसुम सरोवरके बीच एक बगीचेमें जा पहुँचे।

इधर बाबाजी महाशय मानसीगङ्गाका जल स्पर्श कर गिरिराजको दण्डवत् प्रणाम कर कुसुम सरोवर तक गाड़ीसे आये। गिरिराज-दर्शन करते ही उनकी चित्त-गति बदल गई; वे एकदम बाह्यज्ञान शून्य हो गए। कुसुम सरोवर पर आते ही पैदल चलनेका निश्चय कर गाड़ीसे उतरकर उन्होंने प्रेम-गद्‌गद् भावसे प्रिय रामदासको नाम आरम्भ करनेका आदेश दिया। रामदादाने प्रसन्न हो मन-प्राण झकझोर देनेवाले स्वरमें नाम शुरू किया। सभी पैदल नाम करते हुए चलने लगे। सिद्ध महात्मा श्रीयुत प्रेमदास बाबाजी महाशयके शिष्य (कुसुम सरोवरवासी) श्रीयुत श्यामदास बाबाजी महाशय न जाने किस उद्देश्यसे सभीकी आँखोंसे ओझल रहकर कुसुम सरोवरके निकट एक स्थान पर प्रच्छन्न भावसे वास कर रहे थे। बाबाजी महाशय कीर्त्तनको छोड़ उस गुप्त स्थान पर जा पहुँचे और श्यामदास बाबाजीका हाथ पकड़कर चिर परिचितकी तरह बोले, 'क्यों रे श्यामदास ! यहाँ कैसे ? तू तो मेरा छोटा भाई

है, मैं तुझे ढूँढ रहा था।' ऐसा कहकर वे उन्हें अपने साथ लेकर कीर्त्तनमें वापस आ गये। वे विस्मित भावसे आपकी बाईं ओर कीर्त्तनके साथ नाम करते हुए चलने लगे। कीर्त्तन-ध्वनि सुनकर राजर्षि आदिने आगे आकर दण्डवत् प्रणाम किया। बाबाजी महाशयने प्रतिदण्डवत् कर सभीको आलिङ्गन करते हुए प्रेम-विभोर होकर कहा, 'आज मैं धन्य हुआ। तुम सब राधाकुण्डवासी हो, ऐसी कृपा करो कि कृपामयी राधारानी अपनी दासीके रूपमें मुझे अङ्गीकार करें। कुण्ड और कुण्डेश्वरी में भेद नहीं, 'यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा।' तुम लोग कुण्डवासी हो, श्रीमतीके निकट अन्तरङ्गा हो; मुझ पर कृपा करो।' इस प्रकार कहते-कहते वे विभोर हो गये। यह देखकर श्रीहरिचरणदास बाबाजी बोले, 'अच्छा, पता चलेगा कौन अन्तरङ्गा है, पहले श्रीकुण्ड-परिक्रमा कर विनोदिनीके पास चला जाय।' इतना कहकर उन्होंने आपको सबसे आगे कर दिया। श्रीराधाकुण्ड एवं श्यामकुण्डको दण्डवत् प्रणाम कर और दोनों कुण्डोंकी परिक्रमा कर सबने विनोद-बाड़ीमें प्रवेश किया। उनके बाड़ीमें प्रवेश करते ही राजर्षि बहादुर बाबाजी महाशयसे बोले, 'दादा आइये, विनोद-विनोदिनीके दर्शन कीजिये।' वे प्रसन्न हो उनके साथ विनोद-मन्दिरमें गये। विनोद-विनोदिनीका अपूर्व रूप-लावण्य, शृङ्गार, कटाक्ष-भंगिमा आदि देखकर वे एकदम मुग्ध हो गये और छोटे-छोटे पद-स्तवादि गाने लगे ? आँसुओंसे वक्षस्थल भीगने लगा। अवसर पाते ही सारे सात्विक विकारोंने उन्हें आ घेरा। कुछ देर बाद भाव-संवरण कर उन्होंने राजर्षिके अनुरोध पर सभी के साथ शीतलभोग सेवन किया। अपूर्व आनन्द ! सबसे पहले उन्होंने थोड़ा प्रसाद हाथमें ले हरिचरणदास बाबाजीके मुँहमें

दिया; हरिचरणदास बाबाजीने भी अपनी पत्तलसे थोडा प्रसाद ले उनके मुँहमें दिया। इस प्रकार वे सबके मुँहमें और सब उनके मुँहमें प्रसाद देने लगे। सब आनन्द-सागरमें निमग्न हो गये। इससे पूर्व वृन्दावनमें इन लोगोंने इस जातिके आनन्दका कभी उपभोग नहीं किया था; अतः आज सभीको एक अभिनव आनन्दकी प्राप्ति हुई। परमानन्दपूर्वक शीतलभोग पाकर सब एक स्थान पर बैठ इष्टगोष्ठी करने लगे।

कोई कैसा भी प्रश्न करता, बाबाजी महाशय समस्त सिद्धान्तोंका चूड़ान्त एकमात्र 'कृपा' ही बताते। कृपा बिना कुछ नहीं हो सकता, यह बात बड़ी सरस भाषामें सभीको समझाते। महापुरुषोंके हृदयमें जब जिस विषयका आवेश होता है, वे तब उसी विषयको पराकाष्ठा तक पहुँचा देते हैं। जबसे बाबाजी महाशय श्रीधाम वृन्दावन पधारे हैं, तभीसे उनके हृदय में निरन्तर श्रीमन्महाप्रभुकी अशेष कृपाकी स्फूर्त्ति हो रही है। उसके आवेशमें प्रायः हर समय वे श्रीरूप गोस्वामीपाद कृत 'अनर्पितचरीं चिरात् करुणयावतीर्णः कलौ, समर्पयितुमुन्नतोज्ज्वलरसां स्वभक्तिश्रियम्। हरिः पुरटसुन्दर-द्युति-कदम्ब-सन्दीपितः। सदा हृदयकन्दरे स्फुरतु वः शचीनन्दनः' श्लोककी समालोचना करते हैं और कहते हैं कि श्रीमन्महाप्रभु करुणा-परवश हो चिर-अनर्पित निज-संचित गुप्त सम्पत्तिको जन-साधारणमें बाँटनेके लिये ही श्रीधाम नवद्वीपमें अवतीर्ण हुए हैं। आप साथ ही यह भी कहते हैं कि श्रीरूप गोस्वामीपादने 'युष्माकं हृदये शचीनन्दनः स्फुरतु' आशीर्वाद सूचक जिस वाक्य का प्रयोग किया है, उसका तात्पर्य है 'चिराददत्तसंचितनिज-गुप्त वित्तसमर्पणरूपकरुणामयत्वेन स्फुरतु इति यावत्।' हम कलिहत मायामुग्ध जीव हैं, कोई साधन आदि करें ऐसी शक्ति

हममें कहाँ ? यदि हम जैसे जीवोंका कोई कर्त्तव्य है, तो वह है केवल निताइ-गौराङ्गकी असीम कृपाकी जय बोलना। हम कैसे अकृतज्ञ हैं। यदि कोई धनी व्यक्ति हमें सामान्य सहायता भी दे देता है, तो हम जीवनभर उसे नहीं भूलते; सदाके लिये उसके कृतज्ञ होकर उसकी दयाकी बातका ढिंढोरा पीटते रहते हैं; पर दाता-शिरोमणिने अपनी अमूल्य सम्पत्ति जनसाधारणको उनके घर जा जाकर आग्रह कर दी, फिर भी हमें दिनान्त-निशान्त में एकबार भी उनकी कृपाकी बात कहनेमें अथवा उनके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करनेमें संकोच होता है। बाबाजी महाशयकी बातें सुनकर हरिचरणदास बाबाजीने प्रश्न किया, 'अच्छा, हमें सदैव इसकी स्मृति क्यों नहीं रहती ?'

बाबाजी—कृपालब्ध वस्तुकी मर्यादा रखना बड़ा कठिन है। एक गल्प याद आती है। एक दिन श्रीधामपुरीके बड़े रास्ते से एक भद्रपुरुष समुद्रकी ओर जा रहा था। उसके कंधेपर एक बहुमूल्य शाल था और पैरोंमें जूते। रास्तेमें बड़ी धूल थी; दो-चार कदम चलनेके बाद हर बार वह शालसे जूतोंकी धूल झाड़ लेता था। कुछ लोग दूसरी ओरसे आ रहे थे; उनमेंसे एक वृद्ध पुरुषने दूसरोंसे कहा, 'बता सकते हो यह भद्रपुरुष कीमती शाल से जूते क्यों पोंछ लेता है ?' जब किसीकी कुछ समझमें न आया तो वह बोला, 'मुझे निश्चय है कि शाल इसके बापके जमानेका है और जूते इसके अपने खरीदे हुए हैं।' दूसरोंको इस पर विश्वास न हुआ। उसी समय जब वह भद्रपुरुष उनके निकट पहुँचा, तो वृद्धने उससे पूछा, 'भाई, ये शाल कितनेमें खरीदा ?' वह बोला 'बाबा, यह मेरे पिताजी पहनते थे; बड़ा भारी है और इसे पहनकर उतना सुख भी नहीं होता; पुरानी चीजें बहुत पसन्द नहीं आतीं।' तब वृद्धने जैसे ही कहा 'जूते ?'

वह बड़े उत्साहसे बोला, 'देखिये महाशय, ये जूते तीन दिन हुए मैंने पाँच रुपयेमें खरीदे हैं; बहुत अच्छे हैं न ?' ऐसा कहकर वह फिर शालसे उन्हें पोंछकर दिखाने लगा। सब लोग जूतों की प्रशंसा करने लगे और वह पुरुष सन्तुष्ट होकर चला गया। दूसरे लोग वृद्धसे बोले 'आपने यह बात कैसे जान ली ?' वृद्धने कहा 'भाई, पैतृक सम्पत्तिकी मर्यादा-रक्षा या उसका मूल्यांकन कौन करे ? कृपालब्ध वस्तु जो ठहरी ! अपनी कमाईके पाँच रुपये कृपालब्ध दो सौ रुपयोंसे भी बढ़कर हैं।' वास्तवमें यही बात है। परमदयाल निताइ-गौराङ्गने कृपा कर जो अमूल्य सम्पत्ति हम लोगोंको दी है, हम उसका कोई मूल्य नहीं समझते। हम यदि साधन कर इसका सौवाँ हिस्सा भी प्राप्त करते, तो हमें इसके महत्वका पता चलता।

इस प्रकार बातें हो रही थीं उसी समय एक व्यक्तिने आकर महाप्रसाद पानेके लिये कहा। राजर्षि बहादुरके आग्रह पर सब महाप्रसाद पाने बैठ गए। मानो आनन्दका फुहारा फूट पड़ा। बाबाजी महाशय जब जो काम करते, उसीमें आनन्दका अनुभव होता। यथासमय महाप्रसाद पानेका काम पूरा हुआ। पहलेसे ही राजर्षि बहादुरने साथियों सहित बाबाजी महाशयके ठहरनेके लिए श्रीकुण्ड-स्थित श्रीमदनमोहन-मन्दिर निश्चित कर रखा था। उन्होंने वहीं जाकर विश्राम किया।

दूसरे दिन सुबह उठते ही बाबाजी महाशयने साथियोंको आदेश दिया, 'रोज तीन बार श्रीकुण्डमें स्नान करना, नाम करते हुए दोनों कुण्डोंकी परिक्रमा करना, और कुण्ड पर रहने वाले वैष्णवोंकी भजनकुटियोंके आगे साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करना।' कोई साढ़े सात बजे राजर्षि बहादुर कुछ वैष्णवोंके साथ उनके पास आये। देखते ही दोनोंने एक दूसरेको दण्डवत्

प्रणाम किया। तत्पश्चात् बैठते हुए राजर्षिने हाथ जोड़कर कहा 'मेरी एक विनीत प्रार्थना है, जितने दिन राधारानी आपको कुण्ड पर रखें, आप श्रीविनोदविहारीजीका महाप्रसाद स्वीकार करें।' बाबाजी महाशयने कहा, 'भाई, निताइचाँद जो करायँगे सो होगा; इसके लिये चिन्ता क्या करनी ? तुम्हारी विनोदिनी मुझे प्रसाद देगी क्या ?'

राजर्षि—विनोद-विनोदिनी तो आपके ही हैं। एक निवेदन और है। आज गोष्ठाष्टमी है; विनोद-विनोदिनी गोष्ठ-विहारके लिये बाहर निकलेंगे; उनकी इच्छा है कि आप भी उनके साथ चलें।

बाबाजी—तुम्हारे विनोद-विनोदिनी मुझे साथमें ले चलेंगे ?

राजर्षि—नहीं ले चलेंगे, तो आपको यहाँ लाये ही क्यों हैं ?

बाबाजी महाशय मृदुभावसे हँसकर बोले, 'पता नहीं तुम्हारे विनोद-विनोदिनी की क्या इच्छा है। कब बाहर निकलेंगे ?'

राजर्षि—निकलते-निकलते दस बज जायँगे।

बाबाजी—दस बजे किस भावसे ?

राजर्षि—गोष्ठविहारके अनुसार ही बाहर निकलते हैं। पर क्या करें भोगादिमें कुछ देर हो जाती है।

यह सुनकर बाबाजी महाशय बड़े आनन्दित हुए। राजर्षि कुछ देर बाद आपके आदेशानुसार चले गये। आप स्नान-आन्हिकादि करके ही चुके थे कि विनोद-बाड़ीसे बुलावा आ गया। आप साथियोंको लेकर चल दिये। श्रीयुत रामहरि-दास बाबाजी, श्रीमाधवदास बाबाजी, श्रीहरिचरणदास बाबाजी

श्रीरसिकदास बाबाजी और भूँआ महाशय (एक विशेष विज्ञ, स्मरण-मननशील, सुरसिक भक्त जो प्रायः निरन्तर राजर्षिके पास रहकर इष्ट-गोष्ठी करते) आदि महात्माओंके साथ राजर्षि महाशय बाबाजी महाशयकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जैसे ही ये पहुँचे, सब खड़े होकर बड़े स्वागत-सत्कारके साथ इन्हें विनोद-मन्दिरके बगलमें एक कमरेमें लिवा ले गये। सभी तो लीला-स्मरण-परायण थे। बैठते ही इष्टगोष्ठी शुरू हो गई। सभी बाबाजी महाशयसे गोष्ठी आरम्भ करनेके लिये आग्रह करने लगे। आपने कहा 'लीला-कथाके विषयमें मैं क्या जानूँ? देखो, यदि तुम्हारे आशीर्वादसे योगमाया पौर्णमासी देवी कृपा कर कुछ कहलवायँ तो ....' कहते-कहते वे आविष्ट भावसे विनोद-विनोदिनीके मध्याह्न-लीला-विलासकी बात कहने लगे। सभी विभोर होकर सुनने लगे। किसीको बाह्यज्ञान नहीं। सभी एक अभिनव आनन्दसागरमें डूब गए। इस प्रकारकी गोष्ठियाँ तो प्रायः ही होती रहती थीं, पर सभीने आज एक अभिनव आनन्द का अनुभव किया। सभी नीरव थे; केवल बाबाजी महाशय धीरे-धीरे एक-एक बात कहते थे और आनन्दका स्रोत उमड़ पड़ता था। थोड़ी देरमें एक व्यक्ति आकर बोला 'विनोदका भोग हो गया, महाप्रसाद तैयार है।' इससे सबका ध्यान टूट गया। राजर्षि बोले 'दादा, विनोदजीका भोग हो चुका है, महाप्रसाद दर्शनके लिये जाना होगा।' बाबाजी महाशय आनन्दमें ताली बजाकर बोले, 'भाई, मैं तो यही चाहता हूँ; मैं तैयार हूँ। महाप्रसादके लोभसे ही तो मैं पुरीधाममें पड़ा हूँ और श्रीजगन्नाथके साथ दादा (बाबा) का सम्बन्ध बनाये हुए हूँ; और अच्छे-अच्छे महाप्रसादके लोभसे ही यहाँ आया हूँ। चलो, सबसे आगे मैं चलता हूँ।' श्रीरामहरिदास बाबाजी

महाशय हंसते-हँसते बोले 'बाबा ! तुम्हारा ही काका मैं हूँ; इस विषयमें तुम्हारी अपेक्षा मेरा पद और भी ऊँचा है।' इस प्रकार नाना प्रकारसे रस-कल्लोल करते हुए सब महाप्रसाद-सेवा करने बैठ गये। पर हरिचरणदास बाबाजी महाशय सबसे बचकर चले गये। पंगतमें उन्हें न देखकर बाबाजी महाशय राजर्षिसे बोले 'बनमाली ! हरिचरणदासजी दिखाई नहीं दे रहे ?' इस पर राजर्षि बोले 'उनकी माधुकरीका समय हो गया है, तभी वे चले गये हैं।' इस पर बाबाजी महाशय बोले 'तो ठीक है; अपना याजन छोड़ना किसी प्रकार उचित नहीं।'

यह कहकर वे नाना प्रकारकी सुललित रसपूर्ण कथा-वार्त्ताके साथ आनन्दसे महाप्रसाद पाने लगे। सभी आनन्द-विभोर हैं और सभीका ध्यान बाबाजी महाशयकी ओर है। बाबाजी महाशयकी एक-एक बात सभीके मन-प्राण मत्त कर देती है। इसी समय, जब सब परमानन्दपूर्वक महाप्रसाद-सेवन में जुटे थे, एक मधुकरी-पात्र हाथमें लिये हरिचरणदास बाबाजी महाशय 'जय राधे' कहकर विनोदजीके आगे आकर खड़े हुए। 'जय राधे' सुनते ही पुजारीने एक दोना दाल और एक दोना तरकारी एवं कुछ रोटियाँ उनके पात्रमें डाल दीं और वे चले गये। ये लोग जिस जगह बैठकर महाप्रसाद-सेवन कर रहे थे, वहाँसे सब दिखाई देता था। यह देखकर बाबाजी महाशय कुछ मन्द-मन्द मुस्कराये और महाप्रसाद पाते रहे। महाप्रसाद-सेवन हो चुकने पर सब आचमन कर पूर्ववत् विनोद मन्दिरके पास वाले कमरेमें जाकर इष्टगोष्ठी करने लगे। कुछ देर बाद एक व्यक्तिने आकर राजर्षिसे कहा 'विनोदजीके बाहर पधारनेका समय हो गया।' यथासमय विनोद-विनोदिनी एक सुसज्जित पालकीमें चढ़े। बाबाजी महाशयने भाव-गद्गद

कण्ठसे पद गाया—

राधाश्याम एकासने सेजेछे भालो ।
राइ आमादेर हेमबरणी, श्याम चिक्कणकालो ॥
गले बनफूलेर माला, बामे चूड़ाटि हेला ।
जुगलरूपे निकुंजबन करेछे आलो[1] ॥
(दोहाँर) बाहुते बाहु, जेन चाँदेते राहु ।
चूड़ा बेणी घेराघेरि करि दाँड़ालो[2] ॥
करे मोहन मुरली, राइ अंगे पड़िछे ढलि ।
भानु दुलाली मोदेर नन्द दुलाल ॥
(जत) सखी मंजरी, तारा जाय सारि सारि ।
माझे किशोर-किशोरी, कि शोभा ह'लो ॥
(जत) बरज बाला, रूपे दशदिक हइल आलो ।
जुगल चाँदे घेरि चाँदेर माला चलिलो ॥
(नाचे) मयूर मयूरी, गाय शुक आर सारी ।
जुगलरूप हेरि सबार नयन जुड़ालो ॥
(तोरा) आय सहचरि, हेरबि जदि जुगल माधुरी
मेघ बिजुरी जड़ाजड़ि कि शोभा ह'लो ॥

सभी लोग आनन्दमें मग्न हैं। विनोद-विनोदिनी चतुर्दोले में बैठे हिलते-डुलते जा रहे हैं। चारों ओर इतनी भीड़ है कि कौन किसे देखे? एक तो विनोद-विनोदिनीका भुवन-मोहन रूप; दूसरे बाबाजी महाशयका मन-प्राण मत्त कर देनेवाला

---

[1]आलोकित, [2]खड़ा हुआ ।

सुमधुर कीर्त्तन ! यही कारण है कि सब लोग आकृष्ट होकर संकीर्त्तनके साथ-साथ ही चल रहे हैं। बड़े आनन्दके साथ सब लोग विनोद-विनोदिनीको लेकर कुसुम सरोवर और श्रीराधा-कुंडके बीच स्थित बगीचेमें जा पहुँचे। बिनोद-विनोदिनीके सिंहासनको एक बेदीपर रख दिया गया। बलिहारी उस माधुरी की ! सबको पहलेसे पता था कि गोष्ठाष्टमीके उपलक्ष्यमें विनोद-विनोदिनी इस बगीचेमें शुभागमन करेंगे; अतएव ब्रजवासी दूर-दूरसे आ रहे थे। इधर ग्वाले गाय-बछड़ोंको सामनेके खुले मैदानमें लाकर चराने लगे। श्रीमूर्त्तिके रूपमें नित्य लीला प्रकट है, ऐसा सभीको प्रत्यक्ष भासने लगा। बाबाजी महाशय एक-एक वस्तु देख नित्य प्रकट लीलाका अनुभव कर भाव-विभोर होने लगे। इधर ब्रजवासी रासधारी लोग नाना प्रकारकी लीलाओंका अनुकरण करते हुए सारंगी बजाकर नाचने-गाने लगे। आनन्दका सागर उमड़ पड़ा, जिसमें सभी लोग डूबने लगे। पर आनन्दका समय जल्दी ही बीत जाता है। यथासमय विनोदजीका भोगराग हो गया, फिर गो-सेवाको गई। तत्पश्चात् सभीने थोड़ा-थोड़ा महाप्रसाद लिया। क्रमशः सन्ध्यादेवी विनोदबिहारीके दर्शन करने आने लगीं, यह देख राजर्षि बहा-दुरने बाबाजी महाशयसे कहा, 'दादा, अब विनोद-विनोदिनीको लेकर मन्दिरमें चला जाय ?' वे कुछ अन्य मनस्क थे; राजर्षि की बात सुन चौंककर बोले 'अच्छा, चलो।' और नृत्य करते-करते विनोद-विनोदिनीके साथ चल पड़े। लौटते समय कीर्त्तन में पहलेसे दुगना आनन्द था। श्रीरामहरिदास बाबाजी महाशय आदि सभी भाव-विभोर हो नाचते-नाचते कीर्त्तनके साथ चल रहे थे। सभी आत्मज्ञान शून्य थे और उन्मत्तवत् नृत्य-कीर्त्तन कर रहे थे; कुछ ही दूर पहुँचे थे कि राजर्षिके साले गोपालबाबू

नाचते-नाचते भावमें विभोर हो गये और बेहोश हो गिर पड़े। बहुत चेष्टा करने पर भी जब उन्हें होशमें न लाया जा सका, तो एक व्यक्तिने जाकर बाबाजी महाशयसे कहा। वे नाचते-नाचते उनके पास पहुँचे और उनके सिर पर हाथ रख कानमें मंत्र दिया। मंत्र प्राप्त करते ही गोपालबाबू एक हुंकार कर पूर्व-वत् झूमते-झूमते कीर्त्तनमें जाकर नाचने लगे। निताइचाँदकी कृपाकी बलिहारी! किस सूत्रको लेकर वे किस पर कृपा करते हैं, कौन बता सकता है? गोपालबाबू बाबाजी महाशयके प्रति विशेष आकर्षित अथवा श्रद्धावान् हों, ऐसा नहीं लगता था। इससे पहले उन्हें कीर्त्तनादिमें इस प्रकार भाव-विभोर होकर नाचते भी किसीने नहीं देखा था; पर आज तो भावावेशमें उनकी आकृति ही बदल गई। चेहरेसे ज्योति निकलती जान पड़ने लगी। धन्य महत्कृपाका प्रभाव!

यथासमय विनोद-विनोदिनीने मन्दिरमें शुभविजय की। इस प्रकार विनोद-विनोदिनीके श्रीराधाकुण्ड वाले मकानमें बाबाजी महाशयके साथ नित्य नूतन आनन्द उपभोग होता रहा।

* एक दिन रातको सब एक साथ बैठकर महाप्रसाद पा रहे थे। नाना प्रकारकी तत्वकथाएँ चल रही थीं। बाबाजी महाशयने कहा, 'प्रेमदाता परम दयाल श्रीमन्महाप्रभुने आपा-मर सर्वसाधारण कलि-जीवोंको बिना बिचारे प्रेम-दान किया। कोई भी कलि-जीव वंचित नहीं रहा। बस इतना ही है कि किसीने उस प्रेम-वितरणकी बात अथवा उसके आनन्दको अनु-भव कर लिया है, और किसीने नहीं किया। वह समय आनेपर

* यह और आगेकी कुछ घटनाएँ भक्तप्रवर कामिनीकुमार घोषके लिखित विवरणके अनुसार हैं।

कर लेगा। पर प्रेम पानेसे बचा कोई नहीं, कारण–जिस वस्तु के वितरणके लिये श्रीगौरसुन्दर इस घोर कलियुगमें अवतीर्ण हुए, वह यदि बिना सोचे-विचारे जनसाधारणमें वितरण न होती, तो उनका काम अधूरा रह जाता। यह क्या सम्भव था ? यह सिर्फ मेरे कहनेकी बात नहीं है; श्रीरूप गोस्वामी-पादने 'अनर्पित' श्लोकमें इस बातकी गवाही दी है।' कामिनी-बाबू बोले, 'बाबाजी महाशय ! मुझ जैसे अभागे व्यक्तिमें तो प्रेम-प्राप्तिका कोई चिह्न दीखता नहीं; यदि प्रेम प्राप्त हो जाता, तो विषय-वासना ही न रहती। तब क्या स्त्री-पुत्रादिको लेकर सांसारिक कामधंधोंमें फँसे रहना सम्भव होता ?'

बाबाजी—कामिनीबाबू, तुमने निश्चय ही प्रेम प्राप्त किया है, और तुम्हारे स्त्री-पुत्रादिने भी। अपनी हालत थोड़ा ध्यानसे देखो; तुम राजाकी नौकरी कर रहे हो और स्त्री-पुत्रादि लेकर गृहस्थी चला रहे हो; इतने पर भी तुम्हारे मनमें आशा है कि तुम श्रीराधारानीकी दासी होकर उनकी प्रेम-सेवा करोगे। यह किसकी कृपा है ? किसकी कृपासे तुम्हारे हृदयमें यह वासना पैदा हुई ? तुम्हें धन, स्त्री, पुत्रादिकी आवश्यकता थी, सो करुणामय प्रभुने यह सब देकर तुम्हें श्रीधाम वृन्दावन भेज दिया; ऊपरसे सत्यका आश्रय दे दिया; अन्यथा तुम्हारी क्या सामर्थ्य जो तुम वृन्दावन-बास करते ? जो दाता हैं, वे दान करके ही खुश रहते हैं। दानवीर यदि विचार कर दान करें, तो क्या वे सन्तुष्ट हो सकते हैं ? श्रीमन्महाप्रभु दाता-शिरोमणि हैं; तुम्हारे अयोग्य होनेसे क्या होगा ? वे तो बिना सोचे-विचारे अपने भण्डारकी सर्वोत्कृष्ट वस्तु (प्रेमधन) सभीको बाँट रहे हैं; योग्य-अयोग्यका विचार कर यदि वे बाँटें, तो क्या उन्हें सुख होगा, मानलो किसी रईसके घर कोई बड़ा उत्सव हो

रहा है; अनेक गरीबोंको भोजन दिया जा रहा है; बेशुमार रसगुल्ले बाँटे जा रहे हैं। एक कङ्गालकी पत्तल पर बहुतसे रसगुल्ले देखकर एक व्यक्ति कहता है 'क्यों बेटा, दिनभर मेहनत करनेके बाद भी दो पैसेके मुरमुरे नहीं जुटते थे, आज बड़े रसगुल्ले खा रहे हो।' वह कङ्गाल जबाव देता है, 'भाई, मैं तो कुछ मुरमुरोंकी ही आशासे आया था, पर यहाँ आकर देखा कि सिर्फ रसगुल्ले ही रसगुल्ले हैं, और वह भी जो जितने खा सके; सो आज रसगुल्ले खा रहा हूँ।' दाता जब दान करता है, तो अधमको भी प्राप्ति होती है। तभी कहता हूँ भाई, उन्होंने सभी को प्रेम-दान किया है।

इस बार श्रीकुण्ड बासी श्रीरसिकदास बाबाजी महाशय बोले, 'आप जो चाहें कहें, इस परमदयाल अवतारमें मुझे एक बूँद भी प्रेम नहीं मिला।' यह सुनकर बाबाजी महाशय न जाने कैसे हो गये; बच्चेकी तरह व्याकुल हो गद्गद कण्ठसे बोले, 'भाई, कलियुगमें घोर पाखण्डियों तकने प्रेम पाया, आपको क्यों नहीं मिला। इससे तो महाप्रभुके विश्वम्भर नाम में कलङ्क लगता है। मैं यह महाप्रसाद हाथमें लेकर कहता हूँ कि आपने निश्चय ही प्रेम पाया है।' बाबाजी महाशयका इतना कहना था कि रसिकदास बाबाजी महाशयकी आँखोंसे अविरत अश्रुधार बहने लगी और अश्रु, कम्प, पुलक आदि सात्विक विकार उनके शरीरमें प्रकट हो गये। बाबाजी महाशयने पूछा 'बोलिये, प्रेमदाताकी कृपासे प्रेम पाया कि नहीं?' रसिकदास बाबाजी महाशयने न जाने कैसे होकर कहा, 'जी हाँ, पाया।' यह सुनकर बाबाजी महाशय कुछ स्वस्थ हुए। बलिहारी उस अपूर्व भावकी। जगत्का कोई भी प्राणी महाप्रभुके प्रेम-दानसे बंचित रहा है, यह बात बाबाजी महाशयको सह्य नहीं। एक

व्यक्तिने कहा, 'देखिये, गोस्वामी पादोंने कितना कठोर वैराग्य किया। हरिदास ठाकुर तीन लाख नाम करते थे। हम लोग तो कुछ भी नहीं कर पाते, हमारी क्या गति होगी ?'

बाबाजी—भाई, हम लोगोंकी सामर्थ्य कहां जो भजन-साधन कर सकें ? हम लोग तो अन्नगत प्राण हैं। कठोर वैराग्य तो दूर रहा, यदि किसी दिन किसी कारण खानेमें कोई कमी या भूल-चूक हो जाती है, तो भजन-साधनकी बात हो मनसे अलग हो जाती है। शरीर इतने सुकोमल हैं कि सर्दी-गर्मी और वर्षा सहन करना तो दूर, किसी दिन जमीन पर सोना पड़ जाय तो सहन नहीं होता। ये तो है हमारी मानसिक और शारीरिक अवस्था! हम क्या कर सकते हैं ? हम लोगोंको सभी बातोंमें असमर्थ जानकर ही वे लोग हमारे लिये इतना कठोर वैराग्य और भजन-साधन कर गये हैं। उनके वैराग्य और भजन-साधनकी बात जिन ग्रन्थोंमें वर्णित है, उनका पाठ करना और उन विषयों पर वार्त्तालाप, चिन्तन-मनन करना तथा उनके रूप, गुण, लीला आदिका स्मरण करना ही हमारा नित्यका साधन और कर्त्तव्य है। असलमें श्रीमन्महाप्रभुके परिकरोंने जिसे साधन मानकर आचरण किया, हमारे लिये वही साध्य है। अतएव साध्य और साधन एक वस्तु हैं। नित्यसिद्ध परिकरजन प्रेमपूर्वक जिस रूप, गुण, लीला आदिका दर्शन, श्रवण, कीर्त्तन करते हैं और प्रेम-विभोर हो जिस प्रकारका आचरण करते हैं, साधक लोग उसीका श्रवण-कीर्त्तन और परस्पर वार्त्तालाप द्वारा आस्वादन करते हैं। साधकोंके लिये वही सब साध्य अर्थात् प्राप्तिकी वस्तु है। यह बात जिसके हृदयमें अच्छी तरह बैठ गई है, वह इसके अतिरिक्त और किसी प्रकारके आचरणमें समय नष्ट नहीं करता; वह सर्वोपाधि-विनिर्मुक्त

हो जाता है। 'अन्यत्र ना चले मन, जेनो दरिद्रेर धन।' इस प्रकार अनन्य चेष्ट हो जाता है। जिन निताइ-गौराङ्गका नाम लेनेसे प्रेम उमड़ता है, अश्रुधार बहती है; जो अपराधकी बात तक नहीं सोचते; जो अपराधीका अपराध दिखाकर और अप-राध-मोचनका उपाय बताकर अथवा स्वयं उपाय कर प्रेम-दान करते हैं, ऐसे परमदयाल प्रेमदाता-शिरोमणि श्रीनिताइ-गौराङ्ग की यह अपार करुणाराशि जिसके हृदयमें संचारित होती है, उसके लिये क्या और कोई साधन-भजन करना बाकी रह जाता है ? या किसी और प्रकारके भजन-साधनके लिये क्या उसके मनमें उत्कण्ठा पैदा हो सकती है ?

एक व्यक्तिने पूछा, 'जब श्रीनिताइ-गौराङ्गने प्रेम-दान कर दिया तो श्रीगुरु-पदाश्रयकी क्या आवश्यकता है ?'

बाबाजी—श्रीश्रीनिताइ-गौरने प्रेम-दान किया है, कर रहे हैं, या करेंगे, यह बात बिना गुरुदेवके तुम्हें कौन बता-यगा ? अमूल्य प्रेमधन तुम्हें दिया है, पर तुम्हें पता नहीं, अतः तुम दुःख पा रहे हो, श्रीगुरुदेवने कृपाकर महाप्रभुकी उस अपार करुणाकी बात याद दिलाकर तुम्हें उस अमूल्य सम्पत्ति का अधिकारी बना दिया। तो बताओ, उन जैसा परम मित्र कोई और हो सकता है ? पर यह मत सोचना कि यह काम हर कोई कर सकता है। शास्त्रोंमें कहा है, 'श्रीगुरुरूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे।' श्रीगुरु-कृपाके बिना किसीमें भी भक्ति-साधनकी सामर्थ्य नहीं आ सकती। साक्षात् भगवत्कृपा हो अथवा उनके भक्तोंकी कृपा हो, इसके बिना नामाभास तककी स्फूर्त्ति नहीं हो सकती। तभी तो कहा है, 'गुरुरूपे कृष्णकृपा तत्वेर अवधि।' कोई कितनी ही कृपा क्यों न करे, जब तक श्रीगुरुदेव करुणा कर हृदयको उसे ग्रहण करने योग्य नहीं बना

देते, तब तक बिन्द मात्र भी कृपाकी स्फूर्त्ति नहीं होती। यहाँ तक कि 'कृष्णे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।' इस प्रकार नाना प्रकारके भगवत्प्रसङ्गोंके साथ परमानन्दमें धीरे-धीरे महाप्रसाद-सेवन समाप्त हुआ।

यदि कभी महापुरुषोंका कोई व्यवहार गलत प्रतीत हो, तो वह अन्य किसी महात्माके उत्कर्ष अथवा किसी भोगाभोग से जगत्के कल्याणके लिये ही होता है। ऐसी स्थितिमें जो लोग एक महात्माका पक्ष लेकर दूसरेके प्रति दोष-दृष्टि रखते हैं, वे भक्ति-पथसे बहुत दूर रहते हैं। महापुरुषोंका यह वाक्य 'एके बन्दे आरे निन्दे सेइ जाय नाश' ऐसे ही लोगों पर लागू होता है। एक दिन राजर्षि बहादुर बाबाजी महाशयको किसी महानुभावसे भेंट कराने ले गये। उक्त महानुभावका बाबाजी महाशयको दर्शन देना तो दूर रहा, वे उनके प्रति बड़ी विरक्ति दिखाने लगे और उन्हें उनका वहाँ रुकना भी असह्य प्रतीत होने लगा। राजर्षिने अपने जीवनमें स्वप्नमें भी कभी ऐसा व्यवहार किसीसे प्राप्त नहीं किया था। वे तो विशेष आनन्द प्राप्त करनेकी आशासे ही वहाँ गये थे, पर हुआ उसके बिलकुल विपरीत। राजर्षि बहादुर बाहरसे भले ही कुछ न कह सके हों, पर उक्त महानुभावकी एक-एक बातको लेकर वे मन ही मन इतने व्यथित हो रहे थे कि उनकी तत्कालीन अवस्था देखकर लगता था मानो वे पृथ्वीसे प्रार्थना कर रहे हों 'मां बसुन्धरे! तुम फट जाओ जिससे मैं तुम्हारो गोदमें समाकर इस असह्य वेदनासे मुक्ति पा सकूँ।'

बाबाजी महाशयने उक्त महानुभावके उस व्यवहारका परोक्षभावसे अनुभव कर, उन्हींकी शान्तिके लिये, वहींसे उन्हें प्रणाम कर अन्यत्र प्रस्थान किया। क्षणभर पीछे राजर्षि बहा-

दुर भी उन महानुभावको प्रणाम कर व्यथित हृदयसे बाबाजी महाशयके पास लौट आये। बाबाजी महाशय उक्त घटनाके विषयमें कुछ न कह कर अपनी स्वाभाविक प्रीति और सरल व्यवहारके साथ लीला-कथा कहते-कहते अपने स्थान पर लौट आये। स्वयं राजर्षि बहादुरके साथ कोई ऐसा व्यवहार करता, तो उन्हें जरा भी दुख न होता; वह तो वरन् यह देखकर कि दूसरेको दुःख हुआ उसे सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा करते; पर वे एक ऐसे महापुरुषको साथ ले गये थे, जो जगत्के आदर्श हैं; जिन्हें आबाल, वृद्ध, युवा, स्त्री, पुरुष परम सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। ऐसे महापुरुषका इतना अपमान ! राजर्षिकी यह मनोव्यथा किसी तरह दूर नहीं हो रही थी। वे बाबाजी महाशयके मुख की ओर देखते थे तो उनकी व्यथा और दुगनी हो जाती थी। राजर्षिको जीवनमें इतना दुःखी शायद हमने कभी नहीं देखा था। बाबाजी महाशयने नाना प्रकारके रस-कौतुक द्वारा उनके मनस्तापको शान्त करनेकी विशेष चेष्टा की, पर उन्हें सफलता न मिली। अन्तमें एक दिन कुसुम सरोवर पर उन्होंने राजर्षि का हाथ पकड़कर गद्‌गद् कण्ठसे कहा, 'भाई बनमाली, यदि तुमने एक दिनके लिये भी कभी मुझे चाहा है, तो आज एक भीख दो। उस दिन उन महानुभावके व्यवहारसे तुम्हें जो दुख हुआ है, वही मुझे भिक्षामें देकर वचन दो कि इस विषयको लेकर फिर कभी तुम उन पर रोष न करोगे। दूसरा अनुरोध यह है कि यह बात और किसीसे न कहना। यदि बात फैली भी हो, तो उसे दबानेकी चेष्टा करना।' बाबाजी महाशयकी उस समयकी प्रेम-मूर्त्तिको देख राजर्षि बहादुर विस्मित हो गये और साश्रुनयन और गद्‌गद् कण्ठसे बोले, 'दादा, आप जो आदेश देंगे, उसका पालन अवश्य होगा। आप कृपा-शक्तिका

संचार कीजिये जिससे मेरी मानसिक मलिनता दूर हो और स्वच्छ भाव पैदा हो।' उस दिनसे राजर्षिने इस घटनाके बारे में किसीसे भी कुछ नहीं कहा; यहाँ तक कि इसके बाद उक्त महानुभावके प्रति उनके व्यवहारसे ऐसा भी कभी प्रतीत नहीं हुआ कि उक्त घटना कभी घटी थी और वह उन्हें याद है। अपूर्व दृष्टान्त! जिसने इतना अनादर किया, उसे लेकर अपने भीतर किसी प्रकारकी दोष दृष्टि आना तो दूर रहा, किसी दूसरेके भीतर भी दोष-दृष्टि न आय, इस बातको लेकर वे इतना व्याकुल हुए। 'तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना। अमानिना मानदेन कार्त्तनीयः सदा हरिः।' इस श्लोकका प्रत्यक्ष्य उदाहरण राजर्षिको देखनेको मिला। भगवान अपना अपकर्ष करके भो भक्तकी महिमा बढ़ाते हैं। उन्होंने कुरुक्षेत्रकी लड़ाईमें अपनी प्रतिज्ञाका उल्लघन कर भोष्मकी प्रतिज्ञाकी रक्षाकी थी। रासमें अन्तर्धान हो और अपने सिर पर कलकका टीका लगा गोपी समाज और जगत्में उन्होंने श्रीवृषभानुकुल चन्द्रमाकी प्रेम-महिमाका प्रकाश किया था। भगवानके गुण भक्तमें विद्यमान रहते हैं। मङ्गलमय प्रभु यदि उक्त महानुभाव द्वारा यह घटना घटित न कराते, तो हम लोग ऐसी उदारता, अदोषदर्शिता और 'तृणादपि सुनीचेन' श्लोकका प्रत्यक्ष उदाहरण कैसे देखते ?

महात्मा राजर्षि बहादुरके मनसे यह कालिमा धुल गई, पर कामिनीबाबूके हृदयमें रह रह कर इस घटनाके कारण बेचैनी होती रही। यह बात अन्तर्यामी बाबाजी महाशयने जान ली। एक दिन किसी कार्यसे उन्हें दो-एक दिनको कहीं जाना था, मगर बाबाजी महाशयका मधुर सङ्ग छोड़कर जाना मुश्किल लग रहा था। जब वे उनसे बिदा लेने गये, तो वे बड़े

प्यारसे बोले, 'भाई कामिनी ! हम लोग एकदम पराधीन हैं; किसीके प्रति दोष-दृष्टि रखनेके लिये हमारे पास अवकाश कहाँ है ? जीव नित्य कृष्ण दास है। नाना प्रकारके झंझटोंमें पड़कर वह इस बातको भूल जाता है और मायाकी शृङ्खलामें बँधकर अभिमान करने लगता है कि मैं धनी हूँ, मानी हूँ, कुलीन, विद्वान, अथवा भक्त हूँ। इस उपाधिसे बचनेकी ताकत हममें नहीं है। यदि कोई रागानुग साधक हमारा आदर न करें अथवा हमारे साथ तीखा व्यवहार करें, तब भी हमें यह मानना चाहिये कि वे सदा हमारे हितकारी हैं। और कर भी क्या सकते हैं ? बीचमें कुछ उपाधियां आ जानेसे ही वे हमारे साथ ऐसा व्यवहार करते हैं। परस्पर उपाधि-रहित होनेसे क्या फिर प्रेमसे मिलनेमें कोई बाधा हो सकती है ? 'मैं राधारानीकी दासी हूँ' यदि यह विश्वास मनमें दृढ़ न हो, तो कातर भाव से निताइ-गौराङ्गके निकट प्रार्थना करो 'प्रभु, मैं कलिहत जीव हूँ; मायामुग्ध हो संसार-सागरमें आ गिरा हूँ। आप करुणामय हैं, करुणा कर इस बन्धनसे मुक्त कीजिये। हे प्रभु, आपकी कृपा के अतिरिक्त मुझ जैसे पाखण्डीके उद्धारका और कोई साधन नहीं।' इस प्रकारका भाव रखो और 'हा निताइ गौराङ्ग !' कहकर रोओ; हृदय निर्मल हो जायगा।

बाबाजी महाशयकी बातें सुन कामिनीबाबूके प्राण रो उठे। हृदयमें उक्त महानुभावके व्यवहारको लेकर जो सूक्ष्म-भावसे छिपी हुई कालिमा थी, वह दूर हो गई; हृदय स्वच्छ और आनन्दमय हो गया। वे सोचने लगे, 'महापुरुषोंकी शक्ति का कैसा अपूर्व प्रभाव है। बाबाजी महाशयका हृदय किस प्रकार सदा ही तत्वमें प्रतिष्ठित रहता है। छोटी-छोटी घट-नाओं अथवा हास-परिहासमें भी उनका व्यवहार उसके अनुकूल ही होता है।'

एक दिन कामिनीबाबू बाबाजी महाशयके साथ महा-प्रसाद पाने बैठे थे। उस दिन ठाकुरजीको मूँगकी दालका भोग लगा था। कामिनीबाबूने गोविन्द दादासे कहा, 'इस वक्त खटाई डालकर मटरकी दाल बनाई जाती तो अच्छा था।' यह सुन बाबाजी महाशय अपने स्वाभाविक रसपरिपूर्ण सख्य भावसे मृदुहास्य सहित बोले, 'भाई कामिनी! आज तुमने महान् अप-राध किया।' कामिनीबाबूने चौंककर पूछा, 'जी! क्या अपराध हुआ?' बाबाजी महाशय बोले 'देखो, कृपा कर जो भी आयँ, उनका स्वागत-सत्कार करना ही हमारा कर्त्तव्य है। ऐसा न कर उनके आगे दूसरोंकी प्रशंसा करनेका मतलब क्या उनका अनादर करना नहीं है? इसलिये आज तुमने मूँगकी दालके प्रति अपराध किया।' बात सामान्य थी और परिहासके साथ कही गई थी पर थी बड़ी शिक्षापूर्ण। वास्तवमें जब तक जो मिल जाय उससे सन्तोष नहीं होता, तब तक शान्ति पाना कठिन है।

एक दिन अपराह्नमें श्रीकुण्डके किनारे बैठे बाबाजी महाशय, श्रीरामहरिदास बाबाजी, श्रीमाधवदास बाबाजी आदि बहुतसे महात्मा इष्टगोष्ठी कर रहे थे। श्रीरसिकदास बाबाजी ने बाबाजी महाशयसे कहा, 'बहुत दिनोंसे मेरे मनमें एक सन्देह है; यदि समय हो तो कहूँ।'

बाबाजी—बहुत समय है, कहो।

रसिक०—कृष्ण-विरहमें श्रीमतीकी दस दशायें हुई थीं 'चिन्तात्र जागरोद्वेगस्तानवं मलिनाङ्गता। प्रलापो व्याधि-रुन्मादोमोहोमृत्योर्दशा दशा॥' अन्यान्य गोपियोंकी भी बहुत सी अवस्थाओंके विषयमें शास्त्रोंमें उल्लेख है, और उनके विषय में महापुरुषोंके मुखसे भी सुना है। पर ऐसा कभी सुननेमें नहीं

आया कि इन अवस्थाओंमें श्रीमती अथवा अन्यान्य गोपियोंकी अस्थि-संधियाँ श्लथ होकर उनके शरीर दीर्घाकार हुए हों अथवा उनके हाथ-पैर संकुचित होकर कछुए जैसे हो गये हों। अब प्रश्न है कि श्रीकृष्ण राधिकाकी भाव-कान्ति धारण कर श्रीगौराङ्ग रूपमें अवतीर्ण हुए; राधा-भावाविष्ट श्रीगौराङ्गके शरीरमें वे भाव कैसे प्रकाशित हुए जो राधारानीमें कभी नहीं हुए।

बाबाजी—श्रीमन्महाप्रभुकी लीलामें जो भावान्तर या अवस्थान्तर देखनेमें आते हैं, उनके कारणोंके विषयमें सभी एकमत हों,ऐसा नहीं है। सीधी बात यह है कि जैसे रसके पात्र के अनुसार रसके आस्वादनमें अन्तर आ जाता है, उसी प्रकार आस्वादकमें भेद होनेसे भावोंमें अन्तर आ जाता है। श्रीवृन्दा-बनलीला-रसके विषय या आस्वाद्य हैं नागरेन्द्र-चूड़ामणि ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण; रसकी आश्रय या आस्वादिका हैं समर्था-शिरोमणि महाभाव-स्वरूपिणी श्रीमती राधिका। श्रीनवद्वीप लीला-रसके विषय या आस्वाद्य और आश्रय या आस्वादक दोनों ही हैं श्रीकृष्ण। अब विचार कीजिये कि समर्था-शिरोमणि श्रीमती जिस भावको हृदयमें धारण करनेमें, अथवा साङ्गोपन रखनेमें समर्थ होंगी, क्या श्रीकृष्ण उसे उसी प्रकार धारण कर सकेंगे ? भाव-प्रेम हृदयकी वस्तु है, वह कभी बाहर प्रकट नहीं होती। बाहर प्रकट होनेवाली वस्तुओं (अश्रु-कम्प आदि) को शास्त्रोंमें भाव-विकार बताया गया है। भाव या प्रेमके वेगको जितना हृदयमें धारण किया जायगा, उतना ही उसका माधुर्य होगा। यद्यपि श्रीकृष्ण अपने माधुर्यका आस्वादन करनेके लोभ से मादनाख्य महाभाव-स्वरूपिणी श्रीमती राधिकाकी भाव-कान्ति धारण कर अवतीर्ण हुए, तथापि श्रीमतीकी समर्था शक्ति

अथवा उनकासा हृदय तो वे धारण नहीं कर सके। तभी तो बीच-बीचमें उन्होंने दुख प्रकट करते हुए कहा है, 'बहु चेष्टा करि मुंइ नारि आस्वादिते।' जिस वस्तुका श्रीकृष्ण बहुत चेष्टा करने पर भी आस्वादन नहीं कर सकते, उसे श्रीमती अनायास हो उपभोग कर स्वेच्छानुसार दूसरोंको बाँट देती हैं। एक दिन कौतूहल वश श्रीकृष्ण गोपिका-मण्डलीमेंसे गायब हो गये। गोपियाँ उन्हें खोजने लगीं। जब वे किसी प्रकार भी और छिपे न रह सके, तो उन्होंने योगमायादेवीका स्मरण किया। उनकी विभुत्व-शक्तिके प्रभावसे उनका चतुर्भुज रूप हो गया। थोड़ी देरमें गोपियोंको खोजते-खोजते उस चतुर्भुज मूर्त्तिके दर्शन हुए; गोपियाँ उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर और उनसे प्रार्थना कर कि द्विभुज, मुरलीधारी, नवकैशोर, नटवरवपु श्रीब्रजेन्द्रनन्दनमें उनकी अहैतुकी प्रीति बनी रहे, वहाँसे चली गईं।

इधर कृष्ण-विरह-विधुरा प्रेममयी श्रीमती राधिका दुःखी हृदयसे श्रीकृष्णको खोज रही थीं। श्रीकृष्णने दूरसे उन्हें देखा ही था कि उन्हें अपनी चतुर्भुज मूर्त्तिकी रक्षा करना असम्भव हो गया। श्रीमतीकी शक्तिके प्रभावसे इच्छा न होते हुए भी उन्हें विशुद्ध माधुर्यमयी द्विभुज मुरलीधर मूर्त्ति धारण करनी पड़ी।

रसिक०—आपने कहा कि 'श्रीगौराङ्ग लीलामें कृष्ण ही आस्वाद्य हैं और कृष्ण ही आस्वादक हैं।' यह मेरी समझमें नहीं आया, क्योंकि श्रीराधिकाकी भाव-कान्ति धारण कर जब श्रीगौराङ्ग अवतीर्ण हुए, तब कृष्ण कहाँ रहे?

बाबाजी—श्रीकृष्णने राधिकाकी भाव-कान्ति धारण की, अर्थात् उन्होंने राधाकी अङ्ग-कान्तिसे अपनी कान्तिको ढक लिया; जैसे किसी पीतल या काठकी मूर्त्तिको सोनेके जलमें

डुबानेसे उसका ऊपरी वर्ण स्वर्ण-वर्ण हो जाता है; भीतर उसका अपना स्वरूप (पीतल या काठ) ही रहता है। उसी तरह राधिकाकी अङ्ग-कान्तिके जलमें जैसे कृष्ण डूब गये। भीतर कृष्ण ही रहे।

रसिक०—तो जो लोग कृष्ण-मन्त्रसे गौराङ्ग पूजा करते हैं और कृष्ण-ध्यानको ही गौराङ्ग-ध्यान मानते हैं, वे ठीक ही करते हैं।

बाबाजी—नहीं। लीला और तत्वमें बहुत अन्तर है। ध्यान कभी भी तत्वगत नहीं होता। ध्यान लीलागत है, प्रत्यक्ष दृश्यमान रूपका ही ध्यान, नाम, या मंत्र होता है। तत्व अप्रत्यक्ष वस्तु है। अदृश्य वस्तुका ध्यान, नाम, या मन्त्र लेकर दृश्य वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती। जैसे श्यामसुन्दर पुकारने पर गौरसुन्दर उत्तर नहीं दे सकते, उसी तरह 'फुल्लेन्दीवरकान्ति' कहनेसे 'तप्तकाञ्चनकान्ति' का बोध नहीं कराया जा सकता। और फिर तत्वगत भेद होते हुए भी लीलागत भेद स्वीकार न करनेसे लीला-माधुर्य लुप्त हो जाता है। भक्त-चूड़ामणि हनुमान ने कहा था, 'श्रीनाथे जानकीनाथे चाभेदः परमात्मनि। तथापि मम सर्वस्वो रामः कमललोचनः।' लीलागत भेदके न रहनेसे भक्तकी रूप, गुण, निष्ठा ही नहीं रहती।

रसिक०—उपास्यनिष्ठा किसे कहते हैं?

बाबाजी—भगवत्स्वरूपोंमेंसे जिस रूपके प्रति जिसका चित्त आकृष्ट हुआ है, उसी रूप विशेषवाले स्वरूपके प्रति अनन्य भावसे चित्तकी एकाग्रता रखना ही इष्टनिष्ठा या उपास्यनिष्ठा है।

रसिक०—कृष्णके प्रति आकर्षित होना अच्छा या उन्हें आकर्षित करना?

बाबाजी—सिद्ध देहमें या साधक देहमें ?

रसिक०—सिद्ध देहमें मधुर भावसे ।

बाबाजी—भाव और रसके अन्तरसे साधककी अवस्था में भी अन्तर हो जाता है । यदि स्त्री-देहमें धैर्य न हो, तो स्त्री-देहकी मर्यादा कहाँ ? गर्विनी राधारानीकी दासियोंका गर्व ही उनकी प्रमुख सम्पत्ति है । ललितादेवी श्रीमतीसे कहती हैं, 'धैर्यं कुरु राधे ! सो काहा जायब, आपहि आयब, पुनहि लोटायब चरणे ।' जिनकी ऐसी धारणा हो, उनकी दासियोंका कृष्णके प्रति आकृष्ट होकर उनकी खोजमें भटकना क्या अच्छा होगा ? लम्पट पुरुष स्त्री-लोलुप होता है, उसे आकर्षित करना स्त्रियोंके लिये वहुत आसान होता है । एक सांसारिक दृष्टान्त लो । वेश्या नाना प्रकारके शृङ्गार कर दोमंजिलेके बरामदेमें मुखके सामने रोशनी कर इस प्रकार बैठ जाती है कि लम्पट व्यक्ति दूरसे ही उसे देखकर आकृष्ट हो जाता है और हिताहित-ज्ञानशून्य हो उसके पास जाकर अपना सब कुछ उसे अर्पित कर देता है । यदि एक सामान्य कामुक व्यक्ति इस प्रकार आकृष्ट हो सकता है, तो महाकामुक लम्पट चूड़ामणि कितना आकृष्ट होंगे, विचार कर देखो । होना चाहिये हाव-भाव-कटाक्ष आदिका प्राचुर्य और रूपकी उज्ज्वलता, मुख पर नव-अनुरागकी उज्ज्वल रोशनी और भक्ति-चन्दनका लेप, गलेमें प्रेम-पुष्पकी माला, और सर्वाङ्गमें सात्विक भावोंके भूषण, कंगन और कटि किंकणी आदि जिनकी ध्वनिसे गृह मुखरित हो । फिर लम्पट चूड़ामणि कृष्णको वशीभूत होते कितनी देर लगती है ।

एक दिन श्रीहरिचरणदास बाबाजीने पूछा, 'नित्यानन्द प्रभुका तत्व क्या है ?'

बाबाजी—नित्यानन्द तत्वको समझना एकमात्र श्री-

गौराङ्ग-कृपासे ही सम्भव है—

'नित्यानन्द प्रभुर गुण महिमा अपार।
सहस्त्र बदने बर्णि नाहि पाय पार॥
अति गूढ़ नित्यानन्द एइ अवतारे।
श्रीचैतन्य जानाय जारे, से जानिते पारे॥'

कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्य चरितामृतके श्लोक पंचकमें बहुत प्रकारसे ऐश्वर्य तत्वका वर्णन किया है। उसके विषयमें मैं विशेष रूपसे और क्या कहूँ? मोटी बात यह है, जिस तरह राधा-गोविन्द मिलकर गौराङ्ग हुए, उसी तरह अनङ्गमञ्जरी और बलराम मिलकर नित्यानन्द हुए। दोनोंके मिलनसे एक अपूर्व रसकी उत्पत्ति हुई, अर्थात् श्रीबलदेव और श्रीअनङ्गमञ्जरीमें जो-जो भाव एवं रस थे, वे सब नित्यानन्दमें हैं, इनके अतिरिक्त कुछ अपूर्व रसोंकी माधुरी और है जो सब वर्णनके परे है। फिर भी हृदयका आवेग रोक न सकनेके कारण श्रीवृन्दावनदास ठाकुरने उसका थोड़ा-सा आभासमात्र दिया है—

'निताइ नागर, रसेर सागर, सकल रसेर गुरु।
जे जाहा चाय, तारे ताहा देय, वांछाकल्पतरु॥
(निताइ) राधार समान, कृष्णे करे मान, सतत थाकये संगे।
बसि थाकि थाकि, उठये चमकि, कृष्णकथा रस रंगे॥
बसि बाम पाशे, मृदु मृदु हासे, प्राणनाथ बलि डाके।
राधार जेमन, मनेर बासना, तेमति करिया थाके॥
सोनार केतकी, देखिते सूरति, साधिते मनेर साधा।
दास वृन्दावन, करे निबेदन, देखिते निताइ राधा॥'

श्रीनिताइचाँद श्रीगौराङ्गके मनकी बात जाननेवाले, उनके दर्दको समझनेवाले, उनके सुखमें सुखी, दुःखमें दुःखी,

उनके भावोंके भावुक, उनके रसके रसिक और वांछापूर्त्तिकारी हैं, अर्थात् श्रीगौराङ्गका जब जैसा प्रयोजन होता है, निताइ उसकी पूर्त्ति करते हैं।

एक दिन बाबाजी महाशय प्रातःकृत्य पूरा कर किसीसे बिना कुछ कहे अकेले बाहर चले जा रहे थे। यह देखकर गोविन्ददादा, अटलदादा, उद्धारण, फणी आदि कुछ लोग उनके साथ हो लिये। किस उद्देश्यसे कहाँ जा रहे हैं, किसीसे कुछ कहना-सुनना नहीं। बस चले जा रहे थे मस्तीमें। चलते-चलते श्रीमाधवदास बाबाजी महाशयकी भजनकुटीके आगे पहुँच कर उन्होंने अटलदादासे पूछा, 'अटल! माधवदासजीकी कुटी यही है न?'

अटल०—जी हाँ।

सुनते ही आप सुपरिचितकी भांति कुटीमें घुस गये। उस वक्त माधवदासजी 'अनङ्ग सम्पुट' पाठ कर रहे थे। इन्हें देखते ही वे इनके स्वागतमें व्यस्त होने लगे, तो आपने मृदुभावसे हँसते हुए कहा, 'भाई, तुम पाठ करो। मैं तुम्हारा पाठ सुनने के लिये ही जल्दी-जल्दी आया हूँ।' आदेश पाकर माधवदासजी फिरसे 'अनंग सम्पुट' पाठ करने लगे। बाबाजी महाशय कुटीके आगे बैठकर पाठ सुन रहे थे और अश्रुजलसे सारा वक्षस्थल भीग रहा था। इधर राजर्षि बहादुर, श्रीरामहरिदास बाबाजी, श्रीहरिचरणदासजी, श्रीरसिकदास बाबाजी आदि महात्मा उन्हें खोजते-खोजते एक-एक कर श्रीमाधवदास बाबाजीकी कुटी पर आ पहुँचे। श्रीमाधवदास बाबाजी थोड़ा-थोड़ा पाठ कर रहे थे और बाबाजी महाशय अति सरल भाषामें उसकी व्याख्या कर सबको सुना रहे थे। उस कुटीर पर मानो आनन्दका स्रोत फट पड़ा। सभी विभोर हो कह रहे थे 'अनंग सम्पुट तो

हम प्राय: ही पाठ करते और सुनते रहते हैं, पर ऐसा आनन्द कभी नहीं आया, और न ऐसी मधुर व्याख्या ही कभी सुनी। 'श्रीमाधवदास बाबाजीके हृदयमें आनन्द समा नहीं रहा था। अपूर्व सम्मिलन! लगता था मानो चन्द्रमाका हाट लगा है। श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी महाशय भावावेशमें नृत्य करने लगते और बीच-बीचमें बाबाजी महाशयकी चिबुक पकड़ कर भाव-गद्‌गद् कण्ठसे 'आरे आमार सोनार चाँद रे!' कहकर आँसू बरसाने लगते। इस प्रकार बड़े आनन्दमें बहुत समय बीत गया। श्रीमाधवदास बाबाजी महाशयने पाठ बन्द किया। पर बाबाजी महाशयका आवेश भंग न हुआ; सिद्धान्त-व्याख्या चलती ही रही। इसी समय श्रीमाधवदास बाबाजीने अटल-दादाको एक रुपया देकर शीघ्र जलेबी लानेके लिये कहा। जलेबी आते ही श्रीमाधवदास बाबाजीने गिरधारीका भोग लगाकर सबके बीचमें लाकर रख दी। पता नहीं उस समय सबके मनमें क्या भाव उदय हुआ, महाप्रसादको देखते ही सब बच्चोंकी तरह छीना-झपटी कर खाने लगे। केवल हरिचरण-दास बाबाजी थोड़ा गम्भीर थे और हिचकिचा रहे थे। यह देख उदारस्वभाव बाबाजी महाशयने खाते-खाते जलेबीका एक टुकड़ा उनके मुखमें दे दिया। उन्होंने भी एक टुकड़ा लेकर बाबाजी महाशयके मुखमें दे दिया। इस प्रकार आनन्द-सागर की उत्ताल तरंगोंमें जो भी आया, वह आनन्दमय हो गया। गुरु गौरव और मर्यादा मानो प्राणोंके भयसे जाने किस पर्वत-गह्वरमें जा छिपे। उपस्थित दर्शकजन सुमधुर आनन्दमय लीला-क्रीड़ा देख मुग्ध हो गये। बहुत समय इसी प्रकार परमानन्दमें बीत गया। फिर समय अधिक हुआ जान सब विनोद-मन्दिर लौट गये।

एक दिन शामको कोई चार बजे बाबाजी महाशय किसी से कुछ कहे-सुने बिना अकेले श्यामकुण्डकी ओर जाने लगे। भाव एकदम गम्भीर; किसीसे कुछ कहना सुनना नहीं। उन्हें अकेला जाते देख गोविन्ददादा और फणी उनके पीछे हो लिये। वे श्यामकुण्डके आगे धर्मशालाके पासके रास्तेसे श्रीराधाकुण्डके पूर्वकी ओर स्थित कदम्बके बनमें जाने लगे। जाते जाते अर्द्ध-स्फुट स्वरमें न जाने क्या कह उठते। क्रमशः उस कदम्बके बन के बीच एक निर्जन स्थानमें काँटोंके जंगलमें जा बैठे। थोड़ी देरमें श्रीरामहरिदास बाबाजी, श्रीहरिचरणदास बाबाजी, श्री-माधवदास बाबाजी आदि उन्हें खोजते-खोजते वहाँ आ गये। देखा कि वे गम्भीर मुद्रामें भयानक कन्टकाकीर्ण जंगलमें जहां किसीका जाना संभव नहीं, बैठे हैं। विस्मित होकर श्रीहरि-चरणदास बाबाजी महाशयने गोविन्ददादासे कहा, 'तुम लोग कैसे हो ? ऐसे भयानक काँटोंके जंगलमें इन्हें क्यों बैठने दिया। और जगह नहीं मिली ?'

गोविन्द०—हमने नहीं बैठने दिया, ये स्वयं आकर बैठ गये।

हरि०—तुम लोग अच्छे स्थानकी व्यवस्था करते, तो क्या ये ऐसी जगह बैठते ?

गोविन्द०—हम लोगोंमें ऐसी सामर्थ्य कहाँ जो इनकी इच्छाके विरुद्ध कार्य कर सकें ?

इस पर श्रीहरिचरणदासजी बाबाजी महाशयकी ओर लक्ष्य कर बोले, 'पशु-पक्षी तक इस घोर जंगलमें प्रवेश नहीं कर पाते, आप यहाँ कैसे आ गये ?'

बाबाजी महाशय मृदुभावसे हँसते हुए बोले, 'मेरे पैर सख्त हैं, और मैं दिनमें बड़ी सावधानीसे देखभाल कर यहाँ

आया हूँ। तिस पर भी तुम्हारे प्राणोंको व्यथा पहुँची है। पर सोचो कि दिन-रात, समय-असमय, अँधेरे और उजियारेमें कुसुम-सुकोमलाङ्गी प्राणेश्वरी राधा यहाँ कैसे आती-जाती हैं? आह! उस बातको सोचते ही हृदय फटने लगता है।' यह कहते कहते उनका कण्ठ गद्‌गद् हो गया, आँखें डबडबा आईं। फिर गद्‌गद् कण्ठसे बोले, 'भाई, कातर भावसे योगमायादेवीसे प्रार्थना करो कि वे वृन्दादेवीसे इसकी कुछ व्यवस्था करनेके लिये कहें, नहीं तो काम कैसे चलेगा?' अन्तमें सभीके अनुरोध पर वे पासके एक कदम्बके पेड़के नीचे आकर बैठ गये। इसी समय कामिनीबाबूको साथ ले राजर्षि वहाँ आ पहुँचे और सभी को नियमानुसार दण्डवत् प्रणाम कर बोले, 'दादा! आप हम लोगोंसे कहे बिना इस जंगलमें आकर छिप गये।'

बाबाजी – भाई, मेरी कुछ ऐसी ही आदत है।

हरि०—हम लोगोंके साथ आँखमिचौनी नहीं चलेगी?

बाबाजी—नहीं भाई! आँखमिचौनी नहीं; चिर दिनके अभ्यासके कारण ही आ गया। तुम लोगोंके साथ लुकाछिपी करूँगा, तो लीलामें प्रवेश किन्हें लेकर करूँगा? तुम परम पण्डित हो, एक श्लोक तो सुनाओ।'

हरिचरणदास दीनताके साथ श्रीपाद रघुनाथदास गोस्वामीका 'तवैवास्मि तवैवास्मि न जीवामि त्वया विना। इति विज्ञाय देवि त्वं नय मां चरणान्तिकम्।' श्लोक सुनाया। श्लोक सुन बाबाजी महाशय भाव-विभोर हो गये। अश्रुजलसे वक्षस्थल भीग गया। सात्विक विकारोंने आकर एकसाथ उनके शरीर पर अधिकार कर लिया। वे कातर प्राण और गद्‌गद् कण्ठसे प्राणेश्वरीसे जाने क्या-क्या कहने लगे। उपस्थित लोग

उनकी ऐसी अवस्था देख जाने कैसे हो गये। वे आविष्ट हो श्रीदास गोस्वामीके वैराग्य, उनकी बाहरी कठोरता अन्तःकरण की रसालता और श्रीराधारानीके निकट विशुद्ध माधुर्यमयी सेवा-प्रार्थनाकी बात कह रहे थे और रक्तवर्ण अधखुले नेत्रोंसे अविरत अश्रु बहा रहे थे। इस प्रकार कुछ समय बीतने पर राजर्षि गद्गद् कण्ठसे बोले, 'दादा! काफी समय हो रहा है, अब विनोद-मन्दिर नहीं चलेंगे?' उन्होंने भाव-विभोर होकर कहा 'चलो भाई, मेरा तो कुछ भी भजन-साधन नहीं हुआ; तुम्हारे सङ्ग-प्रभावसे यदि कुछ हो जाय तो ठीक।' ऐसा कह-कर वे धीरे-धीरे चलने लगे। सब लोग साफ रास्तेसे जा रहे थे पर वे पूर्ववत् काँटोंवाले रास्तेसे ही जा रहे थे। साथियोंको यह देख विशेष कष्ट हो रहा था। राजर्षि बोले, 'दादा! काँटों पर क्यों चल रहे हैं? इस ओर आइये न।'

बाबाजी—भाई, मुझे दिनमें भी इतनी सावधानीसे साधारण काँटेवाले रास्ते पर जाते देख तुम लोगोंके प्राण रो उठे। एक बार प्राणेश्वरीकी बात भी तो सोचो। वे आँधी, तूफान, सर्दी, गर्मी और अँधियारी रातमें बराबर ही इस जंगल में गमनागमन करती हैं। तुम लोग उनके लिये रोकर अधीर क्यों नहीं होते?

रसिक०—हम लोग स्मरणमें प्यारीजीको अच्छे रास्तेसे न ले जाकर काँटेदार रास्तेसे क्यों ले जायँ?

बाबाजी—ठीक है। तो हम लोग अपनी-अपनी बुद्धि-वृत्ति द्वारा जिस प्रकार लीलाका गठन करेंगे, श्रीराधागोविन्द ठीक उसी प्रकार लीलादि करनेको बाध्य होंगे, उसके अतिरिक्त वे कुछ और न कर पायँगे। करेंगे भी तो हमें वह ग्राह्य न होगा। है न यही बात?

रसिक०—पूरी तरहसे न भी सही, पर बहुत कुछ बात यही है।

बाबाजी—तो उसे 'लीला-स्मरण' न कहकर 'लीला-गठन' कहना ठीक न होगा ? क्योंकि स्मरणका अर्थ है पूर्व-आचरित विषयका अनुशीलन करना अथवा ज्यों का त्यों हृदय में अनुभव करना। नहीं तो लीलाका नित्यत्व ही क्या रहा ? मेरे अनुभवमें श्रीकुण्ड-मिलन होता है मध्याह्नके समय; किसी दूसरेके अनुभवमें होता है सन्ध्या-समय; किसी तीसरेके अनुभव में होता है रातको। तो बताओ, श्रीराधागोविन्द किसके अनु-सार कार्य करेंगे ?

रसिक०—नहीं, मेरा मतलब यह नहीं। वास्तवमें नित्य-लीला जिस तरह अनुष्ठित हुई है या हो रही है, उसका उसी भावसे अनुशीलन करना ही स्मरण है। फिर भी किसी-किसी बातको लेकर हम लोगोंके प्राणोंको बड़ा आघात पहुँचता है, इसलिये उस विषयको हम लोग अन्य रूपमें ग्रहण कर लेते हैं।

बाबाजी—पदकर्त्ता महाजन कहते हैं, 'तपनक तापे, तपत भेल महीतल, बालुका दहन समाने। बड़इ मनोरथे, भाविनी चलु पथे, ताप तपन नहिं माने।' हम यदि आग जैसी उत्तप्त बालू पर नवनीत-कोमलाङ्गी श्रीमतीको अभिसारके लिये नहीं ले जाते, तो ग्रीष्मकालमें श्रीकुण्ड-मिलन कैसे करायँगे ? इसी तरह वर्षाऋतुकी अँधेरी रातमें, घनघोर वृष्टिके समय वज्रके समान मेघ-गर्जनके बीच, सर्पोंसे आच्छादित मार्ग पर, अभिसारके लिये कैसे ले जायँगे ?

रसिक०—अच्छा, श्रीराधागोविन्द लीला जैसी शास्त्रादि में वर्णित है, उसके अतिरिक्त उसका और कोई रूप नहीं हो सकता ?

बाबाजी—क्यों नहीं हो सकता ? स्वाधीन लीलादिका सम्पूर्ण रूपसे वर्णन करना किसीके लिये सम्भव नहीं। शास्त्रोंने दिग्दर्शन मात्र किया है। फिर भी प्रत्यक्ष अनुभव करनेवाले पूर्व महाजनोंके वचनोंकी अवहेलना करना ठीक नहीं लगता।

रसिक०--तब तो रागमार्गका भजन भी विधिमें आ गया।

बाबाजी—इसे विधि मार्ग नहीं कहते। अनुराग विहीन प्राणोंसे नरकादिके दुःखके भयसे और स्वर्गादिके सुखकी प्राप्ति की आशासे, शास्त्र-शासनानुयायी जो भगवद् भजन होता है, उसीको विधि कहते हैं। वंध भक्त शास्त्रयुक्तिके बाहर कोई कार्य नहीं कर सकता। रागमार्गावलम्बी साधक इसके बिलकुल विपरीत करता है, 'शास्त्रयुक्ति नाहि माने दृढ़ श्रद्धावान।' उसके लिये शास्त्रशासन अवश्य पालनीय नहीं। मोटी बात यह कि अनुरागयुक्त हृदयसे लोभपरवश होकर जिस रास्ते पर चलना अपने भजनके अनुकूल होता है, निर्भीक साधक उसी रास्तेसे चलता है। रागमार्ग-प्रकाशक शास्त्रकार लोग तो अपने हृदयके भावमात्र प्रकाशित करते हैं।

इस प्रकार इष्टगोष्ठी करते-करते सब लोग विनोद-मन्दिर में जा पहुँचे। हरिचरणदास बाबाजी आदि आपके मुखसे युक्ति-पूर्ण सिद्धान्त सुनकर परमानन्दित हुए।

इस प्रकार दिन बीतने लगे। एक दिन सवेरे करीब दस बजे वृन्दावनसे प्रभुपाद रघुनन्दन गोस्वामी पधारे। उस समय बाबाजी महाशय, श्रीरामहरिदास बाबाजी, श्रीमाधवदास बाबाजी आदि महात्माओंके साथ विनोद-मन्दिरके बगलवाले कमरेमें बैठकर नाना प्रकारकी भगवत् चर्चा कर रहे थे। प्रभु-

पाद वहाँ जाकर उग्रभावसे बाबाजी महाशयसे बोले, 'क्यों, तुम समस्त भजन-साधनको उड़ाकर एकमात्र कृपाको ही बलवान मानते और उसी तरह सबको उपदेश देते हो ?'

बाबाजी—आपसे किसने कहा ?

प्रभु०—वृन्दावनमें इस बातको लेकर खूब समालोचना चल रही है, तभी सुनकर तुम्हारे साथ झगड़ा करने आया हूँ।

बाबाजी—अच्छा, आप थोड़ा स्थिर हों, धीरे-धीरे सब सुनियेगा।

प्रभुपाद थोड़ी देर दम लेकर बोले, 'बोलो भाई, कृपा पहले या साधन ?'

बाबाजी—आप लोग आचार्य हैं, सिद्धान्त तो आप ही निश्चित करेंगे; हम केवल अपने हृदयके सन्देह आपके चरणोंमें निवेदन करेंगे। आप बतायँ, पहले कृपा या साधन ?

प्रभु०—पहले साधन चाहिये। कृपा कोई पेड़का फल या आकाशका जल तो है नहीं; जिसे सर्वसाधारण इच्छानुसार प्राप्त कर लें।

बाबाजी—मेरे मनमें एक सन्देह है। यदि साधन करनेसे ही कृपा प्राप्त हो, तो उनका मुँह जोहनेकी क्या आवश्यकता ? मैं जैसा साधन करूँगा, वैसी वस्तु तो उन्हें देनी ही होगी; उसके लिये उनकी खुशामद क्यों करूँ ? और ऐसी कृपाके लिये उन्हें कृपामय ही क्यों कहा जाय ? इसी प्रकारकी बात बाल्मीकि मुनिने गङ्गाको लक्ष्यकर कही है, 'सुरधुनि मुनिकन्ये तारये: पुन्यवन्तं, स तरति निजपुण्यैस्तत्र किन्ते महत्वम्। यदि च गतिविहीनं तारये: पापिनं मां, तदपि तव महत्वं तन्महत्वं महत्वम्।' ठीक है, जिसका कोई नहीं है, या जिसका भजन-साधन कोई सम्बल नहीं, उस पर कृपा करें तभी तो कहा जा

सकता है कि वे कृपामय हैं। आप लोग कहते हैं–पहले साधन, पीछे कृपा। मैं कहता हूँ–पहले कृपा, पीछे साधन। मैं साधनको उड़ाता नहीं। हम लोग कलिहत दुर्बल जीव हैं, अन्तःकरणकी वृत्ति सर्वदा नाना प्रकारकी आत्मसुख-कामनासे परिपूर्ण रहती है; मन पद्म-पत्र पर स्थित जल-बिन्दुकी तरह चंचल रहता है। अतः साधन द्वारा उन्हें प्राप्त करनेकी आशा ही निराधार है। हम लोग सदा ही सुखलिप्सु हैं, अतः क्षणिक सुखकी लालसा का परित्याग कर 'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्' ऐसे सात्विक नित्य सुखकी आशा करना हमारे लिये सम्भव नहीं; साधन-भजनकी इच्छा, अथवा कठोर व्रतादि द्वारा भगवत्-साक्षात्कार लाभकी अभिलाषा भी मेरे विचारसे कृपाके बिना नहीं हो सकती। अन्यान्य पंथोंके उपासक भी साधन-भजनकी बात करते हैं, वह थोड़ा-बहुत सम्भव हो सकता है; पर ब्रज-भाव उपासना तो कृपाके बिना किसी प्रकार सम्भव ही नहीं। मेरा तो यहाँ तक विश्वास है, बिना कृपाके ब्रज-भावकी उपासना जनसाधारण हृदयमें धारण ही नहीं कर सकते।

प्रभु०—अच्छा, छः गोस्वामी और अन्यान्य गौरपरिकर गण स्वयं जिस कठोर साधन-भजनका आचरण कर जगतको शिक्षा दे गये हैं, वह सब क्या हमारे लिये आचरणीय नहीं है?

बाबाजी—जो नित्य परिकर हैं, उनका आचरण हमारे स्मरणका विषय है। नित्यसिद्ध परिकरगण कृपापरवश हो हम लोगोंकी शिक्षाके लिये जो आचरण कर गये हैं, उनकी उस अहैतुकी कृपाको आगे रख, उनके आचरित मार्गका अनुसरण करना हमारा कर्त्तव्य है। मैं और ज्यादा क्या कहूँ? यदि कोई अन्तर्निविष्ट भावसे थोड़ा विचार करे, तो वह निश्चय ही समझ जायगा कि कृपाके बिना हम कुछ नहीं कर सकते।

अब प्रभुपादका हृदय द्रवित हुआ; आँखें डबडबा आईं। गद्गद् कण्ठसे वे बोले, 'अब मैं समझ गया कि एकमात्र कृपा ही सर्वोपरि है। यदि निताइ-गौराङ्ग कृपा कर हम लोगोंको ब्रह्मादिके अगोचर निगूढ़ ब्रजरस न समझाते, तो हम यह धन कहाँ पाते ? यह साधन-सुलभ तो है नहीं। मैं जान गया कि बिना कृपाके युग-युगान्तर तक भजन-साधन करने पर भी ब्रज-प्राप्ति सम्भव नहीं है।

एक अन्य सज्जन बोले 'श्रीमन्महाप्रभुने रामानन्दरायसे कहा है, 'साध्य वस्तु साधन बिना केह नाहि पाय। कृपा करि कहो राय पाबार उपाय।' इसका क्या मतलब है ?'

बाबाजी—साधन बिलकुल नहीं करना है, ऐसा तो मैं नहीं कहता। कृपा होनेसे ही साधनकी बात हृदयमें धारणकी जा सकेगी। तभी महाप्रभुने कहा है, 'कृपा करि कहो राय पाबार उपाय' अर्थात् पहले कृपा करो, तभी साधन-वस्तु हृदयमें जाग्रत होगी। फिर राय रामानन्दने साधनके विषयमें क्या कहा है, वह भी देखिये—

राधाकृष्ण लीला हय अति गूढ़तर।
दास्य वात्सल्यादि भाबेर ना हय गोचर॥
तबे एक सखीगणेर इहा अधिकार।
सखी हइते हय एइ लीलार बिस्तार॥
सखी बिना एइ लीला पुष्ट नाहि हय।
सखी लीला बिस्तारिया सखी आस्वादय॥
सखी बिना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति।
सखी भाबे जेइ ताँरे करे अनुगति॥

राधाकृष्णेर कुंजसेबा साध्य सेइ षाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय ॥

साधक हो या सिद्ध सभी अवस्थाओंमें साधन-भजन आवश्यक है; पर प्रत्येक अवस्थामें चाहिये आनुगत्य। आनुगत्य चाहनेका अर्थ जो अपनेसे आगे हैं, उनकी कृपाकी अभिलाषा।

इस प्रकार प्रेमावेशमें बाबाजी महाशयने नाना प्रकारके तत्व-सिद्धान्तोंकी बात कही, जिसे सुनकर सभीने परमानन्द प्राप्त किया।

एक दिन प्रातःकाल श्रीराधाकुण्डके अद्वितीय पण्डित श्रीयुत नित्यानन्ददास बाबाजी बाबाजी महाशयके पास आये। उन्हें अटलदासके अलावा और कोई नहीं पहचानता था। दूरसे हो पण्डितजोको देख अटलदादा बोले, 'ये जो आ रहे हैं, एक अद्वितीय पण्डित हैं; श्रीजीव गोस्वामीके परिवारी हैं, नाम है श्रीनित्यानन्ददास पण्डित।' यह सुनते ही बाबाजी महाशयने उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर विशेष आग्रह सम्मानके साथ आसन पर बिठाया। बैठते-बैठते वे बोले 'क्यों रे चरणदास! सुना है तेरे शिष्य किसीको दण्डवत् प्रणाम नहीं करते, किसीके प्रति श्रद्धा-भक्ति नहीं रखते?'

बाबाजी—मैं तो इन लोगोंका गुरू हूँ नहीं। ये सभी जगद्गुरु नित्यानन्दके कृपापात्र हैं। उन्हींकी प्रेरणासे ये नाम सुनानेके लिये मेरे पास रहते हैं। मैं भी इन लोगोंका संग पाकर अपनेको कृतार्थ समझता हूँ। अच्छा, इन सबोंने तो अभी आपको दण्डवत् प्रणाम किया है?

पण्डितजी—हाँ, सो तो किया है।

बाबाजी—तो फिर सुनी हुई बात पर ध्यान देना आप जैसे महापुरुषोंके लिये कहाँ तक ठीक है?

पण्डितजी बाबाजी महाशयकी बातका कोई उत्तर न देकर बड़े उत्तेजित होकर बोले, 'इस बेटा विश्वनाथ चक्रवर्त्ती की स्पर्धा देखो। वह त्रिभुवन-विजयी श्रीजीव गोस्वामी पादके ऊपर कलम चलाता है। पूर्व महाजनोंके पद-चिह्नोंका अनुसरण करना ही परवर्त्ती लोगोंका कर्त्तव्य है। पर वह तो जगद्गुरु की बातके ऊपर भी कलम चलाता है। मुझे उस पर क्रोध आता है। मेरा क्रोध कभी नही जा सकता।'

ऐसा कहते-कहते उनकी दोनों आँखें बड़ी और लाल हो गईं। मानो क्रोधावेशमें वे डूब गये हों। उनकी अवस्था देखकर बाबाजी महाशयने कुछ कहनेका साहस न किया। कुछ देर बाद वे चले गये।

दूसरे दिन अपराह्नके समय बाबाजी महाशय श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी, माधवदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजी, बनमालीबाबू आदि कुछ व्यक्तियोंके साथ श्रीराधाकुण्ड और श्यामकुण्डके संगमस्थल पर बैठे नाना प्रकारकी लीला-कथाओंका आनन्द ले रहे थे। उसी समय पण्डित श्रीनित्यानन्द दासजी पहुँचे। सभीने बड़े आदरके साथ उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया।

बाबाजी महाशयने विशेष आग्रहके साथ उन्हें अपने पास बिठाया। वे पहले दिनकी तरह फिर श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती महाशय पर नाना प्रकारके वाक्-बज्र चलाने लगे। सभी भयभीतसे बैठे रहे। बहुत देर बाद बाबाजी महाशय धीरे-धीरे बोले, 'आप यदि अपराध ग्रहण न करें, तो मैं इस सम्बन्धमें कुछ निवेदन करूँ।'

पण्डितजी—हाँ, हाँ, स्वच्छन्द होकर कहो।

बाबाजी—देखिये, यदि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती महाशय न आते, तो श्रीपाद जीवगोस्वामीको कोई पहचान भी न सकता। मैं कहता हूँ, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती महाशय श्रीपाद जीवगोस्वामीके अवतार हैं, अथवा श्रीपाद जीवगोस्वामीने श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तीके शरीरमें आविर्भूत होकर अपने मनोभाव सरल भाषामें सर्वसाधारणके आगे रखे हैं। श्रीजीव गोस्वामीपाद अपने मनकी बात अपनी कलमसे स्वयं निःसंकोच हो प्रकट न कर सके। तभी उन्होंने विश्वनाथ चक्रवर्त्ती महाशय द्वारा उसे प्रकट किया। मेरा विश्वास है, यदि विशुद्ध भावसे श्रीजीव गोस्वामी पादको कोई प्रेम करता है, तो एकमात्र चक्रवर्त्ती महाशय। आप यदि श्रीजीव गोस्वामीसे प्रेम करते हैं, तो पहले विश्वनाथ चक्रवर्त्तीसे प्रेम करना या उनके प्रति भक्ति-भाव रखना उचित होगा। जो विश्वनाथ चक्रवर्त्तीके प्रति द्वेष रखता है, वह श्रीजीव गोस्वामी पादका कृपा-पात्र कभी हो सकता है, यह बात मेरी समझमें नहीं आती। मैं और क्या कहूँ ? आप सुपण्डित हैं, थोड़ी गहराईसे विचार कर देखिए। श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थोंकी टीकाओंमें गोस्वामीपाद और चक्रवर्त्ती महाशयके सिद्धान्तोंमें कोई अन्तर नहीं। पर हृदयका द्वेषभाव त्याग किये बिना उनका मर्मार्थ समझमें नहीं आ सकता। हिंसा, द्वेष, ईर्ष्या, असूया, लब्धपद-प्रतिष्ठा आदि असत्‌ग्रह जब तक मानवके हृदयमें रहते हैं, तब तक उसमें प्रकृत तत्व अथवा लीलाकी स्फूर्त्ति नहीं हो सकती।

बाबाजी महाशय आविष्ट भावसे बहुत देर तक नाना प्रकारकी बातें कहते रहे। पण्डितजी भी एकाग्र चितसे उनके अमृत-मधुर, दैन्यपरिपूर्ण वचनामृतका पान करते रहे। जैसे ही उनकी बात समाप्त हुई पण्डितजी बोले, 'भाई, बहुत हो गया।

आज तक मेरी इस गलत धारणाको कोई दूर न कर सका। राधारानीकी कृपासे आज तुम्हारे साथ वार्त्तालाप कर मुझे पता चला कि मैंने चक्रवर्त्ती महाशयके निकट अपराध किया है। वास्तवमें मैंने ईर्ष्यावश महत् पुरुषकी मर्यादाका लंघन किया। जो भी हो, तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम दीर्घ जीवन प्राप्त कर प्रकृत सुसिद्धान्त द्वारा जगत्का अभाव दूर करो। तुमसे एक और भीख माँगनी है।'

बाबाजी महाशय हाथ जोड़कर बोले, 'बाबा, मैं तो आपका दास हूँ। कृपा कर आदेश दीजिए, मैं उसीसे अपनेको कृतार्थ समझूँगा।'

पण्डितजी—कल तुम सवको मेरी कुटीपर श्रीगिरिधारी का प्रसाद-सेवन करना होगा।

बाबाजी—यह तो मेरे लिए बड़ सौभाग्यकी बात है। जव तव जाकर आपका अधरामृत पा लेनेमें ही तो हमारा कल्याण है।

पण्डितजीके चले जानेके बाद श्रीमाधवदासने बाबाजी महाशयसे कहा, 'भाई, तुम बड़े चतुर हो? जिसके आगे चौरासी कोसके वैष्णव बात कहनेका साहस नहीं करते और जिसके डरसे सब अस्थिर रहते हैं उसी इतने बड़े पण्डितको तुमने एकदम चुप कर दिया। पानीकी तरह ठण्डा कर दिया। वृन्दावनमें आकर खूब चमत्कार दिखा रहे हो; यह चमत्कार दिखानेकी जगह नहीं है भाई।' बाबाजी महाशय हँसते-हँसते बोले, 'किसने कहा वृन्दावन चमत्कारकी जगह नहीं? यदि कोई चमत्कारकी जगह है, तो वह पूरी तरहसे वृन्दावन ही है। अच्छा बताओ, राधाकृष्णकी कौन सी लीलामें चमत्कार नहीं है? चोरी, डकैती, मिथ्या प्रवञ्चना, लम्पटता, शठता, चम-

त्कारिता आदिका आकरस्थान है वृन्दावन । चमत्कारिता दिखानी है, तो यहीं दिखानी चाहिए ।'

माधवदास बाबाजीने परिहास करते हुए बाबाजी महाशयकी पीठ पर हाथ रखकर कहा, 'भाई, सुना है तुमने बङ्गदेशमें बहुतसे पतितोंका उद्धार कर उन्हें प्रेमदान किया है। इस बार हमने तुम्हें पकड़ लिया है, आसानीसे नहीं छोड़ेगें । हमारा भी उद्धार करना पड़ेगा ।' बाबाजी महाशयने हँसते-हँसते कहा, 'भाई, पतित मिलते, तो पतित-पावन हो जाता, पर मिलें कहाँ । पतितोंका पाना तो दूर, वृन्दावनमें कोई प्राकृत जीव ही नहीं देख पा रहा हूँ ।'

माधव०—क्यों, हम लोग ही तो कलिहत पतित जीव हैं ।

बाबाजी—नहीं, नहीं । अप्राकृत नित्य चिन्मय वृन्दावन में क्या प्राकृत जीवोंका वास हो सकता है ? तुम लोग तो प्रेममयीकी नित्यदासियाँ हो, उनके प्रेममें मुग्ध होकर तुमने ब्रजवास प्राप्त किया है। तुम लोग ही कृपा कर राधारानीकी दासियोंमें मेरी गणना कर मुझे वृन्दावन वासी बनाकर धन्य करो ।

बाबाजी महाशयकी बात सुनकर रसिकदास बाबाजी बोले, 'आपकी बातसे एक शंका होती है। शास्त्र कहते हैं कि वृन्दावन-लीला प्राकृत दृष्टिके अगोचर है अथवा प्राकृत जीवका वास यहाँ नहीं होता। आजकल हम लोग इस बातका कैसे विश्वास करें, देखते हैं कि एकदम असच्चरित्र, नास्तिक, पाखण्डी, अविश्वासी व्यक्ति आठ-दस रुपये खर्च कर रेलमें बैठ कर यहाँ आ जाता है और वृन्दावन वास करने लगता है। उसका वृन्दावन-लीला कथाकी ओर कान लगाना तो दूर रहा,

वह जन्मसे उसमें अविश्वास करता आया है। ऐसे लोगोंको आप जोव कहेंगे, या राधारानीकी दासियाँ ?'

बाबाजी--देखो, ईश्वरतत्व और माधुर्य लीलातत्वमें बहुत भेद है। ईश्वरतत्व सार्वजनीन है; उसमें उपासक-अनुपासकका कोई भेद नहीं; पर लीलातत्वमें उपासक-भेदके कारण लीलाका संक्षेप, विस्तार, या विकास होता है। शास्त्र कहते हैं, 'वृन्दावनके तरुलता, पशु-पक्षी सभी अप्राकृत हैं। सर्वदा षड़्ऋतुएँ यहाँ वर्तमान हैं, चिन्तामणिमय भूमि है; कल्पतरुमय बन हैं, पर 'चर्मचक्षे देखे तारे प्रपञ्चेर सम।' चर्म चक्षुओंका अर्थ है अनुपासकके चक्षु। इसी प्रकार शास्त्रोंमें लीलातत्वके सम्बन्धमें जिन सिद्धान्तोंका वर्णन है, वह उपासकके लिए हैं। जो लोग गोपी-भावके उपासक हैं, वे वृन्दावनमें एकमात्र परम-पुरुष नन्दनन्दन गोविन्दको पुरुष मानकर बाकी सबको राधा-रानीकी दासियाँ समझते हैं। पाखण्डी, ढोंगी, आस्तिक, नास्तिक—जो भी कोई वृन्दावनमें आता है, वह उपासकके लिए राधारानीका परिकर होता है, क्योंकि कृष्ण-आकर्षणके बिना कोई वृन्दावन नहीं आ सकता, और कृष्ण राधारानीके परिकरको छोड़ और किसीको आकर्षित नहीं करते। अतः कोई भी वृन्दावनमें क्यों न आए, वह राधारानीका परिकर है। और कोई इस बातको मनमें धारण करे या न करे, पर उपासकोंके मनमें यदि यह दृढ़ विश्वास नहीं रहता, तो यह उनकी उपासनाके विरुद्ध पड़ता है।

इसी प्रकार कथा-वार्त्ता करते हुए सभी लोग विनोदजी के मन्दिर जा पहुँचे।

एक दिन बाबाजी महाशय अपराह्नके समय श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी आदि कुछ महात्माओंको साथ लेकर

कुसुम सरोवर गए। कुसुम सरोवर पर दाऊजीके मन्दिरके आगे जिस छतरीमें श्यामदादा रहते थे, उसके पास पहुँचकर वे श्यामदादासे बोले, 'श्यामदास ! बड़ी भूख लगी है; कुछ दे तो भाई !' यह सुनकर श्यामदादा बड़े परेशान; कैसे क्या किया जाय। बाबाजी महाशयने कहा, 'श्यामदास ! इतना परेशान होनेकी क्या आवश्यकता है, तुम्हारे यहाँ जो सूखी रोटीका टुकड़ा है, उसीसे काम चल जायगा।'

श्याम०—मैं बनवासी हूँ, मेरे पास सूखी रोटीका टुकड़ा छोड़ और क्या हो सकता है ?

यह कहकर वे सूखी रोटियोंके सब टुकड़े और एक दाऊजीका प्रसादी लड्डू ले आये। देखते ही सब लोग बच्चों की तरह छीना-झपटी कर खाने लगे। आनन्दका स्रोत बह चला। सभी विभोर हो गए। किसीको बाह्यज्ञान न रहा। मौका पाते ही श्यामदादाने बाबाजी महाशयसे पूछा, 'मेरे साथ तो आपका कभी कोई परिचय नहीं हुआ, उस दिन मुझे देखते ही आपने मेरा नाम लेकर कैसे पुकारा ?'

बाबाजी—भाई, तुम्हारे साथ क्या अबका परिचय है ? हम लोग तो इस प्रकार बहुत समयसे भ्रातृ-सम्बन्धमें आबद्ध हैं। स्नेह ही तो है आकर्षणकी वस्तु। जगत्के प्रत्येक जीव अथवा वस्तुके साथ हम लोग इस स्नेह-पाशमें बँधे रहते हैं, तभी तो इसे छोड़कर दूसरी ओर अर्थात् मुक्ति-पथ पर जानेकी हम लोगोंकी इच्छा नहीं होती। परमार्थ जगत् तकमें हम लोग परस्पर ममता-पाशमें बँधे रहकर यौथिक रूपसे सेवादि करने की प्रार्थना करते रहते हैं।

श्याम०—पर हम लोग तो वह सब कुछ अनुभव नहीं कर पाते।

बाबाजी—प्राकृत राज्यकी नाना प्रकारकी गन्दगीसे मन को थोड़ा ऊपर उठानेसे ही वह स्थिरता प्राप्त हो जाती है, जिससे सभी इस बातको अनुभव करने लगते हैं। विचार कर देखो न! कभी-कभी किसी व्यक्तिको देखते ही यह लगता है कि इसे कहीं देखा है और यह न जाने कितना अपना है। जब कभी ऐसा हो, तभी समझना चाहिए कि पहले जन्ममें निश्चय ही उसके साथ कोई न कोई सम्बन्ध था।

इस प्रकार रसालाप चलता रहा। सबने कुसुम सरोवर पर सभी स्थानोंके दर्शन किए और फिर बड़े आनन्दके साथ सब विनोद-मन्दिर लौट आए।

एक दिन प्रातःकाल बाबाजी महाशयने प्रातः कृत्य और श्रीराधाकुण्ड-श्यामकुण्डकी परिक्रमा कर सीधे हरिचरणदास बाबाजी महाशयकी भजनकुटीके आगे पहुँचकर आवाज दी 'महात्मा'। उनकी आवाज पहचान कर फौरन ही हरिचरण दास बाबाजी कुटीके द्वार पर आए और उनका हाथ पकड़कर भीतर लिवा ले गए। बहुत देर तक नाना प्रकारकी लीला-कथा, महाप्रभुकी कृपा, दास गोस्वामीके वैराग्य आदि विषयों पर वार्त्तालाप कर उन्होंने कहा, 'भाई, तुम्हारा श्रीकुण्ड-वास, माधुकरी वृत्ति, तथा निष्किञ्चन भाव देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हूँ, पर जैसे एक कलसी दूधको एक बूंद गोमूत्र बेकार कर देता है, वैसे ही तुम्हारा एक व्यवहार देखकर मेरा मन न जाने कैसा हो गया।' हरिचरणदास बाबाजी अत्यन्त व्याकुल होकर बोले 'दादा! मुझे तो पता नहीं क्या हुआ। कृपाकर बताइये और मेरी चित्त-शुद्धि कीजिए।'

बाबाजी—भाई, तुम पण्डित हो, तुमसे और ज्यादा क्या

कहूँ ? उस दिन तुम विनोदबाड़ी माधुकरीके लिए गये थे; वहाँ तुमने एक दोना दाल और एक दोना तरकारी ली, यह देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ । क्योंकि मधुकरी वृत्तिका नियम ऐसा नहीं है । मधुकर नित्य नूतन फूलसे अत्यन्त सामान्य मात्रामें मधु लेकर अपनी उदर-पूर्त्ति करता है । उसी तरह हमें भी अपनी झोली और कर-पात्रमें जितना प्रयोजन हो, अर्थात् जितनेसे जीवन-रक्षा हो, उतना ही लेना चाहिए। पर चौदह स्थान ऐसे हैं,जहाँ भिक्षा करनेसे भक्तिदेवी अन्तर्हित हो जाती हैं और भिक्षा करनेवालेका पतन हो जाता है । वह स्थान हैं जहाँ हम सुपरिचित हैं; जहाँ हमारा खूब सम्मान होता है; राजगृह; वेश्यागृह; हाट; बाजार; पटवारीका घर; याजक ब्राह्मणका घर; श्मशान पालकका घर; सूदखोरका घर; विश्वासघातकका घर; व्याधका घर; दत्तापहारी (भेटको वापस लेनेवाला) का घर तथा गुरुद्रोहीका घर । कह सकते हो कि इन जगहों पर विनोदजीका महाप्रसाद मिलता है । ठीक है, पर विरक्ताश्रमी के प्रति महाप्रभुने जो कहा है, उसे याद रखना चाहिए—

प्रभु कहे आमि मनुष्य आश्रमे सन्यासी ।
काय मनोवाक्ये व्यवहारे भय बासि ॥
सन्यासीर अल्प छिद्र सर्व लोक गाय ।
शुक्लवस्त्रे मसीबिन्दु जैछे ना लुकाय ॥
राय कहे कत पापीर करियाछो अव्याहति ।
ईश्वर सेवक तोमार भक्त गजपति ॥
प्रभु कहे पूर्ण जैछे दुग्धेर कलस ।
सुराबिन्दु पाते केह ना करे परश ॥

जद्यपि प्रतापरुद्र सर्वगुणवान् ।
ताहारे मलिन करे एक राज नाम ॥'

(चै० च०, मध्यखण्ड १२वाँ परिच्छेद)

और देखो भाई ! तुम्हें तो देखते ही सेवकने व्यस्तता-पूर्वक दो दोनोंमें दाल-तरकारी तथा अन्यान्य वस्तुएँ लाकर दे दीं, पर क्या सभी मधुकरी करनेवाले वैष्णवोंके साथ ऐसा किया जाता है ? शायद नहीं। तो देखो, वहाँ तुम विशेष परि-चित हो, वहाँ तुम्हारा मान-सम्मान है, और फिर वह है राज-गृह । यह विरक्त वैष्णवके लिए कितना गर्हित काम है ।

इतना कहकर वे श्रीहरिचरणदास बाबाजीके हाथ पकड़ कर स्नेहपूर्ण कण्ठसे बोले, 'भाई, दुख मत करना । तुम्हारे जैसे सुविज्ञ व्यक्तिकी सामान्य सी त्रुटिको भी लोग विशेष रूप से ग्रहण करते हैं । तुम्हें चिन्ता किस बातकी ? इस आसन पर बैठकर भजन करो; तुम्हें जिस किसी वस्तुकी आवश्यकता होगी, प्रभु यहीं भेज देंगे । उनकी स्वयंकी प्रतिज्ञा है, 'जेइ जन भजे मोरे अनन्य हइया, तारे भिक्षा देइ मुँइ माथाय बहिया ।'

इस तरहकी बहुत सी कथावार्त्ताके बाद श्रीहरिचरण-दास बाबाजी गद्गद् कण्ठसे बोले 'दादा ! आप कृपा कीजिए, जिससे लाभ-पूजा-प्रतिष्ठाके चंगुलसे बचकर निष्किञ्चन भावसे मैं ब्रजमें समय बिता सकूँ ।'

बाबाजी—राधारानीसे कहो, वे कृपामयी हैं । अपनी दासी समझकर जो ठीक समझेंगी करेंगी । चिन्ता किस बात की ? तत्पश्चात् दोनों ही विनोद-मन्दिर चले गये ।

श्यामदादाके सारे शरीरमें खुजली हो गई थी, अतः वह सभीके साथ उठने-बैठने, खाने-पीनेमें संकोच करते थे और

अलग ही अलग रहते थे। एक दिन मध्याह्नमें सब लोग विनोद मन्दिरमें महाप्रसाद पाने बैठे। श्यामदासजी कुछ दूर खड़े हुए थे। बाबाजी महाशय उन्हें देखते ही बोले, 'श्यामदास ! वहाँ क्यों खड़े हो ? पंगतमें नहीं बैठे ?' श्यामदास हाथ जोड़कर बोले 'मेरे सारे शरीरमें खुजली हो गई है, मैं सबके बीच बैठने लायक नहीं हूँ।' बाबाजी महाशय बोले 'अरे, वह सब कुछ नहीं, मनका विकार मात्र है; आओ।' इतना कहकर उन्होंने उन्हें खींचकर अपनी बाँई ओर बिठा लिया। राजर्षि बोले 'क्यों ! रोज हम लोगोंको बहका देते हो, आज ताकतवरके हाथ पड़े हो। (बाबाजी महाशयसे) देखिये दादा ! श्यामदासजी हम लोगोंसे नहीं मिलते।' बाबाजी महाशय मृदुभावसे हँसते हुए बोले 'भाई, तुम लोग हुए मधुर भावके भावुक, तुम सबके भीतर यह अभिमान है कि हम राधारानीकी दासियाँ हैं; और श्यामदास है सख्य भावका भावुक, यह है पुरुषाभिमानी। यह तुम लोगोंमें कैसे मिल सकता है ? यह मेरे साथ मिल-जुल सकता है।' इस पर माधवदासजी बोले 'तो क्या तुम्हारा भी सख्य भाव है ? तो हम लोगोंका तुम्हारे साथ मिलना-जुलना नहीं होगा।'

बाबाजी—मेरी बात छोड़ दो; मैं तो तुम लोगोंके सभी तत्वोंमें हूँ।

यह सुनकर सभी हँसने लगे। रसिकदास बाबाजी बोले 'एक आदमी सभी तत्वोंमें रहेगा, तो क्या उसकी रस-निष्ठा रह सकेगी ?'

बाबाजी--भाई, निष्ठा-विष्ठा मैं नहीं समझता। मैं श्री-नित्यानन्दका दास हूँ। मेरे निताइ जब जैसे होंगे, उनके दास को भी वैसा ही होना पड़ेगा। वृन्दावनदासने कहा है—

नागर निताइ, नागरी निताइ, निताइ कथा शे कय ॥
राधार माधुरी, आनन्दमञ्जरी, निताइ नितू शे सेबे ।
कोटि शशधर, बदन सुन्दर, सखा सखी बलदेबे ॥
निताइ सुन्दरे, जोगपीठे धरे, रत्नसिंहासन सेजे ।
बसन निताइ, भूषण निताइ, बिलसे सखीर माझे ॥

इस प्रकार वे नाना प्रकारकी रसकी बातें कहते रहे, महाप्रसाद-सेवा करते रहे और आनन्द बरसाते रहे ।

एक दिन विनोद-मन्दिरमें बैठकर सब लोग इष्टगोष्ठी कर रहे थे । उसी समय काञ्चन नामक एक ब्रजवासी एक कापी लेकर बाबाजी महाशयके पास आया । उन्होंने पूछा, 'आप कौन हैं, भाई ?'

काञ्चन—बाबा, मैं राधाकुण्डकौ ब्रजवासी हूँ ।

बाबाजी महाशयने 'कृपा कीजिये' कहकर उसे प्रणाम किया और कहा 'मुझसे कुछ कहना चाहते हैं ?'

काञ्चन—बोलवे कूँ और कहा है ? मैं राधाकुण्डकौ ब्रजवासी हूँ, जे ही मेरी बात है ।

इस पर हरिचरणदास बाबाजी बोले 'इसकी इच्छा है कि आप इस कापीमें कोई एक नाम लिख दें ।'

बाबाजी—उससे क्या होगा ?

हरि०—होगा क्या ? यह आपके राधाकुण्डके ब्रजवासी हुए, अतः आपके जो भी अनुगत भक्त लोग यहाँ आयँगे, यह उन सभीके तीर्थगुरु होंगे । यही उद्देश्य है ।

बाबाजी महाशय प्रसन्न हो बोले 'आजसे ये मेरे तीर्थ-गुरु हुए ।'

हरि०—तो फिर इनकी कापीमें अपना नाम लिख दीजिए।

बाबाजी--भाई, जो लिखना हो तुम लिख दो, मैं अपने हस्ताक्षर कर दूँगा।

हरिचरणदास बाबाजीने जब सब लिख दिया, तो आपने हस्ताक्षर कर दिए और फणीको उन्हें दक्षिणाके तौर पर तीस रुपये देनेका आदेश दिया। फणीने उन्हें तीस रुपये भेंट कर दिए।

एक दिन बाबाजी महाशय सुबह बहुत जल्दी उठकर प्रात:कृत्यादिसे निवृत हो फिर बड़े गम्भीर भावसे जाकर लेट गए। साथियोंमेंसे किसीकी हिम्मत नहीं जो उन्हें उठा सकें। इसी समय श्रीमाधवदास बाबाजी आकर बोले 'दादा, अभी तक कैसे लेटे हैं। क्या शरीर अस्वस्थ है ?' कोई उत्तर न पाकर वे चुपचाप पास जाकर बैठ गए। कुछ देर बाद वे बच्चेकी तरह रोते-रोते माधवदास बाबाजीका गला पकड़ कर कहने लगे, 'भाई, मैं श्रीराधागोविन्दके दर्शन करनेकी इच्छासे श्रीवृन्दावन नहीं आया। मैं तो तुम जैसे कुछ अपने लोगोंको देखने आया हूँ। मुझे तुम लोगोंको देखकर कितना आनन्द होता है, मैं भाषा द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता।' यह सच है कि श्रीराधा-कुण्ड वासके समय महीने भर तक बाबाजी महाशयने जिस आनन्दका उपभोग किया और कराया, उसके शतांशके शतांश को भी यहाँ व्यक्त नहीं किया जा सका है। यह वे सुकृतिवान लोग ही जानते हैं जिन्होंने उस लीलाका किञ्चितमात्र भी अनु-भव किया है।

——

श्रीधामपुरी प्रत्यावर्त्तन

श्रीराधाकुण्ड पर श्रीविनोदविहारीजीके मन्दिरमें इसी प्रकार परमानन्दमें कुछ दिन बीत गए। एक दिन मध्याह्नमें बाबाजी महाशय विनोद-मन्दिरमें महाप्रसाद पाते-पाते साश्रु-नयन गद्गद् कण्ठसे सभीसे श्रीधामपुरी जानेके लिये विदा लेने लगे। यकायक ऐसी मर्मभेदी बात सुन सब बड़े दुःखी होकर कहने लगे 'दादा ! इतनी जल्दी हम लोगोंको इतना दुःख देना क्या ठीक है ? हम तो आशा करते थे कि अधिक नहीं तो कम से कम एक महीने और हम आपके मधुर सङ्गसे वञ्चित न होंगे, पर आज यकायक आपने बिदाईकी बात कह कर हमारे प्राणों पर जैसे बज्राघात किया है।' बनमालीबाबू बोले 'दादा ! आप और जो कुछ भी कहेंगे, मैं उसका पालन करनेके लिए बाध्य होऊँगा; पर आपका यह आदेश मैं नहीं सुनूँगा। इस समय जाना किसी तरह नहीं हो सकेगा। मेरी यह विनीत प्रार्थना है कि और कुछ दिन यहाँ रहकर विनोद-विनोदिनीको सुखी रखें और हम लोगोंको भी आनन्द प्रदान करें।'

बाबाजी—भाई ! पता नहीं मेरी यह कैसी बान है, मैं बहुत दिन एक स्थान पर नहीं रह सकता। लगता है कि इस बार निताइचाँद और अधिक नहीं रखेंगे। पर चिन्ता क्या है भाई ? यह दो दिनका माया-सम्बन्ध तो है नहीं। यह है पर-मार्थ-सम्बन्ध; यह जीवन-मरणमें समान भावसे बना रहेगा। कितनी ही बार आऊँगा, पर आज वृन्दावन जाने दो।

राजर्षि और बाधा न दे सके। इच्छा न होते हुए भी कामिनीबाबूसे बोले 'कल साथियों सहित दादाके वृन्दावन जाने की व्यवस्था कर दो।' कामिनीबाबू राजर्षिकी आज्ञानुसार

कार्य करने लगे। सभीका अनुरोध था; अतः उस दिन वृन्दावन जाना नहीं हो सका।

दूसरे दिन सुबह जैसे ही जानेकी तैयारी हुई, राजर्षि बोले 'कमसे कम इस समय तो विनोदजीका महाप्रसाद पाकर जाइये।' विशेष कातर भावसे की गई प्रार्थना वे टाल न सके। उन्होंने स्नान-आह्निक आदिके पश्चात् यथासमय विनोदजीका महाप्रसाद ग्रहण कर दो बजे अति ही मधुर वचनोंमें सबसे विदा लेकर वृन्दावनके लिए प्रस्थान किया। आपका मधुमय सङ्ग न छोड़ सकनेके कारण श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजो, माधवदास बाबाजी, रसिकदास बाबाजी, बनमालीराय, कामिनीबाबू आदि महात्मा लोग नाना प्रकारका आलाप करते हुए मंत्रमुग्धकी तरह गोवर्द्धन तक आपके साथ चलते रहे। गिरिराजका दर्शन करते हो सबने साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। बाबाजी महाशयने बनमाली रायबाबूको आलिङ्गन कर साश्रुनयन गद्‌गद् कण्ठसे कहा, 'भाई बनमाली ! इतने कातर क्यों होते हो ? निताइचाँदने चाहा, तो यथाशीघ्र आऊँगा, चिन्ता न करो। तुमने इतने महात्माओंका सङ्ग पाया है; ऐसा अनेक लोगोंके भाग्यमें नहीं होता; अतएव योगमायाकी कृपासे प्राप्त महात्माओंके साथ नित्यलीलाका प्रकटरूपमें अनुभव करते हुए विनोदजीकी सेवा करो। बाह्य और आन्तरिक आचार-व्यवहारको एक करनेकी चेष्टा करो। संचारी भावको स्थायी कर ऐसी चेष्टा करो जिससे वह स्थायी भाव स्वभावमें आ सके। उपासना-राज्यमें साधकके भाव, स्वभाव और स्वरूप यही तीन प्रकारके शरीर हैं। इनमेंसे यदि भाव और स्वभाव गठित हो जाते हैं, तो स्वरूपके लिए कोई बाधा नहीं रह जाती। शास्त्र कहते हैं 'स्वरूपतोऽन्याकारेऽपि

भावस्वभावयोः स्थायित्वे आशु कार्यसिद्धिः स्यात् ।' इस प्रकार नाना प्रकारके मृदुमधुर वचनों द्वारा सबको शान्त कर सबसे बिदा लेकर उन्होंने साथियों सहित वृन्दावनके लिये प्रस्थान किया। वे लोग बड़े दुःखी मनसे श्रीराधाकुण्ड लौट आये। पर श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी और माधवदास बाबाजी वृन्दावन तक साथ गये।

दूसरे दिन पुरी जानेकी तैयारी हो रही थी। उसी समय गणेशबाबू आदि कुछ लोग आकर कहने लगे, 'आज आपका जाना न होगा, क्योंकि प्रभुपाद मदनगोपाल गोस्वामी महाशय धामलाभ कर गये हैं। इसीके उपलक्ष्यमें कल नये सीतानाथसे सात मंडलियोंका कीर्त्तन निकलेगा; उसमें आपके योगदानके बिना काम न चलेगा।' श्रीपाद मदनगोपाल प्रभुके अप्रकट होने की बात सुनकर आप बड़े मर्माहत हुए और बोले 'यह तो मेरा बड़ा सौभाग्य होगा। कल किस समय कीर्त्तन निकलेगा?'

गणेश—शायद साढ़े चार बजे, पर यहाँसे चार बजे चले बिना वहाँ ठीक समय पर नहीं पहुँच सकेंगे।

दूसरे दिन अपराह्नमें प्रायः चार बजे श्रीयुत रामहरि-दास बाबाजी, माधवदास बाबाजी, गणेशबाबू आदि बहुत लोगों के साथ बाबाजी महाशय नये सीतानाथ जा पहुँचे। उनके पहुँचते ही कीर्त्तन निकला। एक-एक कर छः कीर्त्तन मण्डलियां बाहर निकलीं, तब वे निशान और खुन्नी लेकर निकले।

दूसरी मंडलियाँ नाना प्रकारके सुर-ताल और लयोंके साथ कीर्त्तन कर रहे थे, अतः चाहते हुए भी जनसाधारण उस कीर्त्तनमें योगदान नहीं कर सकते थे। पर इनके कीर्त्तनमें वह सब झंझट नहीं था। अतः इनके साथ बहुत लोग थे। आबाल-वृद्ध, युवक सभी प्राण खोलकर नाम कर रहे थे। लगता था

मानो आनन्दका समुद्र उमड़ पड़ा। जैसे ही कीर्त्तन बनखण्डोंके पास पहुँचा, श्रीगोपेश्वरके प्रभुपाद आकर कीर्त्तनमें योग देने लगे। बाबाजी महाशयने अवधूतको देखते ही प्रेम गद्‌गद् भाव से उन्हें आलिङ्गन किया। एक-दूसरेके स्पर्शसे दोनों विभोर हो गये। दोनोंके शरीरमें एक साथ सात्विक विकार इस प्रकार प्रकट हुए कि देखकर सभी विस्मित हो गये। उनकी एक-एक हुंकारसे मानो वृन्दावन भूमि कम्पित होने लगी। नामकी ध्वनि तेज हो गई और उसकी गति क्रमशः बढती गई। कीर्त्तन धीरे-धीरे अग्रसर होते-होते जैसे ही श्रीनिवास आचार्य प्रभुके कुञ्जके पास पहुँचा, भावोद्‌वास और भी बढ़ गया। किसीको भी बाह्य स्मृति न रही। सभी उन्मत्तकी तरह उद्दण्ड नृत्य करने लगे। दूसरी कीर्त्तन-मंडलियाँ भी आकर मिल गईं। एक अपूर्व आनंद था। नृत्यकारी भक्तोंके पैरोंके भारसे वृन्दावन-भूमि कम्पायमान हो गई; खोल-करताल, झाँज और गगनभेदी नामध्वनि से दसों दिशाएँ गूँज उठीं। वृन्दावनके पशु-पक्षी और तरु-लताएँ भी जैसे किसी नये भावसे विभावित हो गये। चारों ओर भीड़ ही भीड़ दीखने लगी। लोग आपसमें कहने लगे, 'नगर कीर्त्तन तो हम लोग बारहों महीने देखते हैं, पर ऐसा आनन्द कभी अनुभव नहीं किया। हमारी तो धारणा ही नहीं थी कि नगर-कीर्त्तनमें ऐसा आनन्द भी हो सकता है।' बहुत देर तक उद्दण्ड नृत्य कीर्त्तन चलता रहा। वृन्दावन-परिक्रमा कर सबने नये सीतानाथ लौटकर कीर्त्तन पूरा किया।

दूसरे दिन बाबाजी महाशय वृन्दावनवासी आबाल, वृद्ध, युवक, स्त्री, पुरुष यहाँ तक कि पशु-पक्षी, तरु-लता तकसे हाथ जोड़कर विनयभरे वाक्योंसे अपने व्यवहारजनित दोषके लिए क्षमा-प्रार्थना करते हुए उन्हें दण्डवत प्रणाम कर उनसे बिदा

लेकर सन्ध्या समय श्रीधाम पुरीके लिए रवाना हुए। यथा-समय गाड़ी हावड़ा स्टेशन पहुँची। साथियोंने उतर कर पूछा कि कहाँ जाना है तो बाबाजी महाशय बोले 'जब कल ही पुरी जाना है, तो शहरके भीतर जानेकी आवश्यकता नहीं। आज इस पासवाली धर्मशालामें ही ठहरा जाय।' यह कहकर वे मारवाड़ियोंकी धर्मशालामें चले गये। साथी लोग ठाकुरजीके भोगरागकी व्यवस्था करने लगे। आपने स्नान-आह्निकादिके बाद नामकीर्त्तन शुरू किया। प्रायः दो घण्टे तक 'जय जय नित्यानन्द' कीर्त्तन हुआ। तत्पश्चात् महाप्रसाद पाकर सबने विश्राम किया। इधर एक व्यक्तिने कोलूटोलामें कुञ्जबाबूके घर जाकर पुलिनदादासे कहा 'आज सुबह बहुत लोगोंके साथ बाबाजी महाशयको हावड़ा स्टेशन पर उतरते हुए देखा है।'

पुलिन०—किधर गये, बता सकते हो?

भद्र०—नहीं, मैं विशेष कुछ तो मालूम नहीं कर सका। मेरे साथ बहुतसे झंझट थे, पर मैंने उन्हें मारवाड़ी धर्मशाला की ओर जाते देखा था।

पुलिनदादा और कुछ कहे बिना हावड़ा स्टेशन चल पड़े। वे सबसे पहले मारवाड़ी धर्मशाला गये। देखा कि बाबाजी महाशय एक कमरेमें सिरसे पैर तक चादर ढके लेटे हैं। पुलिनदादा चुपचाप एक ओर खड़े रहे। उसी समय बाबाजी महाशय मुँह परसे चादर हटा कर बोले 'क्यों रे पुलिन! तू कब आया?'

पुलिन०—कोई आधा घण्टा हुआ।

बाबाजी—तुझे किसने बताया कि मैं यहाँ आया हूँ?

पुलिन०—जी, एक भद्रपुरुषने आपको स्टेशन पर उतरते

देखा था। यह तो उसे ठीक पता नहीं था कि आप कहाँ ठहरे हैं। आपने किसीको कोई सूचना नहीं दी; सीधे धर्मशाला आ गये। हम लोग क्या आपके कोई नहीं होते ?

बाबाजी—नहीं रे पागल ! मुझे कल सुबहकी गाड़ीसे पुरी जाना है, इसीलिये तुम लोगोंको खबर नहीं दी और न शहरके भीतर ही गया।

पुलिन०—यह सब नहीं होगा। माँने अनुरोध किया है कि एकबार घर आना पड़ेगा।

बाबाजी—कल मुझे पुरी जाना पड़ेगा। अच्छा, गाड़ी ले आ, एकबार माँसे मिल आऊँ। (प्रेमदादासे) तुम लोग तैयार रहना, मैं जल्दी ही आऊँगा। देखना, कल पुरी जानेमें कोई बाधा न आय।

प्रेम०—आप हो आइये, सब ठीक हो जायगा।

इसी बीच पुलिनदादा दो गाड़ियाँ ले आये, तो बाबाजी महाशय, रामदादा, फणी, राधाविनोद आदि कुछ लोगोंको साथ लेकर कोलूटोला चले गये। वहाँ पहुँचने पर सभीके साथ भगवत्प्रसङ्ग चलने लगा। एक शिक्षितबाबूने प्रश्न किया 'आजकल वृन्दावनका स्वास्थ्य कैसा है ?'

बाबाजी—भाई, वृन्दावन अप्राकृत चिन्मय भूमि है; वहाँ सदा ही षड़ऋतु वर्त्तमान है; अतएव वह जगह कभी भी अस्वास्थ्य कर नहीं हो सकती; प्राकृत चक्षुओंसे जो कुछ देखने में आता है, वह है अधिकारी भेदके कारण।

बाबू—स्थान तो सभी एकसे हैं, उनमें प्राकृत-अप्राकृत का क्या भेद ? यह बात मेरी समझमें नहीं आई। जिसे आप अप्राकृत कहते हैं, उसमें और अन्य स्थानोंमें क्या कोई वस्तुगत भेद है ? अर्थात् अन्य स्थानोंके और वृन्दावनके पेड़-पौधों,

लता-पताओं आदिके आकार-प्रकार रूप-गुण आदिमें कोई भेद है क्या ?

बाबाजी—है क्यों नहीं। देखने वालोंकी आँखोंमें भिन्नता होनी चाहिये और चित्त-वृत्तियोंमें भेद होना चाहिए। उदाहरणके लिये मान लो कि किसी दूकानसे चावल-दाल खरीद कर उनकी रसोई बनाई। उसके आधे हिस्सेमें तुलसी-दल डालकर उसे भगवानको निवेदन कर दिया; वह हिस्सा चिन्मय हो गया। जो बचा वह रूपकी दृष्टिसे भिन्न नहीं; पर गुणकी दृष्टिसे भिन्न है। अनिवेदित अंशमें स्पर्शदोष द्रव्यगुण वर्तमान रहा; और निवेदित अंशमें अप्राकृत-चिन्मय भगवद-धरामृतका संचार हो जानेसे उसका हेय अंश दूर हो गया और रह गया केवल उपादेय अंश। इसी तरह दृष्टिगत भावसे चिन्मय धामके वृक्षादि और प्राकृत वृक्षादिमें आकारगत किसी प्रकारकी भिन्नता नही, पर गुणगत पृथक्ता बहुत है।

बाबू—वह सार्वजनिक है या व्यक्तिगत ?

बाबाजी—सार्वजनिक कैसे कह सकते हैं ? क्योंकि शास्त्रकारोंने कहा है 'चिन्तामणिमय भूमि, कल्पवृक्ष बन। चर्मचक्षे देखे तारे प्रपञ्चेर सम।' अन्यत्र कहा गया है 'देखिया ना देखे जत अभक्तेर गण। उलूके ना देखे जैछे सूर्जेर किरण।' अतएव धाम, महाप्रसाद, नाम, श्रीमूर्त्ति, वैष्णव, ब्राह्मण आदि में नित्य अप्राकृत चिन्मय बुद्धि स्थाई रखना ही साधकोंका साधन है। यद्यपि आपने स्वाभाविक रूपसे वृन्दावनके स्वास्थ्य की बात पूछी है, तथापि ऐसा स्वाभाविक भाव हृदयमें लानेसे मेरी उपासनामें व्याघात आता है; इसीसे मैं आपकी बातका सन्तोषजनक उत्तर न दे सका, इसके लिये मनमें दुःख न कीजियेगा।

इस प्रकार बातचीतमें बहुत समय निकल गया। पुलिन-दादाके घरवालोंके अनुरोध पर उस दिन वहीं रहना पड़ा। दूसरे दिन वे यथासमय स्टेशन पर आकर साथियों सहित श्रीधामपुरीकी गाड़ीमें बैठ गये। अगले दिन यथासमय गाड़ी पुरी स्टेशन पहुँची और सब लोग उतर कर नाम करते हुए झाँजपीटा मठ पहुँच गये।

विविध-लीलाएँ

कितने ही दिन बाद फिर पुरीमें आनन्दोत्सव होने लगा। बाबाजी महाशय सदाकी भाँति तड़के ही स्नान आदि कर कीर्त्तन लेकर श्रीजगन्नाथ-मन्दिर जाने लगे।

कुछदिन बाद संकीर्त्तनका भार साथियोंपर डाल वे बहुत सबेरे ही फणीको लेकर समुद्र-तट पर जाने लगे। उनका भाव अत्यन्त गम्भीर होता। किसीसे बातचीत न करते। चक्रतीर्थके पास जाकर दक्षिणकी ओर मुड़कर ऊपर देखते हुए प्रायः आध घण्टे तक अर्द्धस्फुट भावसे हाथ जोड़कर नाना प्रकारसे स्तव-स्तुति करते। बालक फणी पीछे खड़ा सब देखता, पर उसे कुछ कहनेका साहस न होता। इस तरह कुछ दिन बीत गये। एक दिन शेषरात्रिमें उठकर जब वे जानेको तैयार हुए, तो फणी भी पूर्ववत साथ चलने लगा, पर वे उसे मनाकर अकेले ही द्रुतगतिसे बाहर निकल गये। कोई दस बजे एक काले रंगकी टेढ़ी लकुटी कंधे पर रखे मठमें वापस आये और बड़े गम्भीर होकर ठाकुर-मन्दिरके बरामदेमें बैठ गये। आँखें लाल और सजल थीं; चुपचाप बैठे थे। सभी साथी उपस्थित थे पर किसी को कुछ पूछनेका साहस नहीं हो रहा था। प्रायः आधा घण्टा

बाद गद्गद् कण्ठसे ललितादासीको बुलाकर कहा 'देखो, इन अनन्तदेवको बड़ी सावधानीसे रख दो; इनका वृत्तान्त बादमें कहूँगा। देखना, किसी प्रकारकी असावधानी न हो।' ललितादासीने आदेशानुसार लकुटीको लेकर ठाकुर-मन्दिरमें रख दिया।

दूसरे दिन ठाकुरजीकी मंगल-आरतीके बाद वे लाठी लेकर समुद्रकी ओर चल दिये। फणी साथमें था। चक्रतीर्थके पास पहुँचकर उन्होंने लकुटीको दाँये कंधे पर रखा, फिर हाथ जोड़कर दक्षिणकी ओर मुड़ ऊपर देखते हुए प्रायः पन्द्रह मिनट तक अस्फुट भाषामें न जाने क्या स्तव पढ़ा और उसे जोरसे समुद्रमें फेंक दिया। आश्चर्य! थोड़ी ही देरमें लकुटी समुद्र तट पर जहाँ बाबाजी महाशय खड़े थे, वहीं आ गई। वे उसे उठा कर बार-बार सिरसे और हृदयसे लगाने लगे। मौका देखकर फणीने कहा 'बाबा! ऐसे रंगकी और ऐसे आकरकी लकुटी मैंने कभी नहीं देखी, और आपने तो इसे सौ हाथ दूर फेंक दिया था, पर यह तुरन्त ही चेतन पदार्थकी भाँति आपके पास लौट आई। इसका भेद मेरी समझमें नहीं आया।' बाबाजी महाशय बोले 'बेटा! यह क्या लकड़ी है? ये तो साक्षात् अनन्त देव हैं। इन्हें कल निताइचाँदने स्वयं ही एक वृद्ध ब्राह्मणके वेशमें चक्रतीर्थ पर मुझे दिया था। ये सचेतन हैं। श्रद्धा-भक्ति के साथ इनकी सेवा करनेसे महाशक्ति प्राप्त होगी और अनायास लीलाकी स्फूर्त्ति होगी।' इस प्रकार बहुत सी बातें करते हुए वे मठ लौट आए।

इसी तरह कुछ दिन बीते। पौष संक्रान्तिकी पहली रात को उन्होंने ललितादासीको आदेश दिया कि दूसरे दिन सुबह अनन्तदेवका महाभिषेक होगा, सभी वस्तुएँ तैयार रहें।

आदेशानुसार वे पंचगव्य, पंचामृत, तेल, हल्दी, कपूर-सुगन्धित जल, पंचतीर्थोंका जल, गङ्गोदक आदिकी व्यवस्था करने लगीं। सुबह होते ही बाबाजी महाशय नित्य नियम कर अनन्त-देवको लेकर स्नानबेदी पर बैठ गये। ललितादासीने अभिषेक की सारी वस्तुएँ वेदीके पास लाकर रख दीं। उसी समय उन्होंने अपने हाथसे लकुटी रूपी अनन्तदेवकी तेल-हल्दीसे मालिशकी, फिर पंचगव्य-पंचामृत आदिसे स्नान कराया। ललितादासी अपनी सहचरियोंको लेकर प्रसादी तेल-हल्दी बाबाजी महाशयके शरीरसे मलने लगीं। मठमें कोई साधारण सी घटना भी घटती तो वह बहुत जल्दी ही चारों ओर फैल जाती। आज भी वही हुआ। पड़ोसी स्त्री-पुरुष अभिषेककी बात सुनकर झटपट दौड़े चले आये। प्रसादी पंचामृत आदि द्वारा स्नान करानेके बाद बाबाजी महाशयके शरीर पर पानी डाला गया। वह बड़ा अनोखा दृश्य था। आपने लकुटी रूपी अनन्तदेवको सिर पर रख लिया है और उधर अविराम गतिसे पानी ढाला जा रहा है। पहले तो साथी लोग ही पानी ला रहे थे, पर बादमें साहस पाकर पड़ोसिनें भी कूएँसे पानी खींच-खींचकर लाने लगीं। एक सौ आठ कलसी पानीकी जगह जाने कितनी कलसियाँ आ गईं।

यथासमय स्नान पूरा हुआ। बाबाजी महाशयने आप ही अनन्तदेवका अङ्ग-मार्जन आदि किया। ललितादासीने उनका अङ्ग-मार्जनादि कर दिया। तब सूखे डोर-कौपीन पहन-कर उन्होंने अनन्तदेवको एक अलग कमरेमें पधराया और साथियोंका आदेश देकर उनकी पृथक् पूजादिकी व्यवस्था कर दी।

एक दिन कोई साढ़े सात बजे श्रीयुत केदारनाथदत्त

भक्तिविनोद महाशयके पुत्र श्रीयुत विमलाप्रसाद दत्त भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती महाशय मठमें पधारे। पता नहीं, इससे पहले उनका बाबाजी महाशयके साथ परिचय था या नहीं। उन्हें देखते ही बड़े आदरके साथ उन्हें अपने सामने एक आसन पर बिठाकर उनसे नाना प्रकारकी बातें करने लगे।

कुछ देर बाद विमलाबाबूने पूछा 'आपके इन शिष्योंमें तरह-तरहके भाव, और वेश क्यों हैं?'

बाबाजी—भाई, इनमेंसे मेरा शिष्य कोई नहीं। मैं स्वयं ही किसीका शिष्य नहीं हो पाया। सदा अभिमान-अहंकारमें मत्त हो लाभ-पूजा-प्रतिष्ठाकी आशासे देश-विदेश घूमता रहा हूँ; मैं किसे शिष्य बनाऊँगा?

विमला०—क्यों? ये सभी तो अपना परिचय आपके शिष्योंके रूपमें देते हैं।

बाबाजी—यह उनका बड़प्पन है। ये लोग हैं निताइ-दास; उन्हींके आदेशसे ये मुझे सेवा आदिकी शिक्षा देनेके लिए यहाँ रहते हैं। ये सब मेरे शिक्षागुरु हैं।

विमला०—इनमेंसे कुछ सखीवेशमें हैं; इन्होंने क्या आपके आदेशसे यह वेश धारण किया है?

बाबाजी—नहीं भाई, मैं किसीको आदेश नहीं देता। उन्होंने स्वेच्छासे ही यह वेश धारण किया है।

विमला०—आप उन्हें मना क्यों नहीं करते?

बाबाजी—ये मेरी बात नहीं सुनते।

विमला०—आपकी बात ही नहीं सुनते, तो आप इन्हें भगा क्यों नहीं देते?

बाबाजी—देखिये, यह निताइका संसार है, वे अपने दास-दासियोंको रखेंगे; मैं भगानेवाला कौन हूँ? मैं उनके

आचार-व्यवहार और भजन-साधनमें ऐसा कोई दोष भी नहीं देखता, जिससे मैं उनकी अवज्ञा करूँ। वरन् मुझे तो ये लोग आदर्श ही लगाते हैं। किसी समय इनके वेशको लेकर नाना प्रकारकी समालोचना शुरू हुई थी। उस विषयमें जब मैंने अपने गुरुदेवसे पूछा था तो उन्होंने कहा था, 'निताइचाँदके संसारमें किसीकी अवज्ञा मत करना। सभीका आदर-सत्कार कर सकते हो, पर किसीको बिदा करनेका अधिकार तुम्हें नहीं। गोस्वामोपादोंके शास्त्रोंका गूढ़मर्म समझो, तो वह यह है कि भावको स्थायी करनेके लिए उसे स्वभावमें परिणत करना पड़ता है। स्वभावमें लानेके लिये शरीर पर तद्‌जातीय वेश-भूषादि धारण करना, वचनोंमें तद्‌जातीय वार्त्ता-व्यवहार और लीला-गुण-कीर्त्तनादि करना, मनमें तद्‌भावानुयायी नित्य परिकरगणोंके आनुगत्यमें लीलादिका स्मरण, मनन, निदिध्यासन आदि करना आवश्यक है। यदि साधु-गुरु-वैष्णवकी कृपासे किसीको वह सौभाग्य प्राप्त हुआ हो, तो उसे अपना आदर्श मानना।' गुरुदेवका ऐसा उपदेश पाकर मैं इन लोगोंसे किसीसे कुछ कहनेका साहस नहीं पाता।

विमला०—अच्छा, शास्त्रानुसार इस प्रकारके वेशकी आवश्यकता सिद्ध कर सकते हैं? अथवा ये बता सकते हैं कि पूर्व महाजनोंमेंसे किसीने इस प्रकारका वेश धारण किया था?

बाबाजी—भाई, मैं शास्त्र-सिद्धान्त आदि कुछ नहीं जानता; पर साधारण युक्तिके अनुसार देखता हूँ कि सभी शास्त्रोंने एक स्वरसे वेशकी आवश्यकताका वर्णन किया है। दो-चार बातें आपको बताता हूँ। यज्ञोपवीत ब्राह्मणत्वका परिचायक है या साधनमें सहायक है। इसी तरह सन्यासीका त्रिपुण्ड, गेरुआ वस्त्र; दण्डीका त्रिदण्ड; शैवके रुद्राक्ष, बिभूति

और व्याघ्रचर्म; वैष्णवोंके तिलक, तुलसीमाला आदि क्या शास्त्र सम्मत नहीं हैं ? क्या सधवा रमणीका शङ्ख सिन्दूर स्वामीका स्मारक या उद्दीपक नहीं है अथवा स्वामीके अस्तित्वका द्योतक नहीं है ? आप जो सखीभावकी बात कहते हैं, उसके विषयमें मैं और क्या कहूँ ? श्रीचैतन्य चरितामृत (मध्यम खण्ड, अष्टम परिच्छेद) में वर्णित श्रीराय-रामानन्दका संवाद पढ़नेसे इसकी आवश्यकता अच्छी तरह समझमें आ जायगी। उन्होंने स्पष्ट कहा है :—

राधा कृष्ण लीला एइ अति गूढ़ तर।
दास्य वात्सल्यादि भावेर ना हय गोचर ॥
तबे एक सखीगणेर इहा अधिकार।
सखी हइते हय एइ लीलार बिस्तार ॥
सखी बिना एइ लीला पुष्टि नाहि हय।
सखी लीला बिस्तारिया सखी आस्वादय ॥
सखी बिना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति।
सखीभावे जेइ ताँरे करे अनुगति ॥
राधाकृष्णेर कुञ्जसेवा साध्य सेइ पाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय ॥

अन्यत्र:—

सेइ गोपी भावामृते जार लोभ हय।
वेद धर्म त्यजि सेइ कृष्ण के भजय ॥
रागानुगा मार्गे ताँरे भजे जेइ जन।
सेइ जन पाय ब्रजे ब्रजेन्द्र-नन्दन ॥

और दूसरे स्थान परः—

अतएब गोपीभाव करि अङ्गीकार।
रात्रि दिन चिन्ते राधाकृष्णेर बिहार॥
सिद्ध देह चिन्ति करे ताँहाइ सेवन।
सखीभावे पाय राधाकृष्णेर चरण॥ आदि

श्रीनरोत्तम ठाकुर महाशय कहते हैं—

'सखीनां सङ्गिनीरूपामात्मानं वासनामयीम्।
आज्ञासेवापरां तत्तत्-रूपालंकारभूषिताम्॥'

सनत्कुमार तन्त्रमें आता है—

आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूपयौवन सम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्॥'

इस प्रकार बहुतसे स्थानों पर सखीभावको स्थायी कर राधा-कृष्ण लीलाके ध्यान करनेकी बात कही है। फिर 'सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि। तद्भावलिप्सुना कार्या ब्रज-लोकानुसारतः॥' इत्यादि वाक्यों पर श्रीजीव गोस्वामीपादकी टीका है: 'साधकरूपेण यथावस्थितदेहेन सिद्धरूपेण। अन्त-श्चिन्तिताभीष्ट तत्सेवोपयोगिदेहेन।' विश्वनाथ चक्रवर्त्तीने कहा है 'साधकरूपेणयथावस्थितदेहेन। सिद्धरूपेण अन्तश्चिन्तिता-भीष्टतत्साक्षात् सेवोपयोगिदेहेन। तद्भावः स्वप्रेष्ठकृष्ण-विषयकः स्वसमीहितकृष्णजनाश्रयकश्च यो भाव उज्ज्वलाख्यस्तं लब्धुमिच्छता सेवा मनसैवोपस्थापितैः साक्षादप्युपस्थापितैश्च समुचितद्रव्यादिभिः परिचर्या कार्या। अत्र प्रकारमाह—ब्रज-लोकानुसारतः साधक-रूपेणानुगम्यमाना ये ब्रजलोकाः श्रीरूप-गोस्वाम्यादयः ये च सिद्धरूपेणानुगम्यमाना ब्रजलोकाः श्रीरूप-

मञ्जर्याद्यस्तदनुसारतः ।'पूर्व महाजनोंके इन वाक्योंके विपरीत
कोई आचरण इन लोगोंमें देखनेमें आता है क्या ?

विमला०—पूर्व पूर्व महाजनों द्वारा अननुष्ठित, अन्तश्चिन्तित भाव योग्य देहको बाहर प्रकाश करना, यही विपरीत है।

बाबाजी—क्यों ? इस प्रकार योग्य देह धारण कर तो बहुतोंने जगत्को शिक्षा दी है। नित्यानन्द प्रभुने बलरामके आवेशमें तद्योग्य वेशभूषा धारण कर जगत्को शिक्षा प्रदानकी थी। उनके परिकर तो प्रायः सभी सख्यभावाविष्ट हो गोपवेश धारण करते थे। दास गदाधरने राधिकाके भावावेशमें गोपीवेश धारण कर नित्यानन्द प्रभुके साथ नाना प्रकारकी लीलाएँ की थीं। अभिराम ठाकुर सख्यभावावेशमें वंशी आदि धारण करते थे। लोचनानन्ददास ठाकुर, खण्डवासी नरहरि सरकार ठाकुर आदि कभी नदिया-नागरीवेशमें गौरसे मिलते और कभी व्रजगोपियोंके वेशमें बगलमें गागरी लिए दूध-दही बेचने वालियोंके भावमें गली गली घूमते रहते। अच्छा, मैं पूछता हूँ क्या ऐसा भी कहीं शास्त्रोंमें देखनेमें आया है कि भावयोग्य वेशभूषा बाहर धारण करनेके लिए निषेध किया गया हो ? क्या किसीने कभी भावको स्वभावमें परिणत करनेकी चेष्टाको असङ्गत समझा है ? इस प्रकार नाना प्रकारकी तत्व-आलोचनाके बाद विमलाबाबू चले गए।

एक दिन प्रातःकाल उठते ही पता नहीं बाबाजी महाशयके मनमें क्या बात उठी, वे अपने हाथसे केलेके पेड़के छिलके काटने लगे। एक व्यक्तिको श्रीजगन्नाथका थोड़ा महाप्रसाद लानेके लिए भेजकर ललितादासीसे बोले 'देखो, मैं श्राद्ध करूँगा। तिल, तुलसी, फल, कुश आदि जिन-जिन वस्तुओंकी

आवश्यकता हो, उनकी व्यवस्था करो।' ललितादासी श्राद्ध की बात सुनकर विस्मित भावसे बोलीं 'श्राद्ध कैसा। मेरी समझमें नहीं आया। वर्णाश्रम छोड़नेके साथ-साथ क्या तदुचित क्रिया-कर्मादिका त्याग नहीं हो जाता?'

बाबाजी—त्याग बहुत तरहके होते हैं। गीतामें कहा है 'न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः। यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते।'

ललिता०—यह नित्यकर्म पर वाक्य नहीं है क्या?

बाबाजी—जिन कर्मोंमें फलकी बात आती है, उनकी गणना नित्यकर्मोंमें नहीं होती। जिस कर्मके आचरणमें फल नहीं होता, जिसके न करनेसे पाप होता है, उसी कर्मको महापुरुष नित्यकर्म कहते हैं।

ललिता०—अच्छा, भेक ग्रहण करनेके बाद जब पूर्वाश्रमके माता-पिता अथवा आत्मीय-स्वजनोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहता, यहाँ तक कि पूर्व गोत्र तक छूट जाता है और अच्युत गोत्रमें गोत्री होकर भगवत् पथके पथिक रूपमें पुनर्जन्म होता है, तो पूर्व गोत्रवाले माता-पिता आदिको पिण्ड-दान कैसे सम्भव है?

बाबाजी—सम्बन्ध दो प्रकारका है, मायिक और पारमार्थिक। पहला आश्रम, वर्ण और देहगत होता है। इन तीनोंमेंसे एकके बदलने पर वह सम्बन्ध टूट जाता है। पर पारमार्थिक सम्बन्ध नित्य है; उसका कभी विनाश नहीं होता। माता-पिताके साथ जाति, कुल या आश्रमगत जो सम्बन्ध रहता है, वह सन्यास-ग्रहण करनेके बाद खत्म हो जाता है; पर परमार्थ-सम्बन्ध नहीं टूटता। विशेषतः जितने दिन यह देह रहता है उतने दिन जीव पितृऋण, ऋषिऋण, देवऋण, इन तीन

प्रकारके ऋणोंसे घिरा रहता है। इस ऋणको चुकानेके लिए आदमी संसार (गृहस्थाश्रम) त्यागकर परमार्थ-धनका उपार्जन करनेको आतुर हो उठता है। साधु, गुरु, वैष्णवकी कृपासे और भगवान्के अनुग्रहसे इस स्थूल शरीर द्वारा जो धन उपार्जित होता है, उसका एक अंश माता-पिताके लिए, एक ऋषियोंके लिए, एक देवताओंके लिए, और बचा हुआ एक अंश अपना होता है। एक बात और सोचो, यदि किसीको कोई अच्छी वस्तु प्राप्त हो और वह उसे अपने प्रिय जनोंको दिए बिना अपने उपयोगके लिए ही रख ले, तो क्या ठीक होगा ?

ललिता०—नहीं, उन्हें दिए बिना क्या सुख ?

बाबाजी—तभी आज यह श्राद्ध या समर्पण कार्य करने की इच्छा हुई है।

ललितादासीने और कुछ न कहकर खुशी-खुशी उनके आदेशानुसार सभी वस्तुएँ जुटा दीं और वे श्राद्ध करने बैठे। इधर श्रीजगन्नाथका अन्न महाप्रसाद, दाल, तरकारी, आदि आ गए। उन्होंने ललितादासीको आदेश दिया 'महाप्रसाद, दाल, तरकारी आदि सब मिला पिण्डोंके रूपमें तैयार कर एक बड़े थालमें रखो। मेरे प्रयोजनके अनुसार एक-एक कर देती रहना।' ललितादासी आदेशानुसार कार्य करने लगीं।

बाबाजी महाशय चुपचाप कितने ही पिण्ड देते रहे। फिर साथियोंको एक-एक कर बुलाया और उनसे पूछा कि उनके वंशमें जो लोग मर चुके है, उनके नाम और गोत्र क्या हैं। वे उन मृतकोंके नाम-गोत्र उच्चारण कर महाप्रसादके पिण्डाके साथ-साथ तरह-तरहके मीठे महाप्रसाद उन्हें समर्पित करते हुए हाथ जोड़कर साश्रुनयन और गद्गद् कण्ठसे नाना प्रकारसे प्रार्थना करने लगे। वह एक अपूर्व दृश्य था। सभी

साथी हाथ जोड़े खड़े हैं। सभीकी आँखोंसे पानी बह रहा है। सभी मानो यह प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं कि बहुतसे बच्चे, बूढ़े, युवक, स्त्री, पुरुष महाप्रसाद ग्रहण कर, दिव्य तेज: पुञ्ज शरीर धारण कर, खुशी-खुशी सभीको आशीर्वाद दे अपनी-अपनी जगह चले जा रहे हैं। यकायक बाबाजी महाशयने उठकर जब उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया, तो साथियोंने भी व्याकुल भावसे दण्डवत् प्रणाम किया। सारे महाप्रसादको इकट्ठा कर सबसे पहले कुछ अभ्यागत वैष्णवोंको परितृप्त भावसे खिलाया गया, और जो बचा रहा उसका बाबाजी महाशयने अपने सभी साथियोंके साथ सेवन किया।

महापुरुषोंकी जितनी भी लीला-क्रीड़ाएं हैं, सब अन्त-रङ्ग भक्तोंके साथ होती हैं। यह जगत् है शिक्षाभूमि; शिक्षा-भूमिमें प्रवेश करने पर परीक्षा अवश्यम्भावी है। बाबाजी महाशयने श्राद्ध किया है, चारों ओर यही आन्दोलन चल पड़ा। एक दिन रामदादा, गोविन्ददादा, नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी, नगेन-दादा आदि श्रीराधारमण कुञ्ज मठमें बैठे नाना प्रकारकी बात-चीत कर रहे थे। उनमेंसे एकने कहा 'बाबाजी महाशयका कर्मकाण्डकी ओर इतना झुकाव क्यों है? कुछ समझमें नहीं आता।' दूसरेने कहा 'पता नहीं, बीच-बीचमें उन्हें क्या उचंग आ जाती है।' किसी औरने कहा 'कल जो श्राद्ध हुआ, उसका कुछ भी अर्थ समझमें नहीं आया। एक ओर तो वे कहते हैं कि व्रजधामगत पिता, माता, भाई, बहनोंको श्राद्ध आदि सामान्य कार्योंके लिए स्थानच्युत कराना किसी प्रकार ठीक नहीं। दूसरी ओर आप स्वयं ही ऐसा आचरण करते हैं। इससे कितने लोगोंको भ्रम हो जायगा, उस भ्रमका निवारण कैसे होगा? भेक-ग्रहण करनेके बाद जब पूर्वाश्रमके साथ कोई

सम्बन्ध ही नहीं रह जाता और सम्बन्ध रखना निषेध माना जाता है, तब ऐसा काम कैसे किया जा सकता है ?' इस प्रकार बहुत कुछ समालोचना होने लगी। फिर बाहरकी समालोचनाओंको लेकर उनके मनमें न जाने कैसी एक अशान्ति सी पैदा हो गई। कोई वृन्दावन जानेकी सोचने लगा; कोई नवद्वीप जानेकी और कोई अन्यत्र चले जानेकी।

इधर बाबाजी महाशय अत्यन्त गम्भीर हो झाँजपोटा मठके आँगनमें बैठे थे। यकायक रामदादा और गोविन्ददादा वहाँ पहुँचे। उन्होंने गम्भीर स्वरसे पुकारा 'राम' उनके गम्भीर भावको देख दोनोंके मनमें आतंक हो गया। किसीमें साहस न हुआ कि आगे बढ़े। बाबाजी महाशयने फिर कहा 'क्यों, तुम सब क्या समालोचना कर रहे थे ? मैं नाना प्रकारकी स्वतंत्रता बरतता हूँ; कर्मकाण्डकी ओर मेरा विशेष झुकाव है; मैंने श्राद्ध किया है, इसलिये मेरा पतन हो गया है; क्यों, यही बात है न ? मेरा जब पतन हो गया, तब पतित जीवके साथ रहना तुम जैसे महात्माओंके लिये किसी तरह उचित नहीं; अतएव इसी मुहूर्त्त तुम लोग यहाँसे चले जाओ।' इतना कहकर थोडा क्रोधावेश दिखाते हुए साथियोंसे बोले 'देखो इन लोगोंके चले जानेके बाद यह जगह गोबरसे अच्छी तरह लीप देना।' सभी नीरव-निस्तब्ध। रामदादा भयभीत हो काँपते हुए खड़े रहे। गोविन्ददादाने साहस कर कुछ कहना चाहा, पर आपने बीचमें ही रोककर कहा 'पाषंडियों! तुम लोगोंका मुँह देखना ठीक नहीं। मैं चाहे जैसा सही, तुम लोगोंने तो एक दिन गुरुबुद्धिकी थी। यदि मेरे किसी व्यवहारसे तुम्हारे मनमें कोई सन्देह पैदा हुआ था, तो अन्यत्र समालोचना न कर मुझसे क्यों नहीं कहा ? तुम लोगोंकी तरह चंचल चित्तवाले व्यक्तिओंको साथ रखना

ठीक नहीं। अभी तक खड़े हो ? तुम्हें देखकर मुझे क्रोध आता है।' यह कहते हुए क्रोधावेशमें पास रखा पीकदान उनकी ओर फेंका। दोनों डरके मारे भाग गये।

इनके कठोर शासनके कारण साथियोंने उस जगहको गोबरसे लीप दिया, पर उनके दु:खका छोर न रहा। उसी दिन रातको ट्रेनसे रामदादा कलकत्ता चले गये। गोविन्ददादा रहे तो श्रीधाममें ही, पर बहुत डरे डरे। बाबाजी महाशयके पास जानेका साहस न हुआ। बलरामबाबूके घर जाकर रहने लगे। बलरामदादा और अन्यान्य गुरुभाइयोंके नाना प्रकारके अनुरोध करने पर भी गोविन्ददादाने अभिमानके कारण प्रसाद-सेवन नहीं किया। वे एक निर्जन कमरेमें लेटे रहे। सन्ध्या होनेको आई तो उनके सिरमें भीषण यन्त्रणा शुरू हो गई। जब वेदना असह्य हो गई तो बलरामदादाने जाकर बाबाजी महाशयसे कहा। वे कातर भावसे बोले 'नासमझ बच्चेकी तरह व्यवहार ! हिताहितका कोई ज्ञान नहीं। मैंने तो उसके हितके लिये चेष्टाकी और वह उल्टा समझा। जाओ, यहाँ लिवा लाओ।'

बलराम—उनकी उठनेकी भी सामर्थ्य नहीं। असह्य सिर-दर्दके मारे छटपटा रहे हैं और इधरसे उधर करवटें बदल रहे हैं। आप एकबार कृपा कर चलिये, नहीं तो उनका कष्ट किसी तरह भी दूर नहीं होगा।

यह सुनकर आप और कुछ न बोले। बलरामदादाके साथ उनके घर पहुँचे। कमरेमें पहुँचकर गोविन्ददादाकी हालत देखकर साश्रुनयन और गद्गद कण्ठसे बोले 'क्यों गोविन्द ! क्या हो गया ?'

गोविन्ददादा निरुत्तर। बाबाजी महाशयने उनके सिर पर बाँया हाथ फेरते हुए कहा 'जा, जाकर खा-पीले; बिना

समझे अभिमान ! मैंने तुम लोगोंके भलेके लिये ही कहा है।'
गोविन्ददादाकी आँखोंमें आँसू भर आये। वे ठीक बच्चेकी तरह
रोते-रोते उनके पैरोंमें गिर पड़े। उन्होंने उन्हें उठाकर आलि-
ङ्गन किया और उनके मनमें जो कुछ दुख-दर्द था उसे स्वयं
ग्रहण कर उनका हृदय स्वच्छ और निर्मल कर दिया।

अनुभवी रामदादाको कलकत्ते पहुँचकर भी शान्ति
नहीं। वे हर समय अपनेको अपराधी अनुभव करते। किसीके
साथ उठना-बैठना नहीं करते; मन ही मन हरिनाम जपते रहते
ओर तरह-तरहके संकल्प-विकल्प करते रहते। इस तरह दो
दिन बीत गये। तीसरे दिन पत्र लिखा, 'जय निताइ ! अग्नि
जैछे निज धाम, देखाइया अविराम, पतङ्गीरे आकर्षिया मारे।
कृष्ण ऐछे निजगुन, देखाइया हरे मन, पाछे दुख-समुद्रे ते डारे॥
अपने बुद्धि-भ्रमके कारण हो या सङ्गके प्रभावसे, मेरे हृदयमें
जो बातें उठी थीं, उनसे आप अपनी कृपाशक्तिके कारण पूरी
तरह अवगत हैं; उनके बारेमें लिखना बेकार है। हृदयमें अनु-
चित अनधिकार चर्चाके रूपमें जो पाप घुसा, उसके लिये आपके
कृपा-दण्डको स्वीकार करनेमें मैं असमर्थ रहा और इसीलिए
डर कर आपसे बिना कहे कलकत्ते चला आया। पर यहाँ किसी
तरह भी शान्ति नहीं पा रहा हूँ। अपराध करना हम लोगोंका
चिरस्वभाव है, पर यदि आप क्षमा न करेंगे, तो हमारी क्या
गति होगी ? अपने कर्मोंके फलसे हम तरह-तरहकी यंत्रणा
भोगते हैं, उसके लिये मेरे मनमें बिन्दुमात्र क्षोभ नहीं; पर
मैंने आपके प्राणोंको व्यथा पहुँचाई है, यह अनुताप किसी तरह
दूर नहीं हो रहा है। इस बातको सोचकर हृदय हर समय धू-
धू कर जलता रहता है। तीन दिनोंमें एक मुहूर्तके लिये भी
शान्ति नहीं मिली। अब विचार कर देख लिया कि आपके

सुशीतल चरणोंके आश्रयको छोड़कर इस ज्वालाको शान्त करने का और कोई उपाय नहीं। आप प्रसन्न चित्तसे कृपा कर आकर्षित नहीं करेंगे, तो मुझे स्वयं आपके पास आनेका साहस न होगा। आपकी अभय-वाणी हृदयमें अनुभव करके ही पुरीके लिये रवाना होऊँगा।'

पत्रको पाकर बाबाजी महाशय न जाने कैसे हो गये। आँसुओंसे मुख और वक्षस्थल भीग गया। इतने अस्थिर हो गये कि बहुत चेष्टा करने पर भी जब पत्र न पढ़ सके, तो हार कर एक साथीसे पत्र पढ़नेको कहा। साथी साश्रु नयन और गद्गद् कण्ठसे पत्र पढ़ने लगे। पत्र सुनकर बाकी लोग भी रोते रोते अधीर हो गए। सभीके मनमें यह उत्कण्ठा जाग्रत हो गई कि यदि सम्भव हो तो इसी मुहूर्त्त रामदादाको बाबाजी महाशयसे लाकर मिला दें। सभीकी उत्कण्ठाके कारण हो अथवा गुरुदेवके आकर्षणके कारण, सातवें दिन रामदादा पुरी आकर बलरामबाबूके घर पहुँचे। बलरामबाबूने उसी समय जाकर बाबाजी महाशयको खबरकी। उन्होंने उन्हें अविलम्ब मठमें लानेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाकर बलरामबाबू और कुछ और लोग जाकर रामदादाको मठमें ले आए। रामदादाने मठमें प्रवेश कर बाबाजी महाशयको देखते ही साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। उन्होंने भी बछड़ेसे बिछुड़ी गायकी तरह दौड़कर उन्हें आलिङ्गन-प्रदान किया और उनके हृदयका अभिमान, अनुताप, विरह-ज्वाला आदि सब कुछ दूर कर शान्ति-सुधाका संचार किया। अन्धकारके बाद प्रकाश, दुःखके बाद सुख, विरहके बाद मिलन बड़ा ही मधुर, बड़ा ही चित्ताकर्षक और आनन्दप्रद बन जाता है। आज यही हुआ। दोनोंका अश्रु-जल दोनोंको सींचने लगा। एक-दूसरेके स्पर्शसे दोनों ही विभोर हो

गये। कुछ देर बाद रामदादा थोड़ा धैर्य धारण कर साश्रु नयन और गद्‌गद् कण्ठसे धीरे-धीरे कहने लगे 'यदि सामान्य अपराध या दोष ग्रहण कर भगा देनेकी ही इच्छा थी, तो प्रारम्भमें इतने सरल-सीधे व्यक्तिको भांति व्यवहार कर आकर्षित करने की क्या आवश्यकता थी ?'

बाबाजी--नहीं भाई! अपराधके लिए नहीं। मैंने अपने मनमें कोई दुःख मानकर तुम लोगों पर शासन किया, ऐसी बात मनमें लाना तुम्हारी गलती है। मेरे कहनेका उद्देश्य तो यही था कि यदि किसीके किसी व्यवहारसे किसीके मनमें कोई सन्देह पैदा हो या दोषबुद्धि जाग्रत हो, तो उस व्यक्तिके आगे ही हृदय खोलकर बात करनेसे दोनोंका मङ्गल होता है। तुम लोगोंके मनमें जो-जो सन्देह पैदा हुए थे, उन्हें लेकर आपसमें चर्चा-समीक्षा न कर यदि सीधे मेरे पास आते, तो मेरे मनकी बात अच्छी तरह जान सकते थे। तुम लोगोंके आगे प्रधान समस्या यही तो थी कि मैंने श्राद्ध किया और क्यों किया ?

राम०—हाँ, यही थी।

बाबाजी—मुझसे पूछ लेते तो समझ जाते। अब समझ लो कि कर्मकाण्डवाले श्राद्ध और इस श्राद्धमें कितना अन्तर है। कर्मकाण्डी श्राद्ध मन्त्र-आचारगत होता है; और यह श्राद्ध है भक्ति-विश्वासगत। केलेके पेड़के छिलके, और तिल-तुलसी देखकर ही तुम लोगोंने समझ लिया कि श्राद्ध है। असलमें यह तो माता, पिता, भाई, बहिन आदि धामान्तरगत अथवा देहान्तरगत व्यक्तियोंको श्रीश्रीजगन्नाथदेवका महाप्रसाद समर्पण मात्र था। जितने दिन हम स्थूल शरीरमें रहते हैं, उतने दिनों तक हम देवताओं, पिता, एवं ऋषियोंके ऋणी बनकर रहते हैं। वे प्रार्थना करते हैं कि उनके वंशमें एक व्यक्ति वैष्णव हो जाय;

जिससे उनकी इच्छा पूरी हो जाय। वैष्णव लोग जो भी परमार्थ सम्पत्ति उपार्जित करते हैं, उसमें एक-एक अंश उन लोगों का भी होता है। इसीलिए महाप्रसाद, नाम आदि जो भी उपादेय अप्राकृत वस्तुएँ हमें प्राप्त हों, उनका कुछ भाग उनके निमित्त स्वेच्छासे सप्रेम समर्पित करना चाहिए। परमार्थ राज्य की बात तो दूर रही, प्राकृत संसारमें भी यदि किसीको कोई अच्छी वस्तु प्राप्त होती है, तो क्या वह अपने आत्मीय-स्वजनों को दिए बिना अकेले ही उसका उपभोग कर लेता है? यदि वह भूलसे भी उस वस्तुका अकेले उपभोग कर लेता है, तो क्या लोग अकृतज्ञ समझकर उससे घृणा नहीं करने लगते? तभी तो कहता हूँ कि अवश्य कर्त्तव्य कर्मोंकी अवहेलना करने से भक्तिकी हानि होती है। इस तरह नाना प्रकारके उपदेश-वाक्यों द्वारा आपने सबका सन्देह दूर किया।

दूसरीबार श्रीधाम वृन्दावन-यात्रा

एक दिन श्रीधाम वृन्दावनसे बनमालीराय बहादुरने पत्र लिखा 'दादा! श्रीधामसे आपके चले जानेके बाद हम लोगोंके मन बड़े दुःखो हो गए हैं। श्रीहरिचरणदास बाबाजी, श्रीमाधवदास बाबाजो आदि आपके विरहमें बड़े ही कातर हो गए हैं। हमारा मन हर समय आपके लिये उत्कण्ठित रहता है। हम किसी लोला अथवा सेवा-कार्यमें मन नहीं लगा पा रहे हैं। आप कृपाकर यथाशीघ्र श्रीधाम चले आइये। मैं दो-तीन दिन के अन्दर खर्चे आदिके साथ आदमी भेज रहा हूँ। बीस-पचीस साथियोंको लेकर जैसे भी हो, अवश्य आ जाइए।' आपने हँसते हुए वह पत्र सबको सुनाया।

ललितादासी बोलीं—क्या सचमुच ही अभी फिर वृन्दावन जाना होगा ?'

बाबाजी—वृन्दाबनेश्वरी राधारानी जानें। मेरे चाहने से कुछ नहीं होता; किसीके रुपये भेजनेसे भी कुछ नहीं होता।

ललिता—फिर भी अपनी थोड़ी-बहुत स्वाधीन इच्छा तो है ही ?

बाबाजी--वह स्वाधीन इच्छा भी भगवानकी इच्छाके आधीन है, यह हमेशा याद रखना चाहिए। मेरी स्वाधीन इच्छासे सब काम हो रहा है, पर जैसे ही मैं सोचता हूँ कि मैंने अपनी बुद्धि या विद्या-कौशलसे कार्य पूरा किया या कर रहा हूँ, वैसे ही मानो भगवान अपनी स्वयंकी इच्छाको थोड़ा दूर सरका देते हैं; परिणाम यह होता है कि मेरी स्वाधीन इच्छा अकर्मण्य हो जाती है। तो बोलो, ऐसी मारफतदारी स्वाधीनता के बल पर मैं श्रीधाम जानेका संकल्प कर सकता हूँ ? निताइ-चाँद चाहें ले जायँ, न चाहें न ले जायँ, मेरा क्या ?

तीन-चार दिन बाद कोई नौ बजे नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी आ पहुँचे। उन्हें देखते ही बाबाजी महाशय बोले 'क्योंरे ब्रह्मचारी ! इस समय कहाँसे ?'

ब्रह्मचारी—श्रीधाम वृन्दावनसे।

बाबाजी—क्यों, वृन्दावन छोड़कर यहाँ कैसे ?

ब्रह्मचारी—मुझे खर्चा देकर बनमालीरायने भेजा है। आपको साथियों सहित लिवा जानेके लिए आया हूँ।

बाबाजी—ठीक है। नवग्रह-पूजा करनेकी इच्छा थी, सो निताइचाँदने पूरी कर दी।

ब्रह्मचारी—पर ये रुपये ग्रह-पूजामें खर्च कर देंगे, तो वृन्दावन जानेकी व्यवस्था कैसे होगी ?

बाबाजी—उसकी चिन्ता करनेकी तुम्हें आवश्यकता नहीं। कोई धनी भक्त वृन्दावन जानेको खर्च दे देगा, तभी वृन्दावन जाना होगा, नहीं तो और कोई उपाय नहीं ? यही बात है, तो राधारानीकी कृपाकी अपेक्षा क्योंकी जाय ? उस धनी भक्तकी कृपा ही पर्याप्त है।

ब्रह्मचारीदादा और कुछ न कह सके। बाबाजी महाशय ने एक अच्छा ब्राह्मण बुलवा कर, षोड़शोपचार नवग्रह पूजा की सामग्रीकी तालिका तैयार करवाई और फिर सभी वस्तुओं की व्यवस्थाकी। पीठापाना आदि जितनी तरहकी मीठी चीजों का जगन्नाथजीको भोग लगाया जाता है, वह सब महाप्रसाद नवग्रहको समर्पित करनेकी दृष्टिसे उन्होंने बलरामबाबूसे कह-कर उन सभी वस्तुओंके भोगकी व्यवस्था करवाई। आश्रममें भी तरह-तरहके भोग-द्रव्योंको तैयार करवाया। प्रत्येक ग्रहकी षोड़शोपचारके अनुसार पूजाके लिए नाना वर्णोंके वस्त्र, अल-ङ्कार, पुष्प आदि संग्रह किये जाने लगे। यथासमय ब्राह्मणोंने यथाविधि पूजा आरम्भकी। पूजा-स्थलको घेर कर खोल-कर-तालके साथ नाम करनेका आदेश हुआ। सभी नाम करने लगे। आप बीच-बीचमें ब्राह्मणोंके पास जाकर उन्हें पूजा-क्रम आदिकी बातें बता देते। ब्राह्मण लोग उनके मुखसे पूजा-क्रम और व्यवस्था आदिकी बातें सुन विस्मयके साथ आपसमें कहने लगते 'कैसा आश्चर्य है। हम लोग हमेशा यही काम करते हैं, फिर भी जब तक पूजा-पद्धति देख नहीं लेते, तब तक सभी बातें याद नहीं आतीं, पर ये सारी बातें अनायास ही बताये दे रहे हैं। ऐसे सभी प्रकारसे शक्तिसम्पन्न महापुरुष हमने और नहीं देखे।' कोई कहता 'लगता है गृहस्थाश्रममें ये बड़े कर्मनिष्ठ थे।' कोई कहता 'अरे, ये लोग क्या पोथी पढ़कर यह सब

कर्मकाण्ड मुखस्थ करते हैं। दुनियाँकी सभी चीजें ऐसे भजन-प्रभाव सिद्ध महापुरुषोंके लिये हस्तामलकवत् होती हैं।' इस प्रकार अपनी-अपनी धारणाके अनुसार सब अनुमान लगाने लगे और अपना-अपना कार्य करने लगे। यथासमय पूजा शेष हुई। आरती आदिके बाद पण्डित-ब्राह्मणोंको दक्षिणा दी गई। नाम शेष कर ब्राह्मणोंकी महाप्रसाद-सेवाकी व्यवस्थाकी गई। ब्राह्मण-भोजनके बाद बाकी सबने महाप्रसाद पाकर विश्राम किया।

दिन पर दिन बीतने लगे। ब्रह्मचारीदादा रोज ही कहते 'वृन्दावन जानेका क्या हुआ, कौनसा दिन निश्चित किया?' आप उत्तर देते 'अरे पागल! राधारानीकी इच्छा न होगी, तो मैं क्या करूँगा? अपनी इच्छासे कहीं वृन्दावन जाना होता है?' इसी तरह दस-बारह दिन बीत गये। ब्रह्मचारीदादा बड़े चिन्तित हुए। ये जायँगे कि नहीं, यह न समझ पानेके कारण वे वृन्दावन पत्र भी नहीं लिख पाते; बीच-बीचमें सोचते कि पैसा भी खर्च हो गया, जाना भी नहीं हुआ, पता नहीं बनमालीराय क्या सोचेंगे। इस प्रकारकी बातें उनके मनमें उठती रहतीं, पर खोलकर बाबाजी महाशयसे कुछ पूछनेका साहस न होता। आत्मानन्दी बाबाजी महाशय सदा आनन्दमें मग्न रहते। उनका इस ओर ध्यान ही न जाता।

एक दिन सुबह उठकर ललितादासीसे बोले 'देखो, आज कुछ जल्दी ठाकुरजीके भोगकी व्यवस्था कर दो।' उनकी इच्छानुसार दस बजे ठाकुरजीको भोग लगा दिया गया। वे महाप्रसाद पाकर जगन्नाथ-मन्दिर चले गये। साथमें फणी थे। मन्दिरमें घुसते ही देखा कि प्रातः धूपके बाद दर्शन खुले हुए हैं। दर्शनोत्कण्ठामें व्यग्र हो जैसे ही वे जगन्नाथजीके पास

पहुँचे, माधव पशुपालकने जगन्नाथजीकी प्रसादी माला लाकर उनके गलेमें डाल दी। उन्होंने हाथ जोड़कर साश्रुनयन और गद्‌गद् कण्ठसे पता नहीं जगन्नाथजीसे क्या कहा। थोड़ी देर बाद रत्नवेदीकी परिक्रमा कर बाहर आ गये। मन्दिरके अन्दर स्थित सभी देव-देवियोंकी प्रणाम-वन्दनाकी। तत्पश्चात् लक्ष्मी-देवीके मन्दिरमें गये। वहाँके सेवक पुजारीने लक्ष्मीदेवीके गले की माला लाकर उनके गलेमें पहना दी। उन्होंने प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीमन्महाप्रभुके पादपद्म दर्शन किये और उनकी वन्दनाकी। अन्तमें सिंह द्वार पर आकर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। अब फणीसे बोले 'देख फणी! तू मठ जाकर ललितादासीसे कह कि मैं आज ही वृन्दावन जानेके लिये स्टे-शन पहुँच रहा हूँ। वे लोग यत्नपूर्वक ठाकुर-सेवा करें। मैं थोड़े ही दिनोंमें वापस आ जाऊँगा।'

फणीने कहा—आज ही इस तरह यकायक श्रीधाम कैसे छोड़ेगें? यदि जाना ही है, तो पहले मठमें चलिये। सबसे कह-सुनकर चले जाइये।

'अरे, मैं क्या करूँ? मुझे यहींसे चले जानेके लिये जगन्नाथदेवका आदेश हुआ है। मैं चलता हूँ; तू मठ जाकर यह संवाद दे दे।' इतना कहकर वे स्टेशनकी ओर चल दिये। फणीने मठ पहुँचकर उक्त सम्वाद दिया। सुनकर ललितादासी पहले तो मर्माहत हो थोड़ी देर दुःखी मनसे बैठी रहीं, फिर बाबाजी महाशयके व्यवहारकी आवश्यक वस्तुएँ फणीके हाथों में देकर उन्होंने फणीको स्टेशन भेज दिया और उससे कहा कि बाबाजी महाशयकी सेवा विशेष यत्नसे करे।

बाबाजी महाशय स्टेशन गए हैं यह सुनकर ब्रह्मचारी-दादा, गोविन्ददादा आदि सभी लोग स्टेशन चल पड़े। फणी

और राधाविनोद बाबाजी महाशयके व्यवहारकी सभी चीजें ले गए। पहलेसे ही बाबाजी महाशयने ललितादासी आदि सखियोंको आदेश दे रखा था कि वे शेष रात्रिमें समुद्र-स्नानको जानेके अलावा मठसे बाहर और कहीं न जायँ। अतः उन्हें छोड़कर बाकी सब स्टेशन पहुँच गये। सभी कातर हो कहने लगे 'आपका विरह हमसे सहन नहीं हो सकेगा।' उन्होंने कहा 'जो लोग मेरे साथ वृन्दावन जाना चाहें, वे दोनों हाथ ऊपर कर एक ओर खड़े हो जायँ।' यह सुनते ही सब हाथ उठा-उठाकर एक ओर खड़े हो गये। एक व्यक्तिने गिनकर कहा 'पचास लोग हैं।' तब बाबाजी महाशयने ब्रह्मचारीदादासे आठ टिकट कटकके और बाकी कलकत्तेके लानेको कहा। वे बोले 'मेरे पास तो इतने रुपये हैं नहीं। करीब पचास रुपये हैं; बाकी सब नवग्रह-पूजामें खर्च हो गये।' तब आप बोले 'अच्छा तो तुम्हारे पास जितने रुपये हैं, उससे आठ टिकट कटकके और बाकी कलकत्तेके ले आओ; जो कमी पड़ेगी वह बलराम देंगे।' ऐसा ही हुआ। टिकट खरीदनेके बाद सब गाड़ीमें बैठ गये। यथासमय कटक-स्टेशन आया। बाबाजी महाशय राम-दादासे बोले 'राम, तुम इन लोगोंको लेकर कलकत्ता जाओ, मैं पाँच-छह दिनमें आ रहा हूँ। योगेन मित्र आदिको मेरे वृन्दावन जानेकी बात बताना।' यह कहकर वे ब्रह्मचारीदादा, गोविन्द-दादा, सीताराम, राधाविनोद, फणी, प्रेमदादा और उद्धारण को लेकर श्रीरासबिहारी-मठ चले गये। कटकवासी लोग आज इस अप्रत्याशित रूपसे बाबाजी महाशयको आया देख परमा-नन्द-सागरमें डूब गये। उनके साथ छह-सात दिन परमानन्दमें बिताकर वे कलकत्तेमें मिर्जापुर-मठ पहुँच गये ओर एक साथी को श्रीधाम नवद्वीप भेजकर अपने शिक्षागुरु श्रीयुत गौरहरि-दास महन्त महाराजको कलकत्ता बुला लिया।

छह-सात दिन बाद पुलिनदादाको बुलाकर उन्होंने कहा 'देखो पुलिन, साठ आदमियोंके लिए एक गाड़ी हाथरस तकके लिए रिजर्व करा आओ। तीन जगह गाड़ी कटेगी–वैद्यनाथ, मुगलसराय और विन्ध्याचल।

पुलिन—कब जायेंगे ?

बाबाजी—कल हो जाय तो अच्छा, नहीं तो परसों।

पुलिनदादा हावड़ा स्टेशन जाकर रिज़र्वेशनके लिए दरख़ास्त दे आए। दूसरे दिन रुपया जमा करना था। उन्होंने आकर बताया, तो बाबाजी महाशय बोले 'अच्छा, कल रुपये ले जाना।' नित्यस्वरूप ब्रह्मचारी आदि आपसमें कहने लगे 'आश्चर्य ! एक पैसा भी हम लोगोंके पास नहीं है, और स्वयं पैसा-कौड़ी स्पर्श तक नहीं करते, फिर भी कैसे प्रसन्नचित्तसे पुलिनदादासे कह दिया 'कल रुपये ले जाना।' देखते हैं, निताइ चाँद क्या लीला करते हैं।' किसीने कहा 'हमने बहुत बार देखा है, जब आपकी इच्छा होती है तब रुपया कहीं न कहींसे आ जाता है।' इस प्रकार अपने-अपने विश्वासके अनुसार सब बात करने लगे। वह दिन बीत गया। वृन्दावन जानेकी बात सुनकर बहुत लोग आपके दर्शनको आने लगे। रातको कोई आठ बजे योगेन्द्र मित्र आये और रेलके किरायेके लिए पाँच सौ रुपये दे गए।

दूसरे दिन पुलिनदादा वह रुपये स्टेशन पर जमा कर आए। बाबाजी महाशयकी इच्छा होते ही रुपयोंको आते देख सभी आश्चर्यचकित रह गए। अगले दिन वे साथियोंके साथ हावड़ा स्टेशन जा पहुँचे। बहुतसे लोग उनसे मिलने पहुँच गए। मधुर वाक्योंसे सभीसे विदा ले जैसे ही वे गाड़ीमें बैठे, गाड़ी चल दी।

एक एक दिन वैद्यनाथ, मुगलसराय और विन्ध्याचलमें रुकते हुए ये लोग यथासमय हाथरस पहुँचे। वहाँ ठाकुरजीके सामान्य सी भोगकी व्यवस्था कर सब वृन्दावनवाली गाड़ीमें बैठ गए। वृन्दावनवाली गाड़ीमें चढ़ते ही बाबाजी महाशयकी अवस्था अन्य प्रकारकी हो गई। पता नहीं कैसे अन्यमनस्कसे बैठे रहे। सन्ध्या समय गाड़ी वृन्दावन पहुँची। श्रीयुत राम-हरिदास बाबाजी, श्रीयुत माधवदास बाबाजी आदि बहुतसे वृन्दावनवासी महात्मा वैष्णव स्टेशन पर आपके पहुँचनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। जैसे ही गाड़ी रुकी दोनों ओरसे 'राधे राधे' की ध्वनि गूंज उठी। आपने गाड़ीसे उतर कर सभीको साष्टाङ्ग दण्डवत्की। उसी समय श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी ने उन्हें उठाकर आलिङ्गन किया। इसी प्रकार सभीके साथ प्रेमालिङ्गन, प्रीतिसम्भाषण, दण्डवत् प्रणाम आदि यथायोग्य व्यवहार कर वे गङ्गाजीके मन्दिर चले गए।

गङ्गाजीके मन्दिरमें हरिकथा, कीर्तन और तत्वालोचना में आनन्दसे दिन बीतने लगे। एक दिन श्रीयुत कामिनीकुमार घोष महाशय श्रीराधाकुण्डसे आए और बोले 'राजर्षि बहादुरने आपको साथियोंके साथ श्रीराधाकुण्ड लिवा ले जानेके लिए मुझे भेजा है।'

बाबाजी—अच्छा, कल चलेंगे।

दूसरे दिन यथासमय श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी, श्रीधामपुरीके रामकृष्णदास बाबाजी, अपने गुरुदेव और कुछ वृद्ध वैष्णवोंको गाड़ीसे भेजकर बाबाजी महाशय बाकी लोगों के साथ नाम करते हुए पैदल रवाना हुए।

इधर आपके आनेकी बात सुनकर राजर्षि, हरिचरण-दास बाबाजी, रसिकदास बाबाजी आदि कुछ लोग आपकी

अगवानीके लिए चल पड़े। सबने एक दूसरेको देखते ही परस्पर नमस्कार-प्रतिनमस्कार, दण्डवत् प्रणाम आदि किया। फिर नाम करते हुए सभीने विनोद मन्दिरमें प्रवेश किया और थोड़े विश्रामके बाद सब महाप्रसाद पाने बैठे। नाना प्रकारसे इष्ट-गोष्ठी चल रही थी। उसी समय राजर्षि बोले 'दादा! मैंने आशाकी थी कि आप ट्रेनसे उतर कर सीधे विनोद-मन्दिर पधारेंगे, पर पता नहीं मेरे किस भाग्य-दोषके कारण ऐसा नहीं हुआ। अब आजसे कहीं और नहीं जायँगे।

बाबाजी—नहीं भाई! इस बार मैंने कुसुम सरोवर पर थोड़ा एकान्तमें रहनेका निश्चय किया है।

बनमाली०—इससे हम लोगोंके मनमें बड़ा कष्ट होगा। यदि ऐसी ही इच्छा है तो एक दिन वहाँ जाकर इष्टगोष्ठी कर ली जायगी।

बाबाजी—नहीं भाई, इस बार कुसुम सरोवर छोड़कर और कहीं रहनेकी मेरी इच्छा ही नहीं हो रही है, क्या करूँ?

बनमाली०—ऐसा ही है, तो सभीको विनोदजीका प्रसाद पाना होगा।

बाबाजी—नहीं भाई, यह भी नहीं होगा। सिर्फ सात-आठ लोगोंके लायक महाप्रसाद कुसुम सरोबर भेज दिया करना।

बनमाली०—और बाकी लोग क्या करेंगे?

बाबाजी—क्यों, श्रीवृन्दावन आए हैं; माधुकरी करेंगे। हम लोग आज ही वहाँ जायँगे।

बनमाली०—तो मुझे लगता है कि मैंने कोई अपराध

किया है, अन्यथा ऐसी क्या बात कि एक दिन भी विनोद-मंदिर में न रहें ?

बाबाजी महाशय और कुछ न कह सके। वह रात विनोदबाड़ीमें ही बिताई। दूसरे दिन सुबह नाम करते हुए कुसुम सरोवरको चल दिए। कुसुम सरोवर पहुँच कर आपने राधाविनोद, फणी, उद्धारण आदि कुछ लोगोंको रोज गिरि-राज-परिक्रमा करनेका आदेश दिया। बाकी साथियोंको आदेश दिया कि वे कुसुम सरोवरके चारों ओर झाड़ू लगायँ और माधुकरी करें। यथासमय विनोद-मन्दिरसे महाप्रसाद आ गया। श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी, माधवदास बाबाजी, हरि-चरणदास बाबाजी आदि कुछ महात्मा आपके साथ ही थे। विनोदजीका जो पुजारी महाप्रसाद लेकर आया था, उससे बाबाजी महाशयने कहा 'देखो भाई, बनमालीसे कहना कि अब और महाप्रसाद भेजनेकी आवश्यकता नहीं; यहाँ दाऊजी हैं, यदि कुछ भेजनेकी इच्छा हो, तो वह अमनिया (अनिवेदित) सामग्री भेजें। दाऊजीको भोग लगाकर हम सब प्रसाद पायँगे।'

इस प्रकार बड़े आनन्दसे दिन बीतने लगे। एक दिन बाबाजी महाशय बहुतसे लोगोंके साथ गोवर्धनके नीचे भ्रमण कर रहे थे। नाना प्रकारके भगवत्प्रसङ्ग चल रहे थे। इसी समय हरिचरणदास बाबाजी बोले 'दादा ! महाप्रभु द्वारा प्रचारित इतने नामोंके रहते हुए आप एक और नये नाम 'भज निताइ गौर राधे श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम' का प्रचार क्यों कर रहे हैं ?'

बाबाजी—भाई, नाम तो स्वप्रकाशित है; मेरे प्रचार करनेका क्या प्रश्न ? तुम पण्डित हो, तुमसे पूछता हूँ निताइ,

गौर, राधे, श्याम, हरे, कृष्ण, हरे, राम—इनमें कौन सा नाम नया है ?

हरि०—नहीं दादा ! मैं इस तरह नये नामकी बात नहीं कर रहा। मेरे कहनेका उद्देश्य है कि 'श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द, हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधे गोविन्द' और 'निताइ गौर राधे श्याम, हरे कृष्ण हरे राम' ये दोनों नाम, एक ही हैं, पर पहलेवाला नाम ही किया जा सकता है, फिर नये ढङ्गका एक और नाम तैयार करनेकी क्या जरूरत ?

बाबाजी—यह एक सामान्य भावसे तुम्हें समझाये देता हूँ। यह जो ग्वाल-बाल गोचारण कर रहे हैं, इन्हें बुलाओ तो।

हरिचरणदास बाबाजी महाशयके बुलाने पर ग्वाल-बाल आ गए। बाबाजी महाशय हरिचरणदास बाबाजी महाशयसे बोले 'इन लोगोंसे श्रीकृष्णचैतन्य नाम बुलवाओ तो।' हरि-चरणदास बाबाजी महाशय बच्चोंसे बोले 'अरे छोराओं ! तुम लोग 'श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द' कहो तो अच्छी तरहसे लड्डू खिलायँगे।' उन्होंने इस प्रकार जब तीन-चार बार कहा तो बच्चोंमेंसे किसी-किसीने असम्बद्ध भावसे नामोच्चारण किया। तब बाबाजी महाशय मृदुभावसे हँसते हुए बोले 'अरे बालकों, 'निताइ गौर राधे श्याम, हरे कृष्ण हरे राम।' बोलो तो।' दो बार कहलवानेके बाद ही बच्चे एक स्वरसे गाने लग गए। दो-चार बार उच्चारण करनेके बाद ही उनके मनमें न जाने क्या भाव आया वे यह नाम करते-करते नाना प्रकारकी भाव-भङ्गियोंके साथ नाचने लगे। देखकर सभी अवाक् रह गए। तब बाबाजी महाशयने हरिचरणदासजीसे कहा 'देखा, यह नाम स्वप्रकाशित है या नहीं ? कलिराजके प्रभावसे जीवों

की जिह्वामें जड़ता आ गई है। अत: पहले नित्यानन्द पदाश्रय लेकर नित्यानन्द-शक्ति प्राप्त करनी होती है। तभी किसी नाम के उच्चारणकी शक्ति मिलती है। देश-काल-पात्रके अनुसार व्यवस्था न होनेसे लोग किसी वस्तुको ग्रहण कर सकते हैं ?' हरिचरणदासजी विस्मित होकर बोले 'सचमुच आपकी कृपासे मेरा बहुत दिनोंका भ्रम दूर हुआ।' इस प्रकार कथा-वार्त्ताके बाद सब लोग कुसुम सरोवर लौटे और महाप्रसाद पाकर विश्राम करने लगे।

एक दिन श्यामदादा बाबाजी महाशयसे बोले 'देखिये, कुसुम सरोवर पर चोरोंका बड़ा उत्पात है। आपके पास बहुत सी चीजें हैं। ब्रजवासी कभी-कभी दल बनाकर डकैती करते हैं। अत: बनमालीबाबूसे कहकर दो बन्दूकधारी सिपाही बुला लें तो कैसा रहे ? आज्ञा हो तो मैं व्यवस्था करूँ।'

बाबाजी—श्यामदास ! कोई डर नहीं। जिस जगह साक्षात् दाऊजी विराजमान हैं, वहाँ भय कैसा ? जितने दिन यहाँ रहो, निश्चिन्त रहो। समझ लो कि मैं पहरा दे रहा हूँ।

श्यामदादाने और कुछ न कहा। उस दिनसे रातको बाबाजी महाशय मन्दिरके बाहर एक खटोले पर सोने लगे।

एक दिन रातको प्रसादादि पाकर वे बाहर लेटे हुए थे। श्यामदादा उनकी चरण-सेवा कर रहे थे। रातको कोई बारह बजे श्यामदादाने देखा कि बड़ी-बड़ी लाठियाँ लिए बहुतसे लोग बार-बार आ-जा रहे हैं। बाबाजी महाशयको थोड़ी नींद सी आ गई थी। अत: श्यामदादाको उन्हें आवाज देनेका साहस न हुआ। पर अन्दर ही अन्दर वे भयभीत भी खूब होते रहे। यकायक बाबाजी महाशय उठकर बैठे और बोले 'श्यामदास ! इतना भयभीत क्यों होते हो ?'

श्याम०—बहुतसे लोग लाठियाँ हाथोंमें लिए आ-जा रहे थे; उन्हें देखकर मुझे बड़ा भय लगा।

बाबाजी—भय कैसा भाई ! वह सब कुछ नहीं, तुम मेरी बगलमें लेट जाओ।

कहकर वे श्यामदादाको पास लेकर लेट गए। कुछ देर बाद श्यामदादाने देखा कि तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्रोंसे युक्त कई दिव्य तेज:पुञ्जशाली व्यक्ति छतरीके आगे और बाबाजी महाशयको घेर कर पहरा दे रहे हैं। उस दिनसे श्यामदादा निश्चिन्त हो गए।

वृन्दावन-आगमनके दो ही दिन बाद बाबाजी महाशयके गुरुदेव कालीबाबूके कुञ्ज चले गए थे। एक दिन बाबाजी महाशय श्रीगुरुदेवके दर्शन करने कालीबाबूके कुञ्ज गए। उन्हें देखते ही श्रीयुत रामहरिदास बाबाजी महाशय आदि कुछ वैष्णव वहाँ आ पहुँचे। उन्हें यथायोग्य भावसे दण्डवत् प्रणाम कर और सबको अपने साथ ले श्रीगुरुदेवके दर्शन करने गए। देखा कि श्रीगुरुदेव अब भी भजनमें बैठे हैं। इन्होंने सीधे जाकर उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। गुरुदेवने बिना कुछ कहे पासमें रखी अपनी लाठीसे इनकी पीठ पर जोरसे तीन बार प्रहार किया। ये पूर्ववत् प्रफुल्लचित्त हाथ जोड़कर उनके सामने खड़े हो गए। साथी यह देखकर अवाक् ! श्रीरामहरिदास बाबाजी महाशय इनके काकागुरु थे और इनके प्रति विशेष रूपसे आकृष्ट थे; उन्होंने मन ही मन कष्ट पाकर कहा 'दादा ! यह क्या किया ? जिसके आपने लाठी मारी, उसकी तो आज दुनियाँ पूजा करती है।'

गुरु०—यह कलका यादवा;* दुनियाँ इसकी पूजा करती

*गुरुदेव आपको इसी नामसे पुकारते थे।

है ? आज तक बालक स्वभाव तो दूर हुआ नहीं; आदमी कब बनेगा ? तुम लोग भले ही उसे महापुरुष सजाओ; पर मेरा लड़का है, मैंने हमेशा उस पर शासन किया है और करूँगा।

बलिहारी ! कैसा विशुद्ध वात्सल्य भाव ! वात्सल्य भाव स्नेहके पात्रको कभी महत्, वयस्थ, गुणवान या बलवान देखना नही जानता। स्नेह-पात्र चिर दिन ही शिशु है; चिर दिन शासनका पात्र है। शास्त्रोंमें नन्द-यशोदा या शची-जगन्नाथके जिस वात्सल्यकी बात पढ़नेको मिलती है, आज उसीका प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। मनमें किसी भी प्रकारकी ऐश्वर्य-गन्ध हो, तो विशुद्ध वात्सल्य भाव नहीं जागता। ताड़ना, भर्त्सना, ही वात्सल्य-रसका जीवन है। इसके बिना रसकी परीक्षा कहाँ ? बाबाजी महाशयने फिर साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया, तो गुरुदेवने उठाकर वक्षसे लगा लिया और मस्तक चूमकर कहा 'आज कई दिन हो गये। कोई खबर तक नहीं भेजी। जा, कोई चिन्ता नहीं, मैं अच्छी तरह हूँ।' आज्ञा पाकर वे श्रीराम-हरिदास बाबाजी महाशय और अन्य वैष्णवोंके साथ लौटने लगे। चलते-चलते बोले 'काका ! देखा, मुझ अधमके प्रति गुरुदेवका कैसा विशुद्ध वात्सल्य है। कैसा अकृत्रिम स्नेह है। यह अहैतुकी कृपा ही मेरा एकमात्र सम्बल है। मेरा जो भी कुछ है, इस कृपाके ही प्रभावसे है।'

कुसुम सरोवर पर नित्य नयी भाव-तरंगें उठने लगीं, नित्य नयी प्रेम-क्रीड़ाएँ होने लगीं। देखते-देखते नृसिह चतुर्दशी आ पहुँची। सुबह उठते ही बाबाजी महाशयने सभीको आदेश दिया 'आज नृसिंह-चतुर्दशी व्रत है, बिना किसी बाधाके भक्ति-पथ पर अग्रसर होनेके लिये सबको निर्जल उपवास कर अष्ट

प्रहर नामकीर्त्तन करना होगा। कल नाम करते-करते गिरिराज परिक्रमा दी जायगी।'

इतना कहकर उन्होंने स्वयं 'भज निताइ गौर राधे-श्याम, जप हरे कृष्ण हरे राम।' नाम शुरू कर दिया। बड़े आनन्दसे नाम चलने लगा। गगनभेदी नामकी ध्वनिसे दसों दिशायें गूँजने लगीं। सभी लोग मानो बाह्य-स्मृति हीन हो गये। सभी विभोर होकर नाम करने लगे; आँसुओंसे उनके मुख और वक्ष भीगने लगे। परमानन्दमें पूरा दिन और पूरी रात बीत गई, किसीको पता भी न चला। दूसरे दिन सुबह सब गिरिराज-परिक्रमाके लिए बाहर निकले। पहलेसे बहुतसे लोगोंने सुन लिया था कि बाबाजी महाशय दल सहित नाम-कीर्त्तन करते हुए गिरिराज-परिक्रमाको निकलेंगे; अत: बहुत लोग आकर इकट्ठा हो गये। स्त्री-पुरुष सब मिलाकर कोई तीन सौ लोगोंको लेकर बाबाजी महाशय परिक्रमाके लिये निकले। गिरिराजके पास पहुँचते ही उनकी अवस्था न जाने कैसी हो गई। वे आविष्ट भावसे कहने लगे—

एइ सेइ गिरिराज भकत प्रधान।
गोधन चरान जाँहा कृष्ण बलराम॥
झड़ वृष्टि वज्राघात बहि निज शिरे।
राखिलेन जिनि अकुण्ठित ब्रजपुरे॥
जाँर गुप्त कुञ्ज माझे जुगल बिलास।
सहचरीगण सङ्गे हास - परिहास॥
इँहार तटेते कृष्णेर जत लीला खेला।
अन्य कुत्रापिओ तत नाहि प्रकाशिला॥

अद्यापिह गोचारण करे राम कानु।
आपन दुर्दैव दोषे देखा ना पाइनु॥
गिरिराज कृपा कोरो मो अधम जने।
नित्यलीला स्फूर्त्ति हउक तोमा दरशने॥
केनो बा आछये प्राण कि सुख लागिया।
गोविन्द बिरहे केनो ना गेलो मरिया॥
ना शुनि मुरली, लीला ना करि दर्शने।
कि सुख आछये छार श्रवण नयने॥
पाषाणे कूटिबो माथा अनले पशिबो।
जमुनाय झाँप दिया पराण त्यजिबो॥

ऐसा कहते-कहते व्याकुल भावसे वे जमीन पर लोट-पोट कर सिर धुनने लगे। किसकी शक्ति जो उन्हें पकड़े? वे रह-रहकर राधे-राधे कह बच्चेकी तरह जोर-जोरसे रो रहे थे। साथी लोग बहुत प्रयत्न करने पर भी उन्हें स्थिर न कर सकने पर बड़े चिन्तित थे। बहुत कौशल और सुश्रूषाके फल-स्वरूप कोई डेढ़ घण्टा बाद उन्हें अर्द्ध बाह्यदशा प्राप्त हुई। तब सबने उन्हें पकड़ कर उठाया। वे आविष्टावस्थामें भाव गद्गद् कण्ठसे नाम करते-करते उस स्थानसे रवाना हुए और जैसे ही दानघाटी पर पहुँचे, उन्हें भावान्तर हो गया। इस बार विरह नहीं; दानलीलाकी स्फूर्त्ति हो आई। साथ ही साथ उन्होंने पद-पदावलि गाना शुरू कर दिया—

कोथा जाओ गोयालिनी कोथा तोमार घर।
किसेर पसरा[1] दासी, माथार उपर॥

---

[1]डलिया।

ओलाओ पसरा धनि देखि भालो मते।
आगे साधि निबो दान तबे दिबो जेते॥
दधि दुग्ध घृत घोले पसरा आमार।
के तूमि तोमार बोले ओलाबो पसार॥
घाटेर घाटियाल आमि महादानी।
आजि दान दिते होबे शुनो बिनोदिनी॥
भरम लइया थाको ना कहिओ कथा।
उचित कहिले पाछे मने पाबे व्यथा॥
दानी कहे फिरि फिरि ना शुनये राइ।
बाहु पसारिया दानी राखिलो ताइ॥
जत आभरण गाय वेशभूषा आछे।
सब लेखा करि दान देहो मोर काछे॥
निति निति गतायात करो एइ ठाँइ।
ए पथे मदन राज कभू शुनो नाइ॥
कत भङ्गि कथा कहो भय नाहि बासो।
राज अनुगत जने हेरि पुन हासो॥

———

काहार गरबे जाओ दिया बाहु नाड़ा।
भूषण जौबन धन सब हबे हारा॥
बंशी कहये जूझि अराजक हइलो।
पथे बाटयारी करो नहिबेक भालो॥
पथ छाड़ो ओहे कानाइ किबा रङ्ग कोरो।

जार बातास निते ना पाओ तारे करे धरो ॥
एखनइ मरण हउक एइ छिलो कपाले।
वृषभानुसुता तनु छुँइबे राखाले ॥
एके से तोमारे भालोबासे कंसासुर।
ए बोल शुनिले हइबे देश हइते दूर ॥
के तोमाय करिलो दानी फेलो देखि पाटा।
तूमि से नूतन दानी आमरा नहि टूटा ॥
थाकिबा खाइया जदि जमुनार पानि।
ना छुँइओ गोपिकार अङ्ग ना हइओ दानि ॥

———

कह लहु लहु, जटिलार बहु, तोमारे सबाइ जाने।
कहिते कहिते, अनेक कहिछो, एतो ना गरब केने ॥
पसरा लइया, जाइछो चलिया, दानीरे ना कर भय।
राज काज करि, दान साधि फिरि, हेथा किवा परिचय ॥
ए रूप जौबने, नाना आभरणे, जाइछो मथुरार दिके।
बूझि दान निबो, तबे जेते दिबो, आमि डराइबो काके ॥
अमूल्य रतन, करिया गोपन, रेखेछो हियार माझे।
निज भालो चाहो, खसाइया देहो, इथे कि आमार लाजे ॥
एतो कहि हरि, दुबाहु पसारि, रहे पथ आगुलिया।
ज्ञानदास कय, ना करिहो भय, जाहो हाथ ठेला दिया ॥

———

छि छि छुँइओ ना निलाज कानइ आमरा परेर नारी।
पर पुरुषेर पवन परशे सचले सिनान करि॥
गिरि गिया जदि गौरी आराधहो पान करो कनक धूमे।
काम सागरे कामना करह वेणी बदरिकाश्रमे॥
सूर्ज उपरागे, सहस्र सुन्दरी द्विज करे करो साथ।
तबू हय नय, तोमार शकति, राइ अङ्गे दिते हात॥
गोविन्द दासेर, वचन मानह, ना करो एमन ढङ्ग।
जोइ नागरी, ओ रसे आगरि, करह ताकर सङ्ग॥

———

तोहाँरि हृदय, बेणी बदरिकाश्रम, उन्नत कुचगिरि जोर।
सुन्दर बदन छबि, कनकधूम पिबि, ततइ तो पत जोऊ भोर॥
सुन्दरी तूँहुक नियड़ अब छोड़ि।
गौरी आराधने, काँहा चलि जायब, तुँहु तिरिथमयी गोरी॥
मृगमद बिन्दु सिन्दुर परशल, एहि सूरज ग्रह जान।
तूया पद नख, द्विज राजहि सोंपलु, सुन्दरी सहस्र पराण॥
काम सागरे हाम, सहजेइ निमगन, कामपूरबी तँहु राइ।
श्यामेर बोलि, चरणे नाहि ठेलिबो, गोविन्ददास मुख चाइ॥

———

तोरा केउ किछू बलिस् ना गो, घामियाछे,
चाँद मुखखानि।
दे दे पसरा आनि, जार लागि बिकिकिनी,
सेइ खाउक एइ क्षीर नवनी॥

एतो बलि महासुखे, तूले दिलो कृष्णमुखे,
सखि दिलो राधार बदने।
भोजन हइलो साय, आचमन कैलो ताय,
प्रसाद पाइलो जने जने॥
आर आमि फिरिया घरे, जाबोनारे एके बारे,
अङ्गेर आभरण ने गो खूले।
साजाये दे श्याम दासी, जा आमि अभिलाषी,
रहि गेलाम एइ तरुतले॥
(तोमरा) घरे गिया एइ बोलो, दानघाटे राइ बिकालो,
जार राधा हइलो ताहार।
राधा नाम धरि जेनो, तिलाञ्जलि देय जेनो,
सुशीतल जले जमुनार॥
एतो बलि महासुखे, दुहुँ हेरे दुहुँ मुखे,
रसेर सायरे दुहुँ भासे।
दुहुँ मुख सुमाधुरी, हेरिये नयन भरि,
गुण गाय वृन्दाबन दासे॥

———

(अमनि) श्यामेर बामे दाँड़ाइलो नवीना किशोरी।
नव जलधरे जनु थिर बिजुरी॥
ललिता बिशाखा आदि जत सखीगण।
आनन्दे दोंहार मुख करे निरीक्षण॥

श्रीरूप अनङ्ग रति मञ्जरीर गण।
(तारा) समय उचित दोंहार करये सेवन॥
श्यामेर बामे किवा शोभा (राइ) रसेर मञ्जरी।
सखीगणे जय देय दुँहु रूप हेरि॥

इस प्रकार बहुतसे पदों द्वारा दानलीला-आस्वादन कर सीधे गोविन्दकुण्ड श्रीमाधवेन्द्रपुरी गोस्वामीके आसनके पास एक वट-वृक्षके नीचे पहुँचे। वहाँ बैठकर पुरी गोस्वामीका भजन, गोपालदेवका आगमन, सेवानिष्ठा आदि विषयों पर कीर्तन करने लगे। कोई एक घण्टा बीत गया; उसी समय महात्मा पण्डित श्रीयुत मनोहर दास बाबाजी महाशय उनके दर्शन करने आये। उन्हें देखते ही वे झटपट उठकर दण्डवत् प्रणाम कर बोले 'बाबा! मैं तो आपके दर्शन करनेकी आकांक्षा ही लिये बैठा था। आपने स्वयं कृपा कर दर्शन दे दिए। आज मैं धन्य हो गया।' पण्डित बाबाजी महाशय प्रतिनमस्कार कर बोले 'बाबा! मैं बहुत दिनसे आपके दर्शन करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ, पर नाना कारणोंसे सफल न हो सका। आज राधारानी कृपा कर ले आईं, अनायास ही दर्शन हो गए। सचमुच मैं आज धन्य हो गया।' इस प्रकार वैष्णवोचित दैन्य द्वारा दोनोंने एक दूसरेका सम्मान किया। तत्पश्चात् बाबाजी महाशय पण्डित बाबाजी महाशयसे विदा लेकर नाम करते हुए श्रीराघव पण्डितकी गुफा देखने गए। गुफाके पास पहुँचते ही उन्होंने साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। तत्पश्चात् जतीपुरा पार कर सीधे परिक्रमावाले प्रशस्त मार्ग पर जा एक पेड़के नीचे बैठ गये। वहाँकी रज बड़ी सुन्दर, बड़ी निर्मल और स्वच्छ थी। बाबाजी महाशयने उसमें लोट-पोट शुरू कर दी।

बाकी सब लोग भी लोटने लगे। कुछ देर यह आनन्द उपभोग करनेके बाद वे श्रीरामहरिदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजी, माधवदास बाबाजी, श्यामदास बाबाजी आदि महात्माओंसे हाथ जोड़कर बाष्प गद्‌गद् कण्ठसे बोले 'देखिये, आप सभीसे मेरी प्रार्थना है कि आप लोग मुझे थोड़ी-थोड़ी रज-भिक्षामें दें जिससे मेरी मनोवासना पूरी हो; और मैं रज-समाधि प्राप्त कर सकूं।' यह सुनकर रामहरिदास बाबाजी महाशयने हँसते-हँसते एक अञ्जलि रज भर कर उनके शरीर पर बिखेर दी। उन्हें देखकर सभी लोग एक-एक अञ्जलि रज उन पर डालने लगे। वे गले तक रजमें दब गये। हरिचरणदास बाबाजी महाशयने और रज डालनेको मना कर दिया। तब वे प्रसन्न मुद्रामें आखें मूंदे हुए अपूर्व भावसे धाम और रजका महात्म्य वर्णन करने लगे। सब विस्मित हो एक-दूसरेसे कहने लगे 'हमने बहुतोंके मुंहसे रज और धामका माहात्म्य सुना है, पर इस भावका वर्णन आज तक नहीं सुना। आज हम धन्य हो गये।' सब लोग उस रजसे एक-एक कण लेकर मुंहमें रखने लगे। इस प्रकार आनन्दमें कुछ समय बीत गया। वहाँसे सब लोग श्रीराधाकुण्ड पहुँचे। इन्हें देख बनमालीरायने झट साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। वे विनोदजीका महाप्रसाद पाने के लिये सबसे विशेष आग्रह करने लगे। बाबाजी महाशयने कहा 'नहीं भाई! हम लोग परिक्रमाके लिए निकले हैं। परिक्रमा पूरी किये बिना जल भी नहीं पियेंगे। तुम्हारी इच्छा हो, तो कुसुम सरोवर पर महाप्रसाद भेज सकते हो।

इतना कहकर वे बहाँसे कुसुम सरोवरके लिए रवाना हुए। वहाँ पहुँच थोड़ा विश्राम कर सब सरोवरमें जलकेलि करने लगे। बलिहारी उस आनन्दकी। सभी बालकवत् हो गये

और नाना प्रकारके क्रीड़ा-कौतुक करने लगे। किसीको बाह्य-स्मृति न रही। बाबाजी महाशय दोनों हाथ ऊपर कर 'राइ जय जय राधे राधे' कहते हुए सिर्फ पैरोंकी सहायतासे थोड़ी ही देरमें सरोवरके उस पार पहुँच गये। साथियोंमें जो तैरनेमें विशेष निपुण और बलिष्ठ थे, वे भी बड़े कष्टसे बहुत देर बाद उस पार पहुँचे। किनारे पर खड़े और पानीमें खड़े सभी लोग यह देखकर बहुत ही आश्चर्यचकित हुए। बहुत देर तक इस प्रकार क्रीड़ा-कौतुक करनेके बाद वे किनारे पर आकर तिलक-आन्हिक आदि कर रहे थे। उसी समय श्रीकुण्डसे विनोदजी का तरह-तरहका महाप्रसाद आ पहुँचा। प्रसाद सेवन कर सब विश्राम करने लगे।

एक दिन बाबाजी महाशय सुबह जल्दी उठकर स्नान-आन्हिकादि कर कुसुम सरोवरके चारों ओर घूम-घूमकर तरह-तरहके फूल चुनने लगे। कोई कुछ पूछता तो कहते 'तुम लोग भी फूल चुनो, देखो कितना आनन्द पाते हो।' बहुतसे फूल इकट्ठा कर तरह-तरहकी मालाएँ और गुलदस्ते आदि बनाने लगे। साथियोंने भी वही किया। कोई ग्यारह बजे वे फणी, अटल, उद्धारण आदि कुछ लोगोंके साथ राधाकुण्ड गये और राधाकुण्ड, श्यामकुण्डकी परिक्रमा कर विनोदबाड़ी जा पहुँचे। बनमालीबाबू आपको देखते ही बोले 'दादा! इतनी धूपमें कैसे? बड़ा कष्ट हुआ। आइए, विश्राम कीजिए।'

बाबाजी—नहीं भाई! मुझे कोई कष्ट नहीं होता। आज मेरे लिए बड़े आनन्दका दिन है। 'श्रीमतीको कुछ मालाओं और गुलदस्तोंकी आवश्यकता थी; इस दासीको उनके संग्रह करनेका आदेश मिला था, सो मैं ले आया हूँ। तुम विनोदिनी को बताकर उनके आदेशानुसार विनोदको सजाओ। हम लोग

तो दासियाँ हैं, हमें क्या कष्ट होगा ? प्राणेश्वरीके थोड़ेसे भी आदेशसे हम कृतकृत्य हो जाते हैं। विचार कर देखो कि सूर्य की इन प्रखर-किरणोंमें, तपती हुई बालू पर हमारी शिरीष-कुसुम-कोमलाङ्गी प्राणेश्वरी मन्थर गतिसे रोज आवागमन करती हैं और कितनी-कितनी लीला-क्रीड़ाएँ करती हैं।

ऐसा कहते-कहते उनकी आँखोंसे आँसू बह निकले; मुख और वक्षस्थल भीग गए। गद्गद् कण्ठसे श्रीमतीके दिवा-अभिसारके दो-एक पद गाये और पदोंमें ही श्रीकुण्ड तट पर मिलन कराया। इधर उन सब फूलोंसे विनोद-विनोदिनीको सजा कर बनमालीरायने बाबाजी महाशयको पुकारा। वे द्रुत-गतिसे जाकर विनोद-विनोदिनीका अपूर्व रूप-लावण्य दर्शन कर मोहित हो गये। विनोदके दर्शन कर सभी एक स्वरसे कहने लगे 'हम लोग प्रायः रोज ही ठाकुरजीका फूल-शृङ्गार देखते हैं, पर आजका वेश अपूर्व है। ऐसा भुवनमोहन भाव और कभी नहीं देखा।' विनोदविहारीकी शोभा देखकर सभी तरह-तरह की बातें करने लगे। बनमालीबाबू बोले 'श्रीविनोदिनीने प्रिय नर्ममञ्जरीको आदेश देकर अपने मनोभावके अनुरूप माला आदि तैयार कराई हैं; तभी आज इतनी मधुर साज-सज्जा हुई है।' इस प्रकार नाना प्रकारके रस-कौतुकमें कुछ समय बड़े आनन्दसे बीता। यथासमय विनोदका महाप्रसाद पाकर सबने थोड़ा विश्राम किया। तत्पश्चात् बनमालीबाबूको साथ ले सब लोग कुसुम सरोवर चले आये।

एक दिन बाबाजी महाशय दाऊजीके सामने बैठे श्रीराम-हरिदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजो, माधवदास बाबाजी, बनमालीराय आदि कुछ महात्माओंके साथ नाना प्रकारके लोला-प्रसङ्गोंमें मत्त थे। आजका लीला-प्रसङ्ग बलराम-तत्व

को लेकर था। चित्‌शक्ति बलरामसे शैया, आसन, छत्र, पादुका आदि लीला सम्बन्धी वस्तुओंका प्रकाश हुआ है; कृष्ण-सुखके लिये दाऊजी अपने तकको भूल जाते हैं और वे सर्वदा कृष्ण-सेवामें डूबे रहते हैं—इन्हीं सब विषयोंकी चर्चा समीक्षा करते-करते वे यकायक अचेत हो गये। उनके सुविशाल देह पर अष्ट-सात्विक विकार आभूषणोंकी तरह प्रकट होकर उपस्थित लोगोंका आनन्द-वर्द्धन करने लगे। रक्तवर्ण, टलमलायमान नेत्रोंसे अविरत अश्रुधार निकल कर दर्शकोंके हृदय द्रवित करने लगी। नाना प्रकारकी सेवा-सुश्रूषाके बाद उन्हें कुछ बाह्यज्ञान हुआ। तब वे झूमते-झूमते दाऊजीके मन्दिरके पूर्वमें एक नीमके पेड़के नीचे जाकर खड़े हो गये। वृक्षराजके अपूर्व दर्शन थे। वह जड़से दो भागोंमें विभक्त था और दो हाथ ऊपर उठकर दोनों भाग आपसमें मिल गये थे। बीचके रिक्त स्थानको देख वे प्रसन्न होकर बोले 'देखो, यह ब्रह्मयोनि है जो इसके भीतर होकर निकल आयेगा उसे कभी गर्भयंत्रणा न भोगनी पड़ेगी।' यह कहकर वे स्वयं उसके भीतर होकर निकल गये। उनकी देखा-देखी माधवदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजी, बनमाली बाबू आदि सभी लोग उसमें होकर निकल गये। श्रीरामहरिदास बाबाजी निकलनेको हुए तो अटक गये। पेट किसी तरह भी उसमेंसे न निकलता देखकर वे उच्चस्वरसे बोले 'बाबा चरण! मैं तो तुम्हारी ब्रह्मयोनि पार न कर सका; मेरा पेट अटक गया।' वे बोले 'बाबा! आप निडर होकर निकल आइये, मैं हूँ, डर किस बातका?' उनका इतना कहना ही था कि वे अनायास पार हो गये। सभी लोग वृक्षराजके नीचे बैठकर कुछ देर इष्टगोष्ठी करनेके बाद अपने-अपने स्थान पर चले गये।

एक दिन जान्हवादेवीके उत्सवके उपलक्ष्यमें बनमाली-

बाबूने साथियों सहित बाबाजी महाशयको आमंत्रित किया। वे माधवदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजी आदि महात्माओं को साथ ले गमनोद्यत हो नाम करने लगे 'हरि बोलो रे भाई! गदाधर गौराङ्ग बसु जान्हवा निताइ। बसु जान्हवा निताइ। सीता अद्वैत गोसाईं।' अपूर्व आनन्द! सभी नृत्य करते हुए श्रीराधाकुण्ड और श्यामकुण्डकी परिक्रमा कर और माँ जान्हवा के घाट पर कुछ देर उद्दण्ड नृत्य कीर्त्तन कर विनोद-मन्दिर जा पहुँचे। कीर्त्तनध्वनि सुनकर पहलेसे ही बनमालीबाबू इन लोगों के स्वागतार्थ आगे आ रहे थे। विनोदबाड़ीके सदर द्वार पर दोनोंका मिलन हो गया। बनमालीबाबूके दण्डवत् प्रणाम करते ही इन्होंने उन्हें उठाकर आलिङ्गन किया और भीतर जाकर कुछ देर विश्राम करनेके बाद महाप्रसाद ग्रहण कर फिर नाम करते हुए कुसुम सरोवरकी ओर चल पड़े।

रातके दस बजे थे। सभी सोये हुए थे। बाबाजी महाशय दाऊजीके आगे एक पेड़के नीचे लेटे थे। श्यामदादा उनकी चरण-सेवा कर रहे थे। चारों ओर निस्तब्ध वातावरण था। यकायक उनके शरीरसे प्रज्वलित अग्निकी तरह एक भयानक तेज निकलने लगा। श्यामदादा उसे सहन न कर सके। वे आँखें बन्द किये मन ही मन सोचने लगे 'कैसा आश्चर्य! ऐसा उज्ज्वल रूप मैंने और कभी नहीं देखा। आँखें झुलसी जाती हैं।' यह सोचते-सोचते जब आँखें खोलीं तो उन्होंने देखा कि उस तेजके भीतरसे उनके शरीरमें तरह-तरहके ऐश्वर्य प्रकाशित हो रहे हैं। देखकर वे एकदम स्तम्भित हो गये और मन ही मन तरह-तरहके संकल्प-विकल्प करने लगे। उसी समय बाबाजी महाशयने अपने पैर श्यामदादाकी गोदसे खींच लिये और 'कृष्ण-कृष्ण' कहते हुए आवाज दी 'श्याम!'

श्याम०—जी ।

बाबाजी—तू क्या चाहता है ?

श्यामदादा चौंककर उनके मुँहकी ओर देखने लगे, और कुछ कह न सके । पर वे स्वयं ही बोले 'देख, निताइ-गौर, राधा-कृष्ण पाना बड़ा सहज है । वे सब तो तुम लोगोंके आगे पीछे फिरते रहते हैं, पर उपयुक्त हृदयके बिना उन्हें पहचाने कौन ? योग्य देहके बिना उनका आस्वादन कौन करे ? आचार्यजनोंने साधन-भजनका जितना भी कुछ उल्लेख किया है, वह सब एकमात्र उस देहको प्रस्तुत करनेके लिये । योग्य देह प्रस्तुत होते ही तत्क्षणात् कृष्ण-प्राप्ति हो जाती है । साधन की बात सुन श्यामदादाका चेहरा न जाने कैसा हो गया । उसे देखकर वे बोले 'जा, कोई चिन्ता नहीं, निताइकी कृपासे सब हो जायगा ।'

एक दिन अपराह्णके समय बाबाजी महाशय श्रीराम-हरिदास बाबाजी, हरिचरणदास बाबाजी, माधवदास बाबाजी, श्यामदादा आदि कुछ वृन्दावनवासी वैष्णवोंके साथ बैठे हुए थे । उसी समय बनमालीराय बाबू वहाँ आ गये । बाबाजी महाशय बोले 'देखो भाई, मेरी इच्छा हो रही है कि एक बार तुम सबको लेकर श्रीधाम पुरी जाऊँ ।' यह सुनकर सब थोड़ा विस्मित हुए । हरिचरणदास बाबाजी बोले 'दादा ! ऐसी आज्ञा न कीजिए । आशीर्वाद दीजिए कि परम माधुर्यमयी वृन्दावन-भूमि छोड़कर ऐश्वर्य-धाम श्रीजगन्नाथ न जाना पड़े । पुरीधाम महान ऐश्वर्यका धाम है । हम लोगोंको वह जगह क्या अच्छी लगेगी ?'

बाबाजी—भाई ! पुरीधाम ऐश्वर्यका धाम है, यह बात तो मैं स्वीकार करता हूँ; पर श्रीमन्महाप्रभु तो ऐश्वर्य-धाममें

वास करते नहीं। उन्होंने तो जगन्नाथको ब्रजेन्द्रनन्दन और पुरीधामको वृन्दावनके रूपमें देखा है; अतः महाप्रभुके अनुगत जन निश्चय ही पुरीधामको मधुरसे भी सुमधुर मानेंगे। ऐश्वर्य और माधुर्य साधकके मानसिक भावके अनुसार होते हैं। पूर्ण पूर्णतम ब्रजेन्द्रनन्दनमें माधुर्यकी भी पूर्णतमता है और ऐश्वर्य की भी। इसी प्रकार उनके नित्य वासस्थान श्रीवृन्दावनमें दोनों वस्तुओंकी पूर्णतमता विद्यमान है। साधकोंने अपने भावानुसार किसीने गो-गोप बालक सहित कृष्णका वन-भोजन ग्रहण किया है, और किसीने ब्रह्माका मोहनभाव ग्रहण किया है। यह बात सभी जगह लागू होती है। भाव बाहरकी या शास्त्रोंकी वस्तु तो है नहीं; भाव तो उपासकके अन्तरकी वस्तु है।

हरि०—भाव अन्तरगत है, यह बात सच है; पर बाहर की वस्तुओंके सम्पर्कमें इसका उत्कर्ष-अपकर्ष होता रहता है। 'न हि वस्तुशक्तिबुँद्धिमपेक्षते ।' ऐश्वर्य-प्रधान स्थानमें रहकर विशेष चिन्ता-चेष्टा कर माधुर्य भाव ले भी आओ, पर धामगत स्वभावसिद्ध ऐश्वर्य भाव तो रहेगा ही।

बाबाजी—अच्छा, तुम पण्डित हो; बताओ, नवद्वीप, नीलाचल और वृन्दावन—इन तीनों धामोंमेंसे तुम ऐश्वर्यका धाम किसे कहते हो ?

हरि०—क्यों ? यह तो जनसाधारण सभी जानते हैं कि नीलाचल धाम ऐश्वर्य-प्रधान है।

बाबाजी—थोड़ा और सोचकर बताओ।

हरि०—मैं सोच-विचार कर भी इसके अतिरिक्त और कोई बात धारणामें ला ही नहीं सकता। अच्छा, आप क्या कहते हैं ?

बाबाजी—मैं कहता हूँ कि वृन्दावनधाम पूर्ण पूर्णतम ऐश्वर्य और माधुर्यका स्थान है।

हरि०—कैसे ? मुझे समझा दीजिए।

बाबाजी—वृन्दावनके ऐश्वर्यकी कितनी बातें बताऊँ ? पहलेसे लो—पूतना, अघासुर, बकासुर, यमलार्जुन, शकटासुर, तृणावर्त्त, वत्सासुर, प्रलम्बासुर, व्योमासुर आदिका विनाश। फिर, कालीयदमन, दावानलभक्षण, गोवर्द्धनधारण, ब्रह्ममोहन, नन्दमोहन, मृत्तिकाभक्षण—इनमें कौन सी लीला माधुर्यमय है, मुझे समझाओ तो।

हरि०—असुरबध आदि कार्य तो कृष्णके हैं नहीं; 'विष्णुद्वारे करेन कृष्ण असुर संहार।' पूर्णतम व्रजेन्द्रनन्दनमें ऐश्वर्यका स्पर्श भी नहीं हो सकता। 'निरन्तर कुञ्जक्रीड़ा जाँहार चरित।'

बाबाजी—भाइ, तुम तो पण्डित हो; आगे-पीछेकी बातों में समन्वय रखना चाहिए। तुमने ही कहा है 'न हि वस्तुशक्ति-र्बुद्धिमपेक्षते।' प्रकाशमान ऐश्वर्यमें माधुर्य भाव आरोपित भी किया जाय, तो ऐश्वर्य रहेगा ही रहेगा। पूतनाके वक्ष पर कृष्ण को देखकर भी यह कहना कि यह उनका काम नहीं है यह बात सार्वजनीन नहीं हो सकती; एकमात्र उपासक-भेदसे धारणाका विषय हो सकती है, पर सार्वजनीन नहीं हो सकती। यदि इसीको स्वीकार करें, तो धामान्तरसे भी तो सामान्य ऐश्वर्यके विषयको माधुर्यमें परिणत किया जा सकता है। यह तो हुई विचार-निर्णयकी बात। यदि निरपेक्ष भावसे देखें, तो कहना होगा कि जो लोग श्रीगौराङ्गदेवके मतावलम्बी साधक हैं, उनके लिये नीलाचल धाम सर्वोपरि है। जिस तरह श्री-गौराङ्गदेवने धाम तथा धामेश्वरके दर्श-स्पर्श किये हैं और उन्हें अनुभव किया है, उसी प्रकार उसी भावसे उन्हें भी दर्श-स्पर्श और अनुभव करना चाहिए। श्रीमन्महाप्रभुके अवतारका

जो उद्देश्य है, उसका और कहीं सम्पन्न होना असम्भव था। इसीलिये महाप्रभुने श्रीनीलाचल धाममें अठारह वर्ष एकादिक्रमसे वास किया था, और श्रीराधाभाव-विभावित होकर अपने अन्तरङ्ग जन श्रीस्वरूप दामोदर एवं राय रामानन्दके साथ निगूढ ब्रज-रसका आस्वादन किया था। वही वस्तु तो हमारे आस्वादनका विषय है। उसी धाम और उन्हीं महाप्रभुके आनुगत्यको स्वीकार किये बिना आस्वादन होगा कैसे? अन्यान्य पंथों या मतों वाले साधक नीलाचल धामको चाहे कुछ भी क्यों न कहें, पर हम लोगोंके लिए तो वही परम धाम है।

श्रीरामहरिदास बाबाजी महाशय बोले 'बाबा, मुझे कोई आपत्ति नहीं; जहाँ मेरे महाप्रभु हैं, वही वृन्दावन है, वहीं नवद्वीप है।'

बाबाजी महाशयने मृदुभावसे हँसते हुए हरिचरणदास बाबाजीसे कहा 'क्यों पण्डितजी! क्या सोच रहे हो?'

हरि०—सोच क्या रहा हूँ। आपकी बातोंसे मेरा भ्रम दूर हो गया। सचमुच प्राकृत इन्द्रियों द्वारा चिन्मय अप्राकृत वस्तुकी उपलब्धि चाहना गलत है। भाव द्वारा ही वस्तुकी उपलब्धि होती है; भाव द्वारा ही उसका आस्वादन होता है। भावभेदसे एक ही वस्तुके पृथक् पृथक् आस्वादन होते हैं। भाव ही एकमात्र मूल वस्तु है। यह सब समझ गया। पर ऐसी कृपा कीजिए कि इस व्रज-रजको छोड़कर अन्यत्र न जाना पड़े; भले ही प्राप्तिका विषय अधिक हो।

बाबाजी—ऐसी निष्ठाका होना बड़ा सुन्दर है। फिर भी देखो भाई! मैं और कुछ कहना नहीं चाहता। इस वृन्दावनमें एक ऐसा समय आयगा कि तुम सबको यहाँ तक कि इस बनमालीके प्राणधन विनोद-विनोदिनी तकको दूसरी जगह जाना पड़ेगा।

इस प्रकार बड़े आनन्दमें कुछ दिन कुसुम सरोवर पर बीत गए। एक दिन पुरी जानेकी इच्छासे बाबाजी महाशयने फणी, राधाविनोद, कालाकृष्ण, मधुदादा, दयालदास, शीतलदास आदि साथियोंको बुलाकर कहा 'देखो, तुम लोग देर न कर आज ही श्रीधामपुरीको पैदल यात्रा आरम्भ कर दो। वहाँ यथासमय मुझसे भेट होगी।' उन लोगोंको इनका साथ छोड़कर जानेमें कुछ आपत्ति थी। यह देखकर माधवदास बाबाजी उनसे बोले 'दादा! इन सुकुमार बालकों पर ऐसा कठोर आदेश क्यों? यह लोग क्या इतना कष्ट सहन कर सकेंगे?'

बाबाजी—भाई, इन लोगों पर महाप्रभुकी विशेष कृपा है। यह मेरी नहीं, महाप्रभुकी आज्ञा है। ये लोग बिना कुछ सोचे-विचारे इसका पालन कर सकें, तो इन्हींका मङ्गल होगा।

साथी लोग कुछ कहे बिना दण्डवत् प्रणाम कर रवाना हो गए। सिर्फ राधाविनोद और कालाकृष्ण काँटोंके एक जंगल में जा छिपे। बाकी लोगोंके चले जानेके बाद दूसरे दिन जब ये बाबाजी महाशयसे भेट करने आये, तो वे क्रोधान्वित होकर बोले 'तुम लोग क्यों नहीं गए?' ये बोले 'आपका साथ छोड़कर नहीं जा सके।'

बाबाजी—तुम लोगोंने महाप्रभुकी आज्ञाका उल्लंघन किया है, अत: मेरा साथ तो छोड़ना ही पड़ेगा। तुम्हारा और भी अनिष्ट होगा। इतना कहकर वे चुप हो गए। वे दस-बारह दिन और कुसुम सरोवर पर रहे। फिर मधुर वाक्योंसे सबसे विदा लेकर यथासमय बाकी साथियोंके साथ श्रीधामपुरीके लिए प्रस्थान किया।

—:*:—